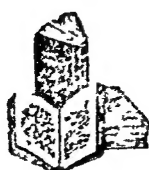
आलोचनात्मक व्याख्या तथा विवेचन

# महादेवी और उनका आधुनिक कवि

[संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण]

प्रो० भारतभूषण 'सरोज' एम० ए०, साहित्यरत्न
अध्यक्ष—हिन्दी-विभाग,
रामजस कालेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



रीगल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली ६

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली-६



नवीन संस्करण : १९७१

मूल्य : १०.००

मुद्रक :
विजय कम्पोजिंग एजेन्सी
द्वारा अनुपम प्रिंटर्स, दिल्ली-६

# प्रकाशकीय

स्वर्गीय महाप्राण निराला ने श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य-व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए जो शब्द—'हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा पाणी। स्फूर्ति, चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी ॥''—कहे थे वे आज भी उनके सम्बन्ध में उतने ही सार्थक और सत्य है। छायावाद के कवि-चतुष्टय की चौथी कवि महादेवी वर्मा के काव्य मे निराशावाद, पीड़ावाद, दुःखवाद का स्वर अपने तीव्रतम रूप में उपस्थित हुआ है। वस्तुतः इनकी कविताओ मे सीमा के वन्धन मे पड़ी असीम चेतना का क्रन्दन है। अतिरंजित भावना, सूक्ष्म कल्पना, सुन्दर शव्द-विन्यास, अमिट वेदना, एक अनन्त खोज इनकी कविताओ का प्रमुख तत्व है। वस्तुतः विश्वम्भर मानव के ये शव्द—'महादेवी की कविता अपार्थिव चेतना के गिरि से फूटी आध्यात्मिक वेदना की मन्दाकिनी है जो सहस्र-सहस्र अलौकिक भावनाओं की लहरियों को अपनी करुण-क्रोड़ में खिलाती हुई परम शान्ति के महासमुद्र की ओर निरन्तर प्रवाहित हो रही है।' भावगत सौन्दर्य के साथ-साथ शिल्प-विधायक नूतन अलंकरण सामग्री का भव्य, प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी रूप उनके काव्य मे अवस्थित है।

अप्रस्तुत विधान, प्रतीक-वैभव, चित्रोपमता, सांकेतिकता, अलकार-योजना बिम्व-विधान, वर्ण-परिज्ञान-कौशल, भाव-ध्वनि, गीतात्मकता, कल्पना-प्रवणता आदि सभी शैल्पिक तत्वों का आधान उनके काव्य की महती विशेषता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'आधुनिक कवि : महादेवी वर्मा' का यह प्रायः पूर्णतः संशोधित एवं परिवद्धित संस्करण है। लेखक ने अद्यतन सामग्री का उपयोग करते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ की गरिमा का सविशेष ध्यान रखा है। प्रस्तुत पुस्तक विश्वविद्यालय की उच्च कक्षाओ के विद्यार्थियों के कर-कमलों में अर्पित है। सधन्यवाद।

—प्रकाशक

# विषय-सूची

# महादेवी वर्मा और उनका आधुनिक कवि

## आलोचना भाग

प्रश्न १—सुश्री महादेवी वर्मा के 'साहित्यिक-व्यक्तित्व' और उनके 'काव्य की मूल प्रेरणा' पर विचार करते हुए उनके काव्य-विकास पर एक विस्तृत निवन्ध लिखिए।

उत्तर—अलक्षित प्रियतम के पथ की चिरसाधिका, वेदना और करुणा की सजीव मूर्ति श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सवत् १९६४ को उत्तर-प्रदेश के जिला फर्रुखाबाद के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। इनकी माता श्रीमती हेमरानी धार्मिकता, आस्तिकता, भगवद्भक्ति, भावुकता और करुणा का साक्षात् स्वरूप थीं। इनके पिता बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा कर्मनिष्ठ और दार्शनिक थे। स्वयं महादेवी ने अपने व्यक्तित्व के निर्माण में पिता की दार्शनिक भावनाओं और माता की करुणा-सम्पोषित भावुकता को प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया है। माता-पिता के इस ऋण को स्वीकार करती हुई वह स्वयं लिखती हैं—"एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग मे मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया, उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बंधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।" इन द्विविध संस्कारों के कारण ही उनके काव्य में करुणा और रहस्यवाद की समानान्तर धाराएँ प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है। तद्‌तिरिक्त नारी जीवन की चरम-सिद्धि, सफल दाम्पत्य जीवन की विफलता ने भी उनके काव्य को धूमिल, करुणा-प्लावित और विषादपूर्ण बनाया है। सामाजिक विषमता, अनाचार और

अत्याचार ने भी उनके संवेदनशील हृदय को और अधिक वेदना-पूर्ण बनाया है। उनकी करुणा, परदुःखकातरता, उच्चाशयता, धीरता-गम्भीरता, सरलता-अकृत्रिमता, आंसू और मुस्कान का योग—सभी ने उनके व्यक्तित्व को अदभुत गरिमामय बना दिया है। वस्तुतः महादेवी का व्यक्तित्व सौम्य और प्रभावशाली है। इनमें गंभीर भावुकता और प्रखर बौद्धिकता का ऐसा संयोग पाया जाता है कि चकित रह जाना पड़ता है। श्री गगाप्रसाद पाण्डेय ने महादेवी जी के व्यक्तित्व का प्रकाशन इन शब्दों मे किया है—"महादेवी जी के व्यक्तित्व से तुलना करने के लिए हिमालय ही सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। उनके व्यक्तित्व का वही उन्नत और दिव्य रूप, वही विराट् और विशाल प्रसार, वही अमल-धवल तथा अचल-अटल धीरता-गम्भीरता, वही करुणा एवं तरलता और सबसे बढ़कर वही सुख-कर शुभ्रहास। यही तो महादेवी हैं।"

काव्य-प्रेरणा—महादेवी के काव्य की मूल प्रेरणा पीड़ा, वेदना, अवसाद और विषाद में निहित है। पीड़ा, वेदना कवयित्री को बचपन से ही बहुत प्रिय है। उनकी वेदना का उत्स व्यक्तिगत, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार का है। नारी-जीवन की चरमसिद्धि, सफल दाम्पत्य जीवन, प्राप्त न होने पर जो प्रतिक्रिया होती है, उसका काव्य पर प्रभाव बिना पड़े नही रह सकता। इस असफलता से उत्पन्न मानस की नीरवता, खिन्नता और धुंधलेपन की छाया ने उनके काव्य को अस्पष्ट, वेदना-पूर्ण और पीड़ामय बनाया है। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाये', 'शृंखला की कड़ियाँ' आदि गद्यमयी कृतियों में लेखिका की वेदना का उत्स प्रायः बहिमुखी अर्थात् सामाजिक है। चतुर्दिक जीवन की कटुता, विषमता, दरिद्रता, उसमें व्याप्त अत्याचार, शोषण और उत्पीड़न संवेदनशील व्यक्ति के हृदय को करुणाद्र बना देता है। इसी प्रकार उनकी दर्शन-प्रधान कृतियों में वेदना का उत्स आध्यात्मिक और दार्शनिक हो गया है। अध्ययन, चिन्तन और मनन के कारण उनकी व्यक्तिगत वेदना पारलौकिकता की उज्जवल छटा से उद्भासित हो गयी है। कहने का तात्पर्य है कि उनकी वेदना का उत्स व्यक्तिगत, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार का है। महादेवी के आलोचकों में डा० नगेन्द्र ने उनकी वेदना का उत्स मानसिक दमन और अतृप्तियों मे माना है—"सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और मांस न ग्रहण कर सकने के कारण वह एक तो

वांछित शक्ति का संचय नहीं कर पायी, दूसरे एकान्त अन्तर्मुखी हो गयीं। इस प्रकार उसके आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है ·····" यही बात शचीरानी गुर्टू ने इस प्रकार कही है—"यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ पट पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ सी अंकित कर गई।" डा० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' का मत भी लगभग यही है—"महादेवी वर्मा के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक-विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है, जिसके अनुसन्धान में कभी तृप्ति नही।" इस प्रकार उपर्युक्त आलोचकों ने महादेवी की वेदना का उत्स व्यक्तिगत कुण्ठाओं में ही माना है। वस्तुतः महादेवी का विरह व्यक्तिगत होते हुए भी आध्यात्मिक है। उनका व्यक्तिगत दुःख विरह की आंच में जलकर अपनी लौकिकता, पार्थिवता को खो बैठा है। डा० शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दों में कहा जा सकता है—"सारांश यह है कि उनकी वेदना का उत्स उनकी व्यक्तिगत कुण्ठाओं में ही है, हाँ एक सफल कवयित्री की तरह उन्होंने उसका उदात्तीकरण कर लिया है। इस कार्य में जहां एक ओर सामाजिक उत्पीड़न और शोषण सहायक हुआ है वहां दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के वेदान्त-सम्बन्धी व्याख्यानों की गूंज, कवीन्द्र रविन्द्र के काव्य, सस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थो के अध्ययन ने उनकी पीड़ा को रहस्यवादी पीड़ा बना दिया है जो सहज न होकर चिन्तन के बल पर आयी है। उसमें आत्मसमर्पण और कर्तव्य का उच्च आदर्श है, एकान्त-साधना की गरिमा है, दृष्टिकोण और दर्शन के अतिरिक्त अभिव्यक्ति का सोज्ज्वल सौष्ठव है, उज्ज्वल प्रणय का आलोक है, अतः कही भी काम की गन्ध नहीं आ पायी है।"

साहित्य-साधना—साहित्य-साधना में अनवरत तल्लीन रहने वाली सुश्री महादेवी वर्मा का हिन्दी-साहित्य के आधुनिक कवियो में विशेष गरिमामय स्थान है। छायावादी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अत्यत महत्वपूर्ण है। छायावादी काव्य को जहाँ प्रसाद ने प्रकृतितत्व दिया, निराला ने उसमें मुक्त छन्द की अवतारणा की और पन्त ने उसे सुकोमल कला प्रदान की; वहाँ छायावाद के कलेवर में प्राण-प्रतिष्ठा करने का गौरव महादेवी को ही प्राप्त

है। भावात्मकता एवं अनुभूति का गाम्भीर्य उनके काव्य की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-हिलोरों का ऐसा सजीव और मूर्त अभिव्यंजन किसी अन्य आधुनिक कवि की कृतियों में उपलब्ध नहीं होता। महादेवी की काव्य-साधना आद्यान्त आत्मनिष्ठ रही है क्योंकि उनकी वाणी गीतिकाव्य के माध्यम से ही प्रस्फुटित हुई है। भाव और शिल्प का अत्यन्त सुन्दर समन्वय उनकी काव्य रचनाओं मे दृष्टिगत होता है। काव्य-साधना के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं में भी सुश्री महादेवी ने अपनी लेखनी की गति का परिचय दिया है। 'अतीत के चलचित्र', स्मृति की रेखायें', 'शृंखला की कड़ियां', 'पथ के साथी', 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' आदि गद्यमयी रचनाओं में महादेवी के गद्य का अत्यन्त संयत, प्रौढ और परिपक्व रूप दृष्टिगत होता है। इसके अतिरिक्त अपने काव्य-ग्रन्थो की भूमिकाओ और 'चाँद', 'साहित्यकार', 'वंग-दर्शन', 'हिमालय' आदि पत्रिकाओं के सम्पादकीय में महादेवी की परिपक्व गद्य-शैली का स्वरूप दर्शनीय है। अपनी गद्यमयी रचनाओ में वे एक उच्चकोटि की गद्य-लेखिका, निबन्धकार एवं आलोचक के रूप में हमारे सामने आती है। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाए' जैसी गद्यमयी रचनाओं में उनके सस्मरणों एवं रेखाचित्रों का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। 'शृंखला की कड़ियाँ' मे उन्होने नारी को लेकर समाज के सम्बन्ध में वस्तु-स्थिति का चित्रण किया है। 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' और 'साहित्य-कार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' में आधुनिक साहित्यिक विषयों पर गम्भीर आलोचनात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये है। इतना सब कुछ होने पर भी वे मुख्य-तया कवयित्री ही हैं। उनका यह रूप अत्यन्त व्यापक एवं शक्तिशाली है। करूणा और वेदना से विद्ध उनका हृदय कविता मे जितनी तीव्रता एव स्वा-भाविकता के साथ विगलित होता है उतना गद्य के माध्यम से नही। महादेवी का काव्य वेदना और करूणा से ओत-प्रोत है और वेदना की अभिव्यक्ति उनके काव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। 'नीहार, 'रश्मि', 'नीरजा', सांध्यगीत,' 'दीपशिखा,' और 'सप्तपर्णा' महादेवी के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। 'आधुनिक कवि (भाग १)' और 'सन्धिनी' मे उनकी चयन (Selected) कविताओ का सग्रह है। 'यामा' नाम से प्रकाशित पुस्तक मे उनके प्रथम चार ग्रन्थों के एक सौ पचासी गीत सग्रहीत है। 'सप्तपर्णा' मे उनतालीस कवितायें हैं।

ये कविताएँ संस्कृत के सात सर्वश्रेष्ठ साहित्य-साधकों के ग्रंथों के अनुवाद रूप में हैं। 'सप्तपर्णा' में महादेवी के अनुवादक-रूप का अत्यन्त सुन्दर रूप दर्शनीय है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि महादेवी की मौलिक काव्य-सर्जनात्मक प्रतिभा का स्पष्ट निदर्शन उनकी 'नीहार,' 'रश्मि, 'नीरजा,' 'सांध्यगीत,' और 'दीपशिखा' कृतियों में ही उपलब्ध होता है। अतएव प्रस्तुत सदर्भ में महादेवी की उपरिलिखित पाँच काव्य-रचनाओ का अध्ययन ही उपयुक्त एवं तर्क-संगत होगा।

'नीहार' कवयित्री की आरम्भिक रचना है। इसमे १९२३ से १९२९ ई० तक की कविताओं का संग्रह है। प्रारम्भिक कृति होने के कारण इसमें उनके काव्य के जीवन-आदर्श की रूप-रेखा निर्मित हो रही है उसका अभी स्थिर रूप नही बन पाया है। पुनश्च उनके जीवन-दर्शन की कतिपय रूप-रेखाय यहाँ भी स्पष्ट है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि यह संसार स्वार्थमय और दुःखमय है। इस स्वार्थ-प्रधान विषाद-संकुल-विश्व से दूर एक अलौकिक, अनन्त, शाश्वत आनन्दमय संसार है, जो वस्तुतः अत्यधिक आकर्षक और भव्य है। इस ससार का निवास बहिर्मुखी जीवन में न होकर मानव-मन के अन्तरतम में है। पीड़ा, वेदना और दुःख की साधना से तप कर ही मानव इस स्वर्णिम संसार तक पहुँच सकता है। इस विषाद और संताप से निर्मित संसार में भी कभी-कभी उस शाश्वत जीवन की आभा मुस्कराने लगती है। वस्तुतः केवल उसी क्षण में वास्तविक आनन्द का अनुभव होता है। इस ससार के दुःख का कारण है—क्षण-भंगुरता, अस्थिरता, विध्वंस, नाश, जरा, मृत्यु, असफलता। सर्वनाश का प्रभंजन यहाँ अनवरत गति से नित्य विद्यमान रहता है। इस सर्वनाश के प्रभंजन से बचने का एकमात्र साधन आत्म-विसर्जन, त्याग, संयम और निष्ठा का जीवन है। इतना सब कुछ होने पर भी इस संग्रह की कविताओं में न उनके प्रश्न ही स्पष्ट हैं, न उत्तर ही। 'रश्मि' में हमें जैसा सुसम्बद्ध दर्शन मिलता है, वैसा यहाँ नहीं मिलता। 'नीहार' के गीत कौतूहल मिश्रित वेदना से परिपूर्ण है। विस्मय और जिज्ञासा के साथ-साथ स्वानुभूति की विवृत्ति 'नीहार' की अपनी विशेषता है। 'नीहार' अनुभूति-प्रधान रचना है, उसमें चिन्तन की बोझिलता नहीं, मुक्त भावों की सहज अभिव्यक्ति है; अतः कितनी ही कविताओ में पार्थिव प्रेम की टीस और वेदना स्पष्ट मुखरित हो उठी है। 'नीहार' की कतिपय कविताएँ द्रष्टव्य हैं—

(अ) "निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार"

(आ) "नहीं अब गाया जाता देव, थकी अंगुली हैं ढीले तार,
विश्व-लीला में अपनी आज. मिला लो यह अस्फुट झंकार।"

(इ) "अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता"

(ई) "तुम्हीं में रहता मूक वसन्त, अरे सूखे फूलों के हास।"

महादेवी की दूसरी कृति 'रश्मि' उनकी प्रथम प्रौढ रचना है। उसकी भाषा अधिक परिष्कृत और प्रांजल, विचार अधिक गम्भीर और स्थिर तथा भाव अधिक स्पष्ट हैं। इस संग्रह की अधिकाश कवितायें १६३० और १६३२ ई० के बीच की लिखी हैं—हाँ, कुछ कवितायें पुरानी है। इस सग्रह की कविताओं में कवयित्री की दृष्टि अपनी ओर से अधिक दूसरों की ओर है। चिंतन और दर्शन से ओत-प्रोत इन कविताओं मे भारतीय रहस्यवादी दर्शन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नवीन युग के अनुरूप नवीन शिल्प का प्रयोग किया गया है। कवयित्री के सौम्य और आकर्षक व्यक्तित्व के दर्शन 'नीहार' और 'रश्मि' में दर्शनीय हैं। 'रश्मि' की ३५ रचनाओं में से आधी से अधिक में कवयित्री ने आत्मा, प्रकृति और परमात्मा का स्वरूप-निरूपण अत्यन्त भावमयी भाषा में किया है। कवयित्री सृष्टि, ईश्वर, जीवन-मृत्यु, परिवर्तन, वेदना के प्रति ममत्व, आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता आदि विषयों के चिन्तन में अनुरक्त है। अद्वैतवाद, वेदान्त-दर्शन और उपनिषदों के विचारों की छाया यहाँ स्पष्ट है 'रश्मि' कविता-संग्रह के जीवन-दर्शन और भाव-वैभव को समझने के लिए कतिपय कविताये द्रष्टव्य है—

(अ) "जीते-जीते मिट जाऊँ पाऊँ न पथ की सीमा।"

(आ) "कनक से दिन मोती सी रात, सुनहली साँझ गुलाबी प्रात
मिटाता रगता बारम्बार, कौन यह जग का चित्राधार ?"

(इ) 'हुआ त्यों सूनेपन का भाव, प्रथम किसके उर में अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान, विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण ?"

(ई) "मै तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश
मै तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों घन से तड़ित् विलास"

'नीरजा' महादेवी की तीसरी प्रौढ कृति है। १६३४ ई० मे प्रकाशित इस ५८ गीतों के कविता-संग्रह में कवयित्री के विचार प्रौढ़ हो गये है। साथ-

साथ ही वह चिंतन से अनुभूति की ओर अग्रसर हो गयी है। 'रश्मि' का चिन्तन पक्ष 'नीरजा' तक आते-आते और भी स्पष्ट तथा गहन हो गया। प्रस्तुत कृति में भाव और बुद्धि—हृदय और मस्तिष्क का समुचित और भव्य सामंजस्य उपलब्ध होता है। इसी सामजस्य में नीरजा की उत्कृष्टता सन्निहित है। डाँ० विजेन्द्र स्नातक ने कवयित्री की समन्वयात्मिका वृति का प्रकाशन इस प्रकार किया है—"....रसानुभूति के उत्कर्ष के साथ अभिव्यंजना का क्रमिक विकास 'नीरजा' में स्पष्ट परिलक्षित होता है। कल्पना का प्राधान्य अब क्षीणतर होकर चिन्तन और अनुभूति के रूप में परिवर्तित हो गया है।" वस्तुतः कवयित्री का काव्यमय व्यक्तित्व इस ग्रन्थ मे पूर्ण रूप से खुल गया है। जीवन, मृत्यु, मनुष्य, सुख, दुःख, वेदना, विरह, परदुःखकातरता आदि पर दार्शनिक अनुभूति-पूर्ण चितन हमें वर्ण्य कृति में उपलब्ध होता है। प्रकृति का सुन्दर और रहस्यमय चित्रण भी पाठक की चेतना को रस-स्निग्ध करता है। कल्पना का बाहुल्य और प्रकृति का समयानुरूप चित्रण उनके काव्य को विशेष गरिमामय बना देता है। उनकी रहस्यात्मकता में आध्यात्मिक अनुभूति के साथ ही साथ बौद्धिक अनुभूति भी है। स्वयं महादेवी जी ने कहा है—"छायावाद का कवि धर्म के आध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का अनुरागी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर ,पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता की भावना की हृदय की भावना-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य- सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद अध्यात्मवाद रहस्यवाद इत्यादि अनेक नामों का भार सभाल सके।" 'नीरजा' में व्याप्त वेदना वैयक्तिक वेदना से उठकर आध्यात्मिक एव अपार्थिव हो गयी है इस विरह-वेदना ने कवयित्री को उदार, करुणासिक्त और परदुःख-कातर भी बना दिया है। इस वदना ने 'नीरजा' को वस्तुतः अश्रुमय बना दिया है। पर ये आँसू सदा निराशा और क्षोभ के वातावरण में ही प्रवाहित नही होते, आशा और विश्वास के साथ भी बहते हैं। डाँ० स्नातक ने लिखा है—"इसमें अपने उपास्य के लिए केवल आत्मा की करुण अधीरता ही नही, अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है।" इस प्रकार 'नीरजा' कवयित्री की प्रौढ़ और संयत कृति है। 'नीरजा' के काव्य-

वैभव और जीवन-दर्शन का रहस्य समझने के लिए 'नीरजा' कविता-संग्रह की कतिपय कविताएँ द्रष्टव्य है —

(अ) 'मुस्काता संकेत-भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
विद्युत के चल स्वर्णपाश मे बँध हँस देता रोता जलधर,
अपने मृदु मानस की ज्वाला, गीतों से नहलाता सागर
दिन निशि को, देता निशि दिन को
कनक-रजत के मधु प्याले हैं !
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?'

(आ) 'मोती बिखराती नूपुर के छिप तारक-परियाँ नर्तन कर,
हिमकण पर आता-जाता मलयानिल परिमल से अंजलि भर।'

(इ) "तुम मुझमे प्रिय ! फिर परिचय क्या ?
तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या !'

(ई) 'सजनि ! विश्व का कण-कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी !'

(उ) 'तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती उस छोटे क्षण अपने में।"

'नीरजा' के बाद उनकी अगली कृति 'साध्यगीत' है। १६३६ ई० में प्रकाशित यह ग्रन्थ भी 'नीरजा' की भाँति ही अनुभूति-प्रधान है। इसमें मूलतः आध्यात्मिक मिलन और वियोग के गीत मिलते है। "पर इन गीतों में उपासना का भाव और भी प्रबल तथा दृढ हो गया है। प्रिया और प्रियतम का भाव यहाँ आकर और भी सशक्त एवं तीव्र हो गया है। यद्यपि इन गीतों में चिंतन की अपेक्षा अनुभूति ही प्रधान है पर प्रथम तो चिन्तनशीलता पूरी तरह छूटी नही है, दूसरे इस चिंतनशीलता ने उपासना-भाव और आसक्ति को और भी दृढ बना दिया है। 'नीरजा' की भाँति 'सान्ध्यगीत' में भी सुख-दु:ख का समन्वय किया गया है। भावुकता और तल्लीनता से युक्त इस ग्रन्थमे प्रकृति-

चित्रण रहस्यात्मकता से आच्छन्न है। इसमें न 'नीरजा' के उठे प्रश्न है, न 'रश्मि' की जिज्ञासा है। 'सान्ध्यगीत' में यह सब कुछ शांत हो चुका है। "सांधयगीत तक आते-आते कवयित्री की गति स्थिर और सुनिश्चित हो गयी है। उसकी साधना का स्वरूप और सान्ध्य का रूप भी निश्चित हो गया है। अनुभूति और साधना का काव्यमय स्वरूप भी यहां स्पष्ट है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार 'सांध्यगीत' में दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हो उठी है और इन गीतों की रहस्यभावना ही प्रधान स्थान पा गयी है। कवयित्री रहस्यवाद को बौद्धिक विलास नहीं मानती, न उसे कल्पना और कला पर ही आश्रित करती हैं। आपके अनुसार आधुनिक रहस्यवाद में अनेक तत्व हैं :—(अ) पराविद्या की अपार्थिवता. (ब) वेदांत का अद्वैत, (स) लौकिक प्रेम की तीव्रता (द) कबीर का सांकेतिक दाम्पत्य-भाव (ङ) सूफी-मत की प्रेमजन्य आत्मानुभूति और चिरतन प्रियतम का विरह, प्रकृति के अनेक रूपों में एक मधुर व्यक्तित्व का आरोपण। समग्रत: कहा जा सकता है कि भाव-सौन्दर्य, प्रकृति-वैभव और अनुभूति तीव्रता की दृष्टि से 'सांध्यगीत' एक सफल कृतिकार की सफल कृति है। भावगत-सौष्ठव के अतिरिक्त कला-परक काव्य-कुशलता भी प्रस्तुत कृति में भव्य बन पड़ी है। भावाभिव्यक्ति का प्राधान्य होते हुए भी कला-पक्ष अत्यधिक समृद्ध है। वर्ण्य कृति की गीत-लहरियों ने आधुनिक हिंदी कविता को वह लोच और लालित्य प्रदान किया जिससे वह संगीतमय हो उठी और जिसने हिंदी कविता का मस्तक उन्नत किया। कल्पना का आकर्षक रुचिर वैभव भी यहाँ दर्शनीय है। अन्तत: भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से विवेच्य कृति सम्पन्न एवं समृद्ध है। 'सांध्यगीत' की कतिपय कविताएँ द्रष्टव्य हैं—

(अ) "क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?
शशि को दर्पण मे देख देख,
मैने सुलझाये तिमिर केश,
गूंथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं ?"

(आ) "नव घन आज बनो पलकों में !
पाहुन अब उतरो पलको में !
तम सागर मे अँगारे सा,
दिन बुझता टूटे तारे सा,
फूटो शत-शत विद्यु-शिखा से
मेरी इन सजला पुलकों में।"

(इ) "तिमिर में वे पद-चिन्ह मिले !
युग युग का पन्थी आकुल मन,
बांध रहा पथ के रजकण चुन,
श्वासों में रूँधे दुःख के पल
बन बन दीप चले।"

(ई) "शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सवेरा
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा,
मिलन का मत नाम ले मै विरह मे चिर हूँ।"

(उ) "शून्य मन्दिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।
अर्चना ही शूल भोले, क्षार दृग-जल अर्घ्य होले,
आज करुणा स्नात उजला, दुःख हो मेरा पुजारी।"

'सांध्यगीत' के पश्चात् 'दीपशिखा' महादेवी की प्रौढ एवं प्रख्यात कृति है। १९४२ ई० में प्रकाशित यह ५१ गीतों का कविता संग्रह है। रहस्यात्मक-साधना और कल्पना के उच्चतम रूप का भव्य एवं आकर्षक स्वरूप वर्ण्य कृति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। कतिपय आलोचकों ने इसे आपका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ कहा है। प्रकृति के अनेक रमणीय और मार्मिक चित्र कवयित्री की रहस्य-भावना से आच्छादित है। 'दीपशिखा' का प्रतिपाद्य आत्म-निवेदन है जिसे उन्होंने 'दीपशिखा' के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है। डा० शान्तिस्वरूप गुप्त का कथन है—"कवयित्री के साधनारत प्राणो को ही दीपशिखा का प्रतीक दिया गया है। जिस प्रकार दीपक की लौ अनवरत जलकर आलोक विकीर्ण करती है, दूसरों को प्रकाश देती है, उसी प्रकार कवयित्री अपने करुणाद्र हृदय की करुणा से दूसरों के दुख दूर करना चाहती हैं, स्वयं मिट कर

परहित करना चाहती हैं। अतः 'काव्य-संग्रह' का नाम अत्यन्त सार्थक है। उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष—विरह की अनन्त ज्वाला से परिपूर्ण व्यक्तित्व भी इस प्रतीक द्वारा अभिव्यंजित होता है।" 'दीपशिखा' में कवयित्री का गहन आत्म-विश्वास स्पष्ट है। स्वयं कवयित्री ने 'दीपशिखा' की भूमिका में कहा है—"दीपशिखा में अविश्वास का कोई कम्पन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका स्थान रहे, ऐसी कामना नहीं, पर रात की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक ही रहेगी। ...जीवन और मरण के इन तूफानी दिनों में रची हुई यह कविता (दीपशिखा) ठीक ऐसी ही है जैसे झंझा और प्रलय के बीच स्थित मन्दिर में जलने वाली निष्कम्प दीपशिखा।" अतः स्पष्ट है कि दीपशिखा की कवयित्री का व्यक्तित्व दीपमय हो उठा है जिसका एकमात्र धर्म निरन्तर जलते रहना है। कवयित्री की यह विरह-वेदना किसी अबला का वियोग-क्रन्दन नही, उसमे स्वाभिमान है, मन की दृढता तथा आत्मविश्वास है जलने की उदात्त भावना है, परदु.ख-कातरता है। यही कारण है कि कवयित्री पीड़ा को वरदायिनी मानती है क्योंकि वही आत्मा को परिष्कृत कर उसके कल्मष को जलाती है, उसे शालीन तथा गरिमामंडित बनाती है। प्रकृति के विभिन्न उपकरणों में भी साधिका उसी पीड़ा के दर्शन करना चाहती है। उनकी साधना मे ही सिद्धि मानने वाली कवयित्री परमात्मा में एकदम विलीन होना नही चाहती क्योंकि उससे तो आत्मा का अस्तित्व ही मिट जाता है। इस प्रकार 'दीपशिखा' मे साधना के आरम्भ से सिद्धि-प्राप्ति तक की अनेक स्थितियों का वर्णन है। भाव वैभव के साथ-साथ अभिव्यंजना-सौष्ठव भी प्रस्तुत कृति की अन्यतम विशेषता है।

"महादेवी कुशल कवयित्री ही नही कुशल चित्रकार भी है। 'यामा' और 'दीपशिखा' के चित्र इसके प्रमाण है। जिस प्रकार उनकी रंगमयी तूलिका चित्र-फलक पर चित्र सृष्टि मे सफल हुई है, उसी प्रकार उनकी लेखनी काव्य-पृष्ठों पर शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में। उनके शब्द-चित्रों में रेखाओं का प्रयोग अधिक होता है, रगों का कम। ये रेखाये भी हल्की और तरल होती है, पंत की तरह तीखी नहीं। उनके चित्रों की तरह शब्द-चित्रों के रग भी हल्के और धुले होते है पंत की कविताओं के से भास्वर नही।" यही कारण है कि डा० नगेन्द्र ने उनकी कला को तितली के पखो और पखुड़ियों से चुराई हुई कला कहा है—"पंत की कला में जड़ाव और कढ़ाव है, अत उनके चित्रों की

रेखाएँ पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रंगघुली तरलता है जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।" सूक्ष्म अवलोकन, संश्लिष्ट चित्रण तथा उपयुक्त वर्ण-प्रयोग ने उनके चित्रों को अतीव प्रभावपूर्ण बना दिया है। महादेवी का कल्पना-वैभव भी अप्रतिम है। यही कारण है कि काव्यचित्रों में कल्पना की चमत्कार शक्ति के बल पर एक ही भाव से सम्बन्धित अनेक चित्रों के निर्माण की अद्वितीय क्षमता है। सम्भवतः कहा जा सकता है कि अनुभूति और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से 'दीपशिखा' कवयित्री की श्रेष्ठतम कृति है। 'दीपशिखा' के काव्य-वैभव, जीवन-दर्शन, कल्पना-सौन्दर्य, भाव-तीव्रता एवं सुष्ठु अभिव्यंजना-शिल्प का रसास्वादन करने के लिए कतिपय कविताएँ द्रष्टव्य हैं

(अ) "नीरदों में मन्द्र गति स्वन,
वात में उर का प्रकम्पन,
विधु में पाया तुम्हारा
अश्रु से उजला निमन्त्रण।"

(आ) "अंजन-वदना चकित दिशाओं ने चित्रित अवगुंठन डाले,
रजनी ने मरकत-वीणा पर हँस किरणों के तार संभाले।"

(इ) "तैर तम-जल में जिन्होंने ज्योति के बुद्बुद् जगाये,
वे सजीले स्वर तुम्हारे क्षितिज सीमा बांध आये,
हँस उठा अब अरुण शतदल सा ज्वलित दिनमान।"

(ई) "लघु हृदय तुम्हारा अमर छन्द,
स्पन्दन में स्वर-लहरी अमन्द,
हर स्वप्न स्नेह का चिर निबन्ध,
हर पुलक तुम्हारा भाव-बन्ध,
निज सांस तुम्हारी रचना का
लगती अखण्ड विस्तार मुझे!
हर पल रस का संसार मुझे!"

(उ) "अब न लौटाने कहो अभिशाप की वह पीर
बन चुकी स्पन्दन हृदय में वह नयन में नीर
अमरता उसमें मनाती है, मरण त्योहार।"

इस प्रकार महादेवी की उपरिलिखित प्रसिद्ध पांच काव्य-कृतियों का परिचय देने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि महादेवी आधुनिक हिन्दी-

कविता के क्षेत्र में उच्चतम प्रतिष्ठा के योग्य है। उन्होंने माँ भारती के दिव्य मन्दिर को अपने काव्य-सुमनों से सुशोभित एवं सुगन्धित करने का महनीय प्रयत्य किया है। अन्ततः श्री विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में—"महादेवी जी ने अपने काव्य-ग्रन्थो का जो नामकरण किया है उसमे एक क्रम है और भाव की दृष्टि से उसे अत्यंत उपयुक्त कहा जा सकता है। प्रभात में पहले 'नीहार' आता है, फिर 'रश्मि' अवतीर्ण होती है, फिर 'नीरजा' खिलती है, फिर 'सांध्यगीत' की वेला आती है और तब कही रात की छाया घिर आने पर 'दीपशिखा' जलायी जाती जाती है। नीहार एक धुँधले विषादपूर्ण वातावरण की सृष्टि करता है। 'नीहार' ग्रंथ में भी एक अज्ञात आराध्य की उपासना चलती है, अज्ञात लोक से आह्वान आते है, हृदय के भाव स्पष्टता से व्यक्त नही हो पाये और साधना का मार्ग भी निश्चित नहीं हुआ है। रश्मि जैसे नीहार को चीर कर प्रकाश और प्रसन्नता फैलाती है, उसी प्रकार 'रश्मि' की रचनाओं में एक प्रकार का आह्लाद भरा हुआ है। इस ग्रंथ में प्रेमपात्र, प्रकृति और प्रेयसी के स्वरूपों के साथ जीवन, मृत्यु, मुक्ति और अमरता का मूल्यांकन भी स्पष्ट भाषा मे है। ग्रंथ का अन्त आशा के वातावरण में हुआ है। नीरजा में हृदयकमल प्रेम और प्रतीक्षा-सम्बन्धी भाव-पखुडियों मे खोला गया है। काल की दीर्घता के अनुसार इसमे गीतों की सख्या भी पिछले काव्य-ग्रंथों में प्रत्येक से अधिक है। 'सांध्यगीत की रचनाएँ इस उपासिका की उस स्थिति को व्यक्त करती हैं जब वह अपने पथ में एक ओर बहुत दूर बढ़ चुकी है और साथ ही साधना के फल से बहुत दूर नही है। 'दीपशिखा' में सबसे अधिक रचनाएँ दीपक पर हैं जिनमें दीप को आत्मा की शक्ति का प्रतीक मानकर उस समय तक निष्कंप भाव से विरह में जलने के लिए प्रोत्साहित किया गया है, जब तक प्रभात-वेला (सांध्य की आभा) न दिखाई दे।"

प्रश्न २—महादेवी के काव्य में विषय की सारगर्भित विवेचना कीजिए।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"तर्क और ज्ञान के स्वर में, बुद्धि-वाद के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है। भावना और कल्पना के सहारे अनुभूति के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। अद्वैतवाद में उस असीम चेतना का असीम सौदर्य का परिचय मात्र है, बौद्धिक एकता का ज्ञानमात्र है परंतु रहस्यवाद में उस असीम के सान्निध्य-सम्पर्क की आकुल प्रेरणा है, उस चिर सुन्दर से एकाकार

हो जाने की तीव्र तडपन है। अतः अद्वैतवाद रहस्यवाद का प्रथम सोपान है।"

हिंदी मे रहस्यवाद की अवतारणा सर्वप्रथम कबीर ने की। इस प्रकार वही धारा आगे बढती हुई जायसी के पावन-पुष्प 'पद्मावत' को विकसित करती हुई आधुनिक युग मे पहुँची। वर्तमान युग में रहस्यवाद के मुख्य कवि पन्त. प्रसाद, निराला और महादेवी माने जाते हैं। इनमें महादेवी जी का रहस्यवाद वस्तु और शैली भाव और अनुभूति सभी दृष्टियो से भारतीय भावना से अनुप्राणित है। उनके रहस्यवाद मे शुद्ध और निर्मल दर्शन—आत्मीय भावना के दर्शन होते है। उनका रहस्यवाद उपनिषदों का सार है, जिसे कबीर ने अपनी भावुक तन्मयता और उपासना की एकाग्रता से ओत-प्रोत कर दिया था। स्वयं महादेवी जी अपने रहस्यवाद का परिचय इस प्रकार देती हैं—'आज गीत में हम जिसे रहस्यवाद के रूप मे ग्रहण कर रहे हैं उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली है, वेदांत के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की' लौकिक प्रेम से तीव्रता ली और इन सब को कबीर के साकेतिक दाम्पत्य सूत्र मे बांधकर एक निराले स्नेह की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।" इस प्रकार महादेवी जी ने उस भारतीय रहस्यवाद को ग्रहण किया. जिसमे उपनिषदों का शुद्ध सात्विक चिन्तन तथा कबीर और मीरा का मधुर भावयुक्त माधुर्यभाव था।"

भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवाद के मूल मे निहित है। यही ज्ञानियो की जिज्ञासा का अंतिम रूप है जिसके मूल में माधुर्य भाव की भक्ति है। इस माधुर्य के आधार पर ही सारे रहस्यवाद का ढांचा खडा कर दिया गया है। यह भावना पुष्ट हो कर पाश्चात्य साहित्य से हिंदी साहित्य में आई है। महादेवी जी ने भी काव्य मे रति को स्थायी मानकर रहस्यवाद के क्षेत्र में लाकर इसी भावना को जन्म दिया। मीरा की माधुर्य भक्ति भी इसी भावना को लेकर व्यक्त हुई। महादेवी जी की सारी साधना उसी असीम और अव्यक्त का रहस्य सुलझाने की ओर उन्मुख हुई। कबीर की दाम्पत्य भाव मे तन्मयता भी इसी भाव की द्योतक है। इसी प्रकार महादेवी का कहना है—"मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।"

रहस्यवाद आत्मा और प्रकृति की, ब्रह्म के प्रति अनुरागमयी सम्बन्धाभिव्यक्ति होने से उस परम पुरुष या प्रेयसी को आत्मा और जगत् के निकट

लाकर सृष्टि के शाश्वत प्रश्न और चिरन्तन व्याकुलता के भाव की भूमि पर हल करता है। रवीन्द्रनाथ के अनुसार मध्ययुग के साधक कवियों की असामान्य विशेषता यह है कि उनमें उच्चकोटि की साधना और उच्चकोटि के काव्य का सम्मिश्रण है। पर आज का कवि इन रहस्यवादी कवियों की भावनाओं को आडम्बर मात्र कहता है, क्योंकि प्रत्यक्ष ही उनके जीवन में प्राचीन काल की सी साधना नहीं। यदि महादेवी जी को लिया जाय तो निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि वह रहस्यवादी काव्य प्रासाद की एक सुन्दर और समर्थ स्तम्भ है। यह सत्य है कि इनके रहस्यवाद में हठयोगियों की सी कुण्डलियों और षट चक्रों आदि की स्थापना नहीं है और न ही शरीअत से लेकर मारीफत तक की साधना का वर्णन है तब वह प्रेमिका किस काम की और साधना कैसी ? यदि आत्मा और परमात्मा का योग ही महादेवी की दृष्टि से योग है जिन्हें स्वयं उन्होंने भावयोग कहा है तो निश्चय ही महादेवी के रहस्यवाद की आत्मा भारतीय है।

रहस्यवाद के मूल में साधक के हृदय में अपने प्रियतम के प्रति मिलन की आकुल प्रेरणा होती है। राय कृष्णदास जी ने 'नीरजा' की भूमिका में लिखा है—'कवि की आत्मा मानो इस विषय में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी दृष्टि में विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है। इस प्रतिबिम्ब जगत् को देखकर कवि का हृदय उसके सलौने बिम्ब के लिए ललक उठा है—उसी एक का स्मरण, चिन्तन एवं तादात्म्य होने की उत्कण्ठा महादेवी जी की कविताओं का प्राण है।' उदाहरण स्वरूप उन्हीं की पंक्तियाँ देखिए—

एक करुण अभाव में चिरतृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत;
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में;
कौन तुम मेरे हृदय में ?

अथवा

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,

पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चांदनी भी हूँ !

यदि आत्मा और ब्रह्म के योग मे 'योग' शब्द ही अधिक प्रिय है, तो महादेवी जिस योग मे रत है वह 'भावयोग' है। उन्होने हृदय की भावना के आधार पर उस परम सुन्दर को प्रत्यक्ष किया है और उसी के बल पर उसे सिद्ध करने की अभिलाषा करती है । महादेवी जी ने उसे—उस विभु को—जगत् के माध्यम से पहचाना है। वह इसे देखती है और इसके परिवर्तनों पर कुतूहल भरी दृष्टि डालती है—

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली सांझ गुलाबी प्रात;
मिटाता रगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार ?

सृष्टि के पीछे छिपे हुए छलिया पर वह मुग्ध हैं। अपने प्रियतम से मिलने के लिए महादेवी जी को जिन-जिन परिस्थितियो का सामना करना पडा है उनका भी मार्मिक-चित्रण उनके काव्य मे कलामयी तूलिका द्वारा अंकित किया गया है। विरहिणी को स्वय तिल-तिल जलने की तनिक भी चिता नही, उसे तो इस बात की चिता है कि उसके दीपक के जलने से जो कालिमा उत्पन्न होगी उससे कही प्रियतम का पथ कालिमामय न हो जाये—कवि की भावना कितनी सात्विक है। आत्मा का भव्य स्वरूप देखिये—

"यह न झंझा से बुझेगा,
बन मिटेगा मिट बनेगा,
भय यही है हो न जावे प्रिय तुम्हारा पथ काला !"

मुग्धता सुधि की जननी है, सुधि पीड़ा की। तभी तो किसी आलोचक ने लिखा है—'वेदना महादेवी के काव्य-गगन में वायु सी व्याप्त है। पीड़ा उन्ही के दर्शन से प्राप्त हुई है अतः वह त्याज्य नही। हार बनना है तो हृदय बिधवाना ही होगा।'

"महादेवी का समस्त काव्य रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। रहस्यवाद आत्मा-परमात्मा की पारस्परिक प्रणयानुभूति को कहते है। इस दृष्टि से इनका काव्य ब्रह्म के प्रति आत्म-निवेदन मात्र है। यह ब्रह्म सृष्टि का कर्ता है। सृष्टि की रचना होते ही इस प्रेम के खेल का खेलने वाले तीन खिलाड़ी

हुए (१) परमात्मा, (२) आत्मा, (३) प्रकृति। परमात्मा हुआ पुरुष के रूप में प्रेमी, प्रकृति तथा आत्मा हुई नारी के रूप में प्रेमिकाएँ। प्रकृति के भावों का विश्लेषण करने वाली भी महादेवी ही हैं, अतः उनके काव्य में उन्ही को एकमात्र प्रेमिका समझना चाहिए। चेतन ब्रह्म का अपना कोई स्थूल रूप नहीं है, अतः उसके रूप का निर्माण या सम्बन्ध की भावना साधक की वृत्ति ही करती है। महादेवी का प्रेमी अनंत महिमामय एवं अनन्त करुणामय होने के साथ अनन्त सुषमामय है। वह परम सुन्दर, चिर सुन्दर है। सृष्टि की सुन्दरता उसकी सुन्दरता की छायामात्र है। महादेवी का हृदय इसी सुन्दर के लिए व्याकुल हैं। प्रकृति में इसी के रूप की छाया वे देखती हैं। इसी की प्रतीक्षा करती हैं। इसी को प्रिय और निष्ठुर कहती हैं। इसी को मृदु उपालम्भ देती है। इसी की मनुहार करती है। इसी के लिए रात दिन रोती रहती है। सतोष की वात यह है कि उनका प्रेमी आकर्षित करना ही नहीं, आकर्षित होना भी जानता है। अतः साध्य के साथ आत्मा की सम्बन्धाभिव्यक्ति इस सरणी द्वारा हुई है—

(१) आत्मा परमात्मा के गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाली उसका अंश है जैसे लहर और समुद्र अथवा किरण और चाँदनी।

(२) वह पृथक होकर पृथ्वी पर आती है।

(३) वह पृथ्वी के सुखों का उपभोग करती और सुख-सौन्दर्य की सृष्टि करती है।

(४) परमात्मा भी आत्मा के लिए उधर विह्वलता का अनुभव करता है।

(५) परमात्मा के इंगित या आह्वान पर आत्मा सृष्टि के खेल को अधूरा छोड़ उसमें लीन हो जाती है।

इस विचार पद्धति का मार्मिक काव्य-रूप देखिये –

तुम अनंत जलराशि ऊर्म्मि में
चंचल सी अवदात
अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो
कूलो पर अज्ञात;
हिम-शीतल अधरों से छूकर
तप्त कणों की प्यास,

बिखराते मंजुल मोती से
बुदबुद में उल्लास;
देख तुम्हें निस्तब्ध निशा में
करते अनुसन्धान
श्रांत तुम्हीं में सो जाते जा
जिसके बालक प्राण।
मै तुमसे हूं एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश;
मै तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित् विलास।

साध्य-साधक सम्बन्ध को लेकर महादेवी की अपनी विशेषता यह है कि ब्रह्म की महत्ता तो स्वीकार की ही है, पर आत्मा या साधिका की महत्ता की घोषणा भी बराबर की है। महादेवी के प्रेम मे पत्नी का आत्म-समर्पण नहीं, प्रेमिका का गर्व भी है, जो बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। (हमारे प्रतिनिधि कवि—आधुनिक कवि—'महादेवी वर्मा'—लेखक श्री विश्वम्भर 'मानव'

रहस्यवादी कवियों के काव्य मे दुःखवाद की प्रधानता अधिक है। महादेवी की प्रति पंक्ति मे रोदन है। इसका कारण एक प्रकार का आध्यात्मिक असन्तोष है। दुःख की धारा प्रसाद के 'आँसू', पन्त की 'ग्रन्थि' से महादेवी के काव्य-क्षेत्र में आकर पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो गई है। महादेवी का दुःखवाद आध्यात्मिक है। दर्शन के गम्भीर अध्ययन, स्त्री स्वभाव और साहित्यिक परम्पराओं से प्राप्त हुई सुगमता ने उनके आध्यात्मिक दुःखवाद को अधिक परिपुष्ट रूप दे दिया है। राय कृष्णदास 'नीरजा' की भूमिका में लिखते हैं—"उन (महादेवी) की काव्यसाधना आध्यात्मिक है। उसमे आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है। कवि की आत्मा मानो इस विश्व मे बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है।" निम्न पदों में उनका दुःखवाद स्पष्ट है। उनके लिए दुख एक प्रकार की साधना है—

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात,
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास।

अपना जीवन दीप मृदुल तर,
वर्ती कर निज स्नेह-सिक्त उर।

+ + +

तू जल-जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिट जाता तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल!
मदिर-मदिर मेरे दीपक जल! प्रियतम का पथ आलोकित कर!

रहस्यवाद के मूल में अद्वैतवाद की भावना निहित है। जीवन सदैव ब्रह्म के प्रति विकल रहता है, प्रतिक्षण सच्चे स्वरूप को पाने के लिए प्रयत्नशील होता है। महादेवी जी स्वयं को परब्रह्म ही का एक अंश मानती हैं। उनका अपना पृथक् अस्तित्व कुछ नहीं। उन्हें अपने प्रियतम के सत्य स्वरूप का ज्ञान हो गया है। उनके दृष्टिकोण से अद्वैत की भावना तो उनके लिए है जो द्वैतवादी है। महादेवी जी तो 'अहम् ब्रह्मोस्मि' की स्थिति को स्वीकार करती हैं, फिर प्रेयसी और प्रियतम के अभिनय की आवश्यकता ही क्या?

तुम मुझ में प्रिय, फिर परिचय क्या!
मुझ में नित बनते मिटते प्रिय!
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?
काया छाया में रहस्यमय! प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या!

कबीर की भाँति महादेवी आत्मा की साधना में बहुत विश्वास रखती है। आत्मा अपनी इष्ट प्राप्ति के लिए कई प्रकार की कठिन साधना करती है। मिलनाकुलता में प्रतिक्षण आगे बढ़ती जाती है। महादेवी जी ने भी अपने लिए ज्ञान का सूक्ष्मतम पथ चुना है। कर्मकाण्ड के पथ पर चलकर यज्ञादि को स्वीकार करना पड़ता है। उपासना को ग्रहण कर मूर्तिपूजा करनी पड़ती है। इसी प्रकार ज्ञान मार्ग में आध्यात्मिक पिपासा की शान्ति के लिए चिन्तन की आवश्यकता होती है। महादेवी जी ने चिन्तन-पद्धति को स्वीकार किया है। उनकी साधना हिमगिरि के समान महान् है। एक ओर जहाँ वे सांसारिक सुख-दुख से किसी प्रकार प्रभावित नहीं होतीं, उन्होने अपने आँसुओं से संसार के ताप को समाप्त करने का प्रयत्न भी

किया है। महादेवी जी की साधना का मार्ग विवेक का मार्ग है। अतः उन्होंने स्थूल पूजा का विरोध किया है। मूर्तिपूजा में जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, महादेवी जी को उनकी आवश्यकता नहीं। वे उपकरण महादेवी जी के अनुसार उपासक के अपने शरीर मे ही हैं और सर्वसुलभ है। अतः वह कहती है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पद रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे।

महादेवी जी ने वेदान्त के दर्शन (प्रतिविम्बवाद) का ग्रहण भी कई स्थानों पर किया है। उन्होंने आत्मा के स्वरूप को सकुचित दायरे में से निकाल कर उसे विराट् और व्यापक व्यक्तित्व प्रदान किया है। महादेवी जी की साधना इस स्थिति पर आकर चरम सीमा पर पहुँची हुई ज्ञात होती है। ऐसे स्थानों पर आत्मा की अनुभूति वहुत सुन्दर वन पड़ी है—

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !
बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

इस प्रकार महादेवी जी ने धार्मिक रहस्यवाद को भी काव्य के रूप में ढालकर, कल्पना का पुट चढाकर जो स्वरूप हमारे समक्ष रखा है उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही अपितु यह भारतीय दर्शनो का प्राण ही है। भारतीय दर्शनों की सभी भावनाएं कल्पना और भावना का आवरण प्राप्त कर महादेवी जी की कविता के रूप में हमारे समक्ष आयी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल महादेवी जी की इस स्वाभाविक रहस्यसाधना के विषय में लिखते हैं—"स्वाभाविक रहस्यसाधना बड़ी मधुर और रमणीय है, इसमें सन्देह नहीं।"

"वस्तुत: वर्तमानयुगीन कवियों में वे रहस्यवाद की सबसे सफल गायिका हैं। इस दिशा में उन्होंने दार्शनिक आधार-केन्द्रों की अपेक्षा भाव-माधुरी पर अधिक बल दिया। इसलिए अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद भी उनके यहाँ दर्शन-शास्त्रीय जटिलता से मुक्त है तथा उनमे आत्मनिवेदन अथवा आत्मसमर्पण का स्वाभाविक प्रवाह विद्यमान है। लौकिक प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्म-तत्त्व की प्रेममयी अभिव्यक्ति उनके काव्य की अनन्य विशेषता है, किन्तु यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि कहीं-कही आध्यात्मिक मूल्यों के निर्वाह में उन्हें वांछित सफलता नहीं मिली है। कही-कहीं लौकिक प्रणयाधार इतना विकृत रहा है कि यह संभावना सत्य प्रतीत होती है कि उन्होंने ब्रह्म को उतना सप्राण नही माना है, जितना कि मीराबाई ने कृष्ण को माना था। इसीलिए ऐसे स्थानों पर उनकी भावनाएँ अनपेक्षित रूप में रहस्यात्मक, तथा दुरुह हो गई हैं। किन्तु यह स्थिति उनकी कविता में बहुत विरल है। प्राय: 'नीहार' से 'दीपशिखा' तक उनकी रहस्य-साधना में एक निश्चित साधना-क्रम को लक्षित किया जा सकता है, जो उत्तरोत्तर गम्भीर और उज्ज्वल होता चला गया है। उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है कि वर्तमान युग में रहस्यवाद का आधार भक्तिकालीन कवियों की भाँति आत्मिक न रहकर किंचित् विकृत हो गया है। यथा—"इस काव्यधारा की अपार्थिव पार्थिवता और साधना की न्यूनता ने सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, अत: यदि इसका रूप कुछ विकृत होता जा रहा हो तो आश्चर्य की बात नहीं। हम यह समझ नहीं सके हैं कि रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नहीं"—(महादेवी की साहित्य-साधना—डा० सुरेशचन्द्र गुप्त)"।

प्रश्न ३—महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—हिन्दी साहित्य में महादेवी जी का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने जहाँ इतनी काव्य-कृतियाँ प्रस्तुत की है वहाँ उनके साथ अपने दृष्टिकोणों को भी भूमिकाओं में स्पष्ट किया है जिनके फलस्वरूप उनकी रचनाओं को बोध-गम्य करना सहज हो गया है।

महादेवी जी उस बुद्धिवाद में विश्वास नहीं करती जो आज के वैज्ञानिक युग का मूल है। महादेवी जी जगत व्यापार के समाधान के लिए बुद्धि को अयथेष्ट समझती हैं—'मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धि-प्रसूत चिंतन

है। यही से महादेवी जी के रहस्यवाद का शिलान्यास हुआ है। प्रियतम जो अज्ञात, अज्ञेय और अदृश्य है, जिसका व्यक्तित्व चिरन्तन और शाश्वत है, वहाँ तक मन और बुद्धि पहुंच नही पाती। उनका प्रियतम अनुभूतिमय और चिन्मय है।

महादेवी जी की दूसरी प्रौढ कृति 'रश्मि' है। 'नीहार' की अपेक्षा इसकी दार्शनिक भावधाराएँ एवं अभिव्यक्तियाँ अधिक स्पष्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस रचना से पूर्व महादेवी जी ने कतिपय दार्शनिक पुस्तकों का अध्ययन कर लिया था। इसमे उनकी भावमयी भाषा आत्मा, प्रकृति और परमात्मा का स्वरूप निरूपण करती है। इस पुस्तक में महादेवी जी की आस्था अद्वैत-वादी है और उपनिषदों के विचारों की स्पष्ट छाप उनके गीतों पर दृष्टिगत होती है। अद्वैतवादियो के अनुसार दृश्यमान जगत् मिथ्या है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता नही। सारा ससार भ्रममय है जिसमे मृग-मरीचिका मानव को छलना और प्रवचना मे घेरे रहती है। सम्पूर्ण ससार स्वप्नवत् है जो हमारी कल्पनाओ को साकार रूप देता है। अत: इस स्वप्न काल की प्रतीति को महादेवी जी ने जागरण काल मे मिथ्या ठहराया है—

शून्यता में निद्रा की बन,
उमड़ते आते ज्यों स्वप्निल घन।
+ + +
हुआ त्यों सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर मे अम्लान।
और किस शिल्पी ने अनजान, विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण ?

उपनिषदो मे व्यक्त है कि सृष्टि का कोई अस्तित्व नही था, "न व्यक्तो पूर्वमस्ययेव।" महादेवी ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। उन्होने 'रश्मि' मे सृष्टि के इस विधान पर प्रकाश डाला है—

न थे जब परिवर्तन दिन रात, नहो आलोक तिमिर थे ज्ञात,
व्याप्त क्या सूने मे सब ओर, एक कम्पन थी एक हिलोर।
+ + +
न जिसमें स्पन्दन था न विकार !

'नीहार' मे जहाँ आत्मा, परमात्मा और प्रकृति पृथक्-पृथक् थे वहाँ "रश्मि' की रचनाओं मे एक ओर आत्मा और परमात्मा और दूसरी ओर प्रकृति

और आत्मा के द्वैत का निराकरण हो गया है। मानो कवयित्री को 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' और 'अहं ब्रह्मास्मि' का भान हो गया हो।

महादेवी जी की अधिकांश कविता दुःख से ओत-प्रोत है। हमारे सभी प्राचीन दर्शन-शास्त्रो में दुखवाद को ही आधार-शिला माना गया है। महादेवी जी ने कई स्थानो पर दुःखवाद के सम्वन्ध मे अपने विचार प्रकट किये हैं। दुःख और सुख के धूप-छांही डोरो से वुने हुए जीवन मे मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यो इतना प्रिय है, वहुत लोगों के लिए आश्चर्य का कारण है। इस 'क्यो' का उत्तर दे सकना मेरे लिए भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं। ससार जिसे दुःख अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में वहुत लाड़ और वहुत दुलार और वहुत मात्रा में सव कुछ मिला और उस पर दुःख की छाया नहीं पड सकी। कदाचित् यह उसी की प्रति-क्रिया है कि वेदना मुझे इतनी प्रिय लगने लगी है।"...इसके अतिरिक्त भगवान् वुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने से उनकी, संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय में परिचय हो गया था।"...."दुःख के दोनों ही रूप मुझे प्रिय हैं एक वह जो मनुष्य के संवेदन-शील हृदय को सारे संसार के अविच्छिन्न वन्धन में वाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के वन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है। परन्तु इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नही कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन एक कोने मे पड़ा रहेगा।" उनके इतने अधिक दुःख के कारण प्रायः सभी कविताओ की यही टेक है—

नहीं अव गाया जाता देव ! थकी अँगुली, हैं ढीले तार,
विश्व वीणा में अपनी आज मिला लो यह अस्फुट झंकार !

महादेवी जी प्रकृति को भी इसी रूप में देखती हैं—

रजतकरों की मृदुल तूलिका से ले तुहिनविन्दु सुकुमार,
कलियों पर जव आंक रहा था करुणा कथा अपनी संसार—

इसके अतिरिक्त ऐसी वीसियों कवितायें हैं जहाँ पर महादेवी जी ने अपने दुःखवाद को प्रकट किया है—

पीड़ा का साम्राज्य वस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के पार

दुःख के आधिक्य के कारण मुक्ति या निर्वाण ही महादेवी जी का ध्येय बन जाता है—

जब असीम में हो जायेगा मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता खेलेगी मिटने का खेल !

यह 'मिटने का खेल' ही उनके निकट एक खेल है। प्रकृति की ओर वह बहुत आधिक्य से आकृष्ट होती है—

'देकर सौरभ दान पवन से कहते जब मुरझाये फूल
जिसके पथ मे बिछे वही क्यों भरता इन आँखों में धूल ?
अब इनमें क्या सार मधुर जब गाती भौरो की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार !

इस प्रकार महादेवी जी का दुःखवाद भारत के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं वैदिक युग से भारतीय शास्त्रों मे इसकी प्रधानता चली आ रही है। हमारे षड् दर्शन, जैनियो तथा बौद्धों के ग्रन्थ प्रायः सभी इसी दुःख की भावना से ओतप्रोत है जिनमे उन्होने संसार की नश्वरता, जीव के जन्म-मरण का प्रश्न, सांसारिक मोह-माया की असारता पर विचार प्रकट किये हैं। महादेवी जी के दुःखवाद और पहले दुःखवादियों में बड़ा अन्तर है। अन्य महर्षियो और महात्माओं ने दुःखवाद मे आस्था रखकर सांसारिकता से परे रहने को महत्व दिया है परन्तु महादेवी जी ने जगत् के व्यापारों और कार्यकलापों को बड़ी प्रबल दृष्टि से देखा है। वे पार्थिव मिलन को कोई महत्त्व नही देती और संसार के सर्वत्र मिलन और विरह के कार्य-कलापों को अपनाती हैं। यद्यपि उनकी कविता का सीधा सम्बन्ध पार्थिव नही, फिर भी उनकी कविता एक अजीब प्रकार की गुदगुदी पाठकों के दिलों में पैदा करती है। उनकी कविता अपार्थिव होते हुए भी पार्थिव व्यक्तित्व रखती है, अलौकिक होते हुए भी लौकिकता का प्रगाढ़ आलिंगन किये हुए है। यही कारण है कि उनकी कविता दुःखमयी होते हुए भी अत्यधिक प्रिय हो गई है। फिर उनकी काव्य-साधना उसी सामाजिक जीवन को लिए हुए है जिसमें हम सब रहते है, जिसमें साधारण जनता के अनेकों प्रभावित चित्र अंकित होते है। यद्यपि उनकी कविता किसी समस्या का समाधान नहीं करती, उससे किसी को प्रत्यक्ष रूप से लाभ नही पहुंचता फिर भी न जाने क्यों, पाठक कुछ देर के लिए अपने दुःख को विस्मृत कर एक दूसरे जगत् मे अवश्य रम जाते है।

महादेवी जी पार्थिव मिलन को कोई महत्त्व नहीं देती। अतः सर्वत्र विरह और मिलन की बातों में आत्मा और परमात्मा के मिलन और विरह को लेती है। जहाँ विरह में मिलन का स्वरूप आता है वहीं उनकी कविता का स्वरूप रोमांटिक हो जाता है।

महादेवी जी के काव्य में परोक्ष अनुभूति की स्थिति को विशेष महत्व मिला है। दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने इसके तीन भेद किये हैं—सगुण साकार, सगुण निराकार और निर्गुण निराकार। महादेवी जी की अधिकांश रचनाओं में यही दार्शनिक आधार दृष्टिगत होता है।

महादेवी जी के काव्य मे छायावादी युग की सभी विशेषताएँ नहीं मिलती। यद्यपि प्राकृतिक उपकरणों को वे साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारो को कल्पना द्वारा साकार रूप देती है जिसमें उनकी समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट होती है फिर भी उनकी यह विशेषता सीधी चोट करने वाली नहीं। उनका सहज रूप आँखों के सामने नहीं आता। कहीं-कहीं तो उन प्रतीकों का सहज व्यापार हमारे सौन्दर्य संस्कारों के प्रतिकूल पड़ जाता है और कहीं-कहीं इतना क्लिष्ट होता है कि ईप्सित अर्थ की अनुभूति नहीं होती; बल्कि कुछ दुरूहता का आभास मिलता है। क्लिष्ट कल्पना का यह उदाहरण प्रसिद्ध है—

निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के बंदनवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आंसू से लिख-लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार!

महादेवी जी के सौन्दर्य-चित्रण भी आध्यात्मिक रहस्य-मुद्राओं से पूर्ण है जिनमें अद्भुत और विलक्षण उदासीनता, शान्ति, सात्विकता और निश्चलता के दर्शन होते है। अतः ऐसे वर्णन छायावाद के अन्तर्गत तो आ ही नहीं सकते क्योंकि उसमे चित्रण बड़ा सजीव, सचेतन और स्फूर्तिमय होता है।

'सांध्यगीत' में महादेवी जी की दार्शनिक विचार-धारा ने उच्चतर एकाग्रता को अपनाया है। ऐसे विषय के लिए काव्य का समृद्ध होना आवश्यक है परन्तु 'सांध्यगीत' में काव्य-उत्पादन समृद्ध नहीं। उसमे रहस्य-भावना प्रधान है। 'सांध्यगीत' के गीतों में उपासना का भाव भी प्रबल है।

वे सब गीत साधना के है, इन गीतों में अनुभूति की प्रधानता होते हुए भी चिंतनशीलता समाप्त नही हुई है, वल्कि उनकी शक्ति को दृढ किया गया है—

तोड़ देता खीझ कर जब तक न प्रिय यह मृदुल दर्पण,
देखते उसके अधर सस्मित, सजल, दृग, अलख आनन

'दीपशिखा' मे महादेवी जी को असन्तोष से मुक्ति मिल ग ˘ ˘ और अव्यवस्थित आवास का इन्हे जो सन्देह था वह भी दूर हो गया । उन्होंने सान्त्वना के दृढ स्वर में कहा—

भीति क्या यदि मिट चली ।
नभ से ज्वलित पग की निशानी
प्राण में भू के हरी है, पर सजल मेरी कहानी ।

'दीपशिखा' मे महादवी जी ने अत्यन्त प्राचीन दिव्य सिद्धान्तो के गान को फिर से गुनगुनाया है। न प्रेमी मुक्ति चाहता है, न भक्त और न ही रहस्यवादी। तीनों अनासक्त रह कर भी आसक्त रहते हैं। महादेवी ने भी जन्म और मरण से प्राप्त सुख और दुःख के क्षणों मे अपने प्राण-शिशु को सहलाया है। इसी से उनमे द्वैत की भावना का भ्रम पैदा हो गया है—

'मै ऊर्मि विरल, तू तुंग अचल,
वह सिन्धु अतल,
बांधे दोनों को मै चल चल,
धो रही द्वैत के सौ कैतव !

इस प्रकार महादेवी जी ने अपनी प्राय. सभी रचनाओं में दार्शनिकता का आधार लेकर अपनी दृढ अध्ययनशीलता और विवेचनगाम्भीर्य का परिचय दिया है। पाठकगण उनकी कविता का अर्थ करते समय इसीलिए रहस्यवादी पक्ष का प्रायः ग्रहण करते है। महादेवी जी 'सांध्यगीत' की भूमिका में लिखती है—"मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले है। सार्वभौमिक दुःख-वेदना और रहस्य-भावना की अनुभूति ने उन्हे और अधिक पुष्टि दी। इस प्रकार भक्तिभावपूर्ण भावुकता से मेरे गीतो का प्रयाण हुआ।" इससे स्पष्ट है कि दार्शनिक भूमि होते हुए भी इनके गीत अधिकतर इस लोक में रमते दिखाई देते हैं।

प्रश्न ४—महादेवी ने दु:खवाद को अत्यन्त ही मधुर और कोमल शब्दों में व्यक्त किया है, विवेचना कीजिए।

"महादेवी के काव्य का मूल द्रव्य वेदना है। दु:खवाद भारत के लिए कोई नवीन दर्शन नही। वैदिक युग के तुरन्त बाद से दु:खवाद यहाँ के दर्शन, और साहित्य में आबद्ध रहा है। षड्दर्शन, बौद्ध, जैन आदि सभी दर्शनों मे वह पल्लवित हुआ है फिर भी महादेवी के दु:खवाद में कुछ विशेषताएँ हैं जो प्राचीन दर्शन में नहीं मिलतीं। वह प्रकृति से आँखें नही हटातीं बल्कि उसके प्रति आग्रह के साथ उन्मुख हुई है। वे पार्थिव मिलन को महत्त्व न देकर भी सर्वत्र विरह और मिलन की भाषा में बोली हैं। उनके लिए वेदना दु:खमूलक नही हैं। वह प्रिय है, इसीलिए उसे उनके काव्य में इतना प्रधान पद मिला है और उनका काव्य दु:खवादी होते हुए भी एक अजीब गुदगुदी उत्पन्न करता है। उनकी वेदनानुभूति के मूल में अनेक कारण हैं—व्यक्तिगत जीवन की परिस्थितियाँ, सामाजिक जीवन की विषमताएँ, दु:ख, दैन्य और दारिद्रय तथा व्यक्तिगत वेदना को उदात्त बनाने की चाह आदि। इस प्रकार दु:ख के सागर में बैठकर जो मुक्ता-रत्न उन्होंने चुने वे अत्यन्त मधुर है, आकर्षक हैं। काव्य में ही नहीं उनके चित्रों तक में करुण मुद्राओं का प्राधान्य है—( डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त—"महादेवी तथा उनकी दीपशिखा।")

कुछ लोगों का कहना है कि जागृति के इस युग में दु:ख और करुणा के गीत गाना महादेवी जैसी महान विभूतियो के लिए नपुसकता का प्रदर्शन है, क्योकि नव-जागृति के काल मे प्रत्येक कवि में, जो कि समाज को अग्रसर करता है, नव प्रेरणा, नव स्फूर्ति और नव शक्ति का प्रादुर्भाव होना चाहिए। पर महादेवी की दृष्टि से दुख और करुणा का प्रभाव कठोर से कठोर पाषाण को भी मोमवत बना सकता है। वह दु:खवाद को प्रकट करती हुई 'रश्मि' की भूमिका में लिखती है—"दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो समस्त विश्व को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे मनुष्य की पहली सीढी तक भी न पहुँच सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दु:ख सब को बाँट कर। विश्व जीवन मे अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि

का मोक्ष है।" कदाचित इन्ही आरम्भिक प्रेरणाओं ने उनकी हृत्तन्त्री को झंकृत किया। उनकी स्मिति के, हृदय के प्रत्येक कम्पन के आँसू की प्रत्येक बूँद के पीछे दुःख की झलक स्पष्ट है। उनके लिए "दुःख सन्तप्त संसृति को उसी प्रकर सजल बनाए रखता है जिस प्रकार ग्रीष्म से झुलसे जग को बादल।"

"वे दुःख को जीवन की स्फूर्ति तथा प्रेरणा तत्त्व मानती हैं, वह कवि का 'मोक्ष' है, जीवन को अमरत्व प्रदान करने वाली शक्ति है। उसमें निर्माण की अपरिमित शक्ति है और वही सुख का दूत है। उनकी पीड़ा प्रेम की पीड़ा है। वह अन्य अभावजन्य पीड़ाओं से इसलिए भिन्न है कि वह जलाकर भी शीतलता प्रदान करती है। वह उसे मधुमय, मधुर, मधुमदिरा की धार तथा चन्दन सी शीतल इसीलिए कहती है। उनके लिए वेदना का महत्त्व तीन कारणों से है—वह अन्तःकरण को शुद्ध करती है, प्रिय को अधिक निकट लाती है और प्रियतम की शोभा भी उसी पर आधारित है। इसीलिए उनके काव्य में दुख के तीन रूप मिलते हैं—निर्माणात्मक, करुणात्मक और साधनात्मक।"

जीवन मे पीड़ा की उत्पत्ति प्रिय दर्शन से होती है। प्रेमिका सदैव प्रिय-दर्शन की प्रतीक्षा करती रहती है। परन्तु रहस्यवादियों के लिए एक बड़ी कठिनाई यह है कि उनका प्रिय अलक्ष्य और निराकार है जिसका साक्षात्कार असम्भव है। अतः जीवन में तडपती रह कर भी महादेवी जी उर्मिला की भाँति लक्ष्मण से मिल नही सकतीं, गोपा की भांति गौतम के दर्शन नही कर सकतीं। उनकी पीड़ा शाश्वत है। लौकिक प्रेम मे विरह की सीमा होती है, वह सीमा जीवन व्यापिनी होती है। परन्तु यहाँ महादेवी जी के लिए दुहरी चोट है। फिर भी महादेवी जी ने वड़े सयम से काम लिया है।

श्री विश्वम्भर मानव के शब्दों में—'कुछ आलोचकों ने इन पर यह आरोप लगाया है कि ये पीड़ा के ही गीत गाती रहती हैं। पीड़ा प्रेम के जीवन का अनिवार्य अंग है। महादेवी ने पीड़ा की महत्ता ही घोषित नहीं की, उसका सुख-पक्ष भी स्पष्ट किया है। पीड़ा की आनन्द-विधायनी शक्ति को प्रत्यक्ष करने के लिए उन्होने यह तर्क उपस्थित किया कि ब्रह्म को छूने का अर्थ है मिट जाना—क्योंकि मोक्ष तो अस्तित्व की हानि है। प्रेम का

आनन्द उसी समय तक उठाया जा सकता है, जब तक अस्तित्व है, अतः प्रेम की पीड़ा से भरा अस्तित्व बना रहे, इसी में आनन्द है।

वेदना के समान आनन्द की भावना भी महादेवी के काव्य में परिव्याप्त है। उन्होंने सुख और दुःख दोनों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। यह दूसरी बात है कि दार्शनिक दृष्टि से वे सुख को इतना महत्त्व नहीं देतीं, जितना दुःख को। सभी बातों पर विचार करते हुए यही कहना पड़ता है कि महादेवी के काव्य में दुःख जहाँ एक 'वाद' के रूप मे प्रतिष्ठित है, वहाँ सुख एक 'भावना' के रूप में ही। उनके काव्य-जीवन की परिस्थितियाँ ऐसी रही हैं कि विवश होकर उन्हें दुःख के भीतर जाना पड़ा है; पर लक्ष्य इस यात्रा का भी आनन्द ही है। इस लक्ष्य को यदि हम परम शांति कहें, तो वह भी आनन्द की एक दशा है। अतः महादेवी के दुःखवादी दर्शन को अतिरंजित रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है।

महादेवी माधुर्य-भाव की उपासिका हैं। ब्रह्म को उन्होंने प्रियतम के रूप में देखा है। अपने प्रेमपात्र के लिए इनका सम्बोधन तो 'प्रिय' ही है, पर और भी बहुत से नामों से वे उन्हें पुकारती हैं। कभी वे उनके रूप का ध्यान कर 'सुन्दर' अथवा 'चिरसुन्दर' कहती हैं, कभी उनके खिचाव और उलझन का ध्यान कर उन्हें 'निठुर', 'निर्मम', 'निर्मोही' बतलाती हैं, हृदय में आह्वान करते समय अतिथि या पाहुन कहती हैं। कहीं करुणामय देव, तुम और तू भी कहा है।

महादेवी के हृदयका प्रेम क्योंकि निर्गुण ब्रह्मके प्रति है, अतः उसमें आकर्षण, विरह, अभिसार पत्र-लेखन और मिलन आदि रहस्यवाद की सभी स्थितियाँ पाई जाती है। महादेवी के गीत उज्ज्वल प्रेम के गीत हैं। इसके द्वारा अपने अंतर की जिस सात्विकता या संयम-वृत्ति का परिचय इन्होने दिया है, वह उनके व्यक्तित्व की महत्ता की ही परिचायक नहीं, काव्य-गरिमा की आधार स्तम्भ भी है। यह प्रेम एक-पक्षीय अधिक है। इधर से जिस आवेग, जिस वेदना का प्रदर्शन हुआ है, उस ओर से वैसा नहीं। उधर कोई तीव्र हलचल, तीखी व्याकुलता और गहरी उत्कण्ठा का अभाव है। विरह मे आन्तरिक पीड़ा के वाह्य लक्षणों के बहुत मार्मिक और स्पष्ट वर्णन इनकी कृतियों में मिलते हैं।"

दुःख हमारी प्रवृत्तियों को अधिक उदार तथा संवेदनशील बना देता है। अंग्रेजी कवि मेनफील्ड ने दुःख को उन्नति का संबल माना है Men

are made great by the mighty fall. ग्रे ने भी दुःख को Tower of the human heart. माना है। धीरे-धीरे दुःख का रूप इतना व्यापक हो जाता है कि दुःखी व्यक्ति की करुणा की स्रोतस्विनी समस्त चर-अचर विश्व में व्याप्त हो जाती है। महादेवी जी सुख का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानतीं। जब दुःख अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच जाता है तब वही दुःख सुख का रूप धारण कर लेता है। उन्होंने रश्मि' में लिखा है :

चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर सुख हो जाना!

महादेवी जी चिर दुःख में ही, अधिक सुख अनुभव करती हैं। वह अहर्निश दुःख का ही आवाहन करती है। उन्हें तो करुणानिधि का साक्षात्कार गहन-तम अन्धकार में ही हो जाता है इसलिए यदा-कदा जीवन मे प्रकाशित होने वाली सुख-तारिकाओं को भी बुझा देना चाहती है—

करुणानिधि को भाता है
तम के परदे में आना,
हे नभ की तारावलियो तुम पल भर को छिप जाना !

शाश्वत दुःख की भावना सारे विश्व को, समस्त मानव जाति को एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखती है। उसके दुःख की व्यापकता जब अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँच जाती है तब एक बिन्दु अश्रु से न जाने कितने मरु उर्वर हो उठते हैं—

मैं नीर भरी दुःख की बदली ! विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होगा, परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

पीड़ा का संसार महादेवी के जीवन में अनजाने ही बस गया है और महादेवी जी भी उसे सँजोए चली जा रही हैं। क्योकि वह उनके प्रियतम की देन है। दुःख इसलिए उन्हें प्रिय है। हार बनना है तो हृदय बिंधवाना ही होगा। महादेवी जी अपने जीवन में सदैव शून्यता का अनुभव करती हैं। किन्तु उस सूनेपन मे भी वह सदैव प्राणों का दीपक सजा कर उजाला करती रहती हैं।

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर करती रही दीवाली।

महादेवी जी की पीड़ा और प्रियतम परस्पर इस प्रकार घुलमिल गए हैं कि दोनों में कोई अन्तर नही रह गया। इसलिए वह पीड़ा को सर्वस्व मान कर अपना और प्रियतम का मिलन नहीं चाहतीं—"मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूं।" महादेवी जी को अभाव और अतृप्ति में एक प्रकार का उल्लास और आनन्द मिलता है। मिलन हो जाने पर जीवन में कोई हलचल नही रह जायगी, जीवन सर्वथा मौन हो जायगा और भावनाएं हीन और जड़वत् हो जायेंगी। अतः महादवी जी कहती हैं—

एक करुण अभाव में चिरतृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में,
कौन तुम मेरे हृदय में ?

इतना होने पर भी महादवी का एक स्वप्न अवश्य है जिसकी स्निग्धता से वे परिचित भी हैं। उनका विश्वास है कि आज का विषाद कभी सुख में अवश्य बदल जायगा। "जिस प्रकार जीवन के उषाकाश में मेरे सुखों का उपहास सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार संध्याकाल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दब कर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा उठेगा।" महादवी जी का यही विश्वास है। 'नीरजा' में पहुँच कर महादेवी जी अपने इस कथन की सार्थकता सिद्ध करती हुई प्रतीत होती हैं। यहाँ कहीं कही महादेवी दुःख के साथ सुख का कुछ अनुभव कर लेती हैं। उनका विषाद 'सांध्यगीत' मे जाकर मिट सा गया है और भावनाएं परिष्कृत हो गई हैं। 'प्रियतम' का कुछ-कुछ आभास होने से वह अपनी आत्मा को दीपक की भाँति कुछ-कुछ जलते रहने का आदेश देती हैं—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल,
युग-युग, प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

'सांध्यगीत' से आकर 'दीपशिखा' में उनकी साधना परमावस्था को पहुंच जाती है और विरह की घड़ियाँ उन्हे मधुर सी जान पड़ती हैं—'विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी।"

महादेवी जी के अनुसार विश्व की सभी महान् विभूतियों में असीम वेदना और जलन छिपी है। वे सब विभूतियां इसलिए महान् हैं कि उनमे वेदना है, अनन्त पीड़ा है जिसका स्पर्श बड़े-बडे अचलों को भी चूर-चूर कर सकता है, कठोर से कठोर पत्थर को भी द्रवीभूत कर सकता है। एक छोटे से बीज मे भी इतनी शक्ति है कि वह स्वयं को गला कर असंख्य बीजो की सृष्टि कर सकता है। लघु-दीपक भी स्वयं को जला कर आलोक प्रदान कर सकता है। वसुन्धरा भी अपने गर्भ मे असंख्य तापों को भर अपने क्षणिक उद्‌गारो से अनेकों पर्वतों के वक्ष को हिला सकती है। फूल संसार को सुरभि-पूर्ण करता हुआ झर पड़ता है इस प्रकार स्पष्ट है कि एक मिटने में सौ-सौ वरदान है और उनकी विफलताओं में ही उनका पूर्ति विकास है। यही सृष्टि का अमर विधान है--

सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में है पूर्ति विकास !

महादेवी की कविता अपार्थिव चेतना के गिरि से फूटी हुई वेदना की मंदाकिनी है जो सहस्र-सहस्र अलौकिक भावनाओं की लहरियों को अपने क्रोड़ में खिलाती हुई अनन्त वेग से बढी जा रही है। यद्यपि इनकी प्रत्येक कविता में अवसाद की भावना व्यक्त हुई है परन्तु इन्होने कही भी मुक्ति की कामना प्रकट नही की, "चिरवटोही मैं," "भाती तम की मुक्ति नही" "प्यास ही जीवन" "चिनगारी का भी मधुरस" आदि पक्तियाँ उनकी चिर वेदना और विरह को प्रकट करती है। उनका हृदय जिसे अत्यन्त प्यार करता है उसके निकट पहुँचता है पर उसे प्यार करते हुए, उसे स्पर्श करते हुए डरता है:

रगमय है देव ,दूरी,
छू तुम्हें रह जायगी, यह चित्रमय क्रीड़ा अधूरी !
दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है""""

× × ×

विरह का युग मिलन का पल,

मधुर जैसे दो पलक चल ।

एकता इनकी तिमिर, दूरी खिलाती रूप शतदल ।

"रश्मि" की पूरी रचना में कवयित्री की अतृप्ति, असन्तोष ही प्रकट हुआ है। इसी अतृप्ति के कारण महादेवी जी पीड़ा की ओर अग्रसर हुई हैं। ज्ञानी जैसे अन्तर में ब्रह्म का निवास बतलाते है वैसे ही महादेवी जी ने हृदय में पीड़ा का एकान्त और चिर निवास माना है। हठीली साधिका पीड़ा से छुटकारा नहीं चाहती। उसमें साधना करके फिर आनन्द प्राप्ति चाहती है—

खोज ही चिर प्राप्ति का वर,
साधना की सिद्धि सुन्दर ।

+ + +

"अलि विरह के पथ में मैं तो न इति अथ मानती री ।"
"मैं चिर पथिक वेदना का लिए न्यास ।"

महादेवी जी को दुःख का वह रूप प्रिय है जो मनुष्य के 'संवेदनशील हृदय को, सारे संसार को एक अविच्छिन बन्धन में बाँध देता है।' दूसरे शब्दों में समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनों दुःख महादेवी जी को प्रिय हैं। उन्होंने स्वयं अपने जीवन को दुःख या पीड़ा से सिक्त माना हैं :

चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अंधेरा ?

अवश्य ही बचपन से दुःखवाद का जन्म इनके जीवन में हो गया था क्योंकि असमय मे इन्होने महात्मा बुद्ध के आर्य सत्य को समझ लिया था कि इस संसार में दुःख की सत्ता स्थूल और ठोस है। इसके साथ ही महादेवी जी बौद्धों के नैराश्यवाद को स्वीकार नही करती।

अपने दुःख की प्रतिच्छाया समस्त सृष्टि मे देखने की प्रवृत्ति भी नयी नही है। महादेवी के काव्य में भी इसीलिए ऐसी भावना मिलती है। इसी से प्रकट है कि महादेवी जी का व्यक्तिगत जीवन मानसिक संघर्ष, अभाव, तथा बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित था। महादेवी जी ने दुःख को मधुर भाव के रुप में स्वीकार कर लिया है जिसमें वह अपने परोक्ष प्रियतम के लिए सदैव

आतुर रहती हैं। प्रिया-प्रियतम की इस आंख-मिचौनी में उनका काव्य क्रीड़ा-मय हो गया है—

प्रिय चिरन्तन है सजन, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं !

तब से आज तक उनकी पीड़ा का अन्त नहीं हुआ। अतः वह कहती हैं—

इन ललचायी पलकों पर पहरा था जब व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का !

"महादेवी द्वारा गृहीत काव्य-वर्ण्य में वेदना भाव प्राण-तत्त्व की भाँति अनुस्यूत है। उन्होने समाजव्यापी विषाद केन्द्रों की तुलना में रहस्यमार्गी साधक की विकलता को सापेक्षिक महत्त्व दिया है अर्थात् सामाजिक की वेदना की अपेक्षा उनकी दृष्टि साधनालोक की पीड़ा पर सविशेष केन्द्रित रही है। इस वेदना की परिधि में उन्होंने प्रकृति-पक्ष को भी साग्रह स्थान दिया है, जिसमें वेदना एकांगी और स्थूल न रहकर बहुमुखी तथा सरस हो गई हैं। अभिव्यक्ति में मार्मिकता तथा प्रौढ़ि लाने के लिए उन्होने कल्पना के आश्रय द्वारा चित्रभाषा, प्रतीक-संयोजन और अलंकार विधान को भी वांछित गौरव दिया है। अनुभाव-विधान द्वारा वेदनामूलक कविता में नाटकीय सजीवता लाने का श्रेय भी उन्हें है। सामान्यतः वेदना-भाव से कविता में निराशावादी मनोवृत्ति के संचार की सम्भावना रहती है, किन्तु अध्यात्मपक्ष से सम्बद्ध होने के कारण महादवी की कविता इस दोष से मुक्त है। वेदना उनके जीवन का सत्य है, जिसके सम्बन्ध मे उन्हें यह विश्वास है कि उसकी परिणति चिर मिलन में होगी।" (डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त—महादेवी की साहित्य-साधना)।

प्रश्न ५—गीतितत्व की दृष्टि से महादेवी के काव्य का विवेचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—गीतिकाव्य अन्तर्वादी काव्य (Personal or Subjective Poetry) के अन्तर्गत आता है, क्योंकि यह बाह्यवृत्तिनिरूपक न होकर अन्तर्वृत्तिनिरूपक होता है। अन्तर्वादी काव्य में कवि आत्मनिष्ट होता है, अर्थात् अपने ही माध्यम से अपनी बात कहता है, इसीलिए इसमे भावतत्व का प्राधान्य होता है और कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से मुखरित होता है। भावों की प्रबलता, व्यक्तित्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति और भाषा की विशदता आदि अन्तर्मुखी काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं। अंग्रेजी आलोचक हडसन ने

विषयनिष्ट काव्य की व्याख्या अपने आलोचनात्मक ग्रन्थ (An Introduction to the study of literature) में इस प्रकार की है।

(There is the poetry in which the poet goes down in to himself and finds his inspiration and his subjects and his own experiences, thoughts and feelings."

महादेवी और गीतिकाव्य का स्वरूप-विश्लेषण

"साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा मे तीव्र सुखदुःखात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।" (दीपशिखा, भूमिका)। "काव्य का वही अंश गेय कहा जायेगा, जो अनुभूति की तीव्रता को संगीत के लिए उपयुक्त शब्द-संयोजन द्वारा व्यक्त कर सके। वैसे काव्य की छन्दबद्धता में एक लय भरा प्रभाव स्वाभाविक है, जिसे स्वर के आरोह-अवरोह में बांधकर प्रस्तुत करना कठिन नही होता। परन्तु इसे संगीत नहीं कहा जायेगा। वस्तुतः हमारे काव्य का कुछ अंश ही गेय है, परन्तु विषय की विविधता, अनुभूतियों के हल्के गहरे रंग, शब्दों की भाव संगति, राग और परिवेश का सामन्जस्य, तन्मयता आदि विशेषताओं के कारण वह साहित्य की तुला पर ऐसे अन्य काव्यों के साथ ठहर सकता है, जिन्होंने जीवन को उसकी समग्रता में देखा है।" (सन्धिनी, चिंतन के क्षण)। आलोचक महादेवी ने उपरिलिखित उक्तिद्वय में गीतिकाव्य के स्वरूप-विश्लेपण पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। उनके अनुसार गीतिकाव्य के अनिवार्य तत्व हैं—अनुभूति-प्रवणता, आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता अर्थात् भावैक्य वा भावान्वित्ति, संगीतात्मकता अर्थात् गेयता, कोमलकान्त सांगीतिक प्रवाह के अनुरूप काव्य-पदावली। आलोचक महादेवी ने गीत की महत्ता का प्रतिपादन इन शब्दों मे किया है 'काव्य की ऊँची-ऊँची हिमालय-श्रेणियों के बीच मे गीति-मुक्तक एक सफल कोमल मेघखण्ड है जो न उनसे दबकर टूटता है और न बंधकर रुकता है, प्रत्युत हर किरण से रंग-स्नात होकर उन्नत चोटियों का श्रृंगार करता है और हर झोके पर उड़-उड़ कर उस विशालता के कोने-कोने में स्पन्दन पहुँचाता है।" अतः स्पष्ट है कि महादेवी के काव्य में हिन्दी गीतिकाव्य का चरम उत्कर्ष रूप उपलब्ध होगा।

अनुभूति-प्रवणात — प्रगीत काव्य में अनुभूति और भावना के युग तत्व अथ से इति तक एक विशिष्ट सूत्र रूप में अनुस्यूत रहते है। महादेवी के काव्य में वर्ण्य विषय की स्पष्ट अनुभूति तो थी ही उसके साथ ही उन्होंने

भावान्विति—महादेवी जी के गीतों में एकरसता और एकरूपता है। शिक्षित होने के कारण उनके पद-विन्यास में रम्य और मधुर वातावरण की प्रधानता है। गीतिकाव्य के लिए कोमलकान्त और तत्सम भाषा का प्रयोग आवश्यक है। महादेवी जी ने संगीत के तत्वों की ऋजु और सरल समष्टि की है। प्रत्येक पद में माधुर्य का विशेष स्रोत बहा है। मयूर का पंचम स्वर, कोकिल की काकली और चातक की पी-पी इनके गीतों में कर्णामृत बन जाती है। महादेवी जी अज्ञात प्रियतम के मन्दिर में ज्यों ही एकाग्र भाव से वीणा के तारो को झंकृत करती हैं त्यो ही सहृदय व्यक्तियो के मानस-क्षितिज में एक मधुर अनुभूति उत्पन्न होती है। महादेवी जी के गीतों में पूर्ण आत्म-निवेदन लक्षित होता है। 'यामा' की भूमिका मे महादेवी जी लिखती हैं—"मेरे गीतों में आत्मनिवेदन मात्र हैं। उनके विषय में कुछ कह सकना मेरे लिए असम्भव है। इन्हें मैं अपनी अकिञ्चन भेंट के अतिरिक्त कुछ नहीं मानती।" प्रायः वीणा का मधुर वाद्य संगीतज्ञ का प्रिय साधन होता है। वे इस साधन को अपने प्राणों से पृथक् करते दृष्टिगोचर नही होते किन्तु महादेवी वर्मा स्वयं रागिनी की प्रतिकृति बनकर सम्मुख परिलक्षित होती है—

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पद चिन्ह जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिणी भी हूँ !

गेयता वा सगीतात्मकता—महादेवी ने अपने गीतों को अधिकाधिक गेय बनाया है। उनके गीतो में संगीत का विशिष्ट आरोह-अवरोह और स्वर ताल का समवेत आयोजन मिलता है। यह लयाधार अथवा गेय स्तर-सामंजस्य उन की आत्मानुभूति में घुल मिल गया है। 'दीपशिखा' की भूमिका में आलोचक कवयित्री ने कहा है—"शैशव से ही मैं गीतों के सस्कार में पली हूँ। माँ की भावभरी गीतांजलियाँ, घर में जन्म, विवाह आदि शुभ अवसरों पर गाई जाने वाली गीत कथाएँ, परिचारकों के ऋतु, पर्व आदि से सम्बन्ध रखने वाले लोकगीत, कलाविदों का ध्वनि संगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्रष्टाओं के

वेद-छन्द, माधुर्य भरे संस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षों में सुने सहज ग्रामगीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहा है। इस गीत परम्परा के सम्बन्ध में कभी विस्तार से कहने की इच्छा है। इस समय तो इतना ही पर्याप्त है कि मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।" प्रस्तुत पंक्तियों मे महादेवी ने अपनी सफल लयात्मकता के उत्स के विषय में विचार-संकेत दिये हैं। "महादेवी ने लयात्मकता के लिए अपनी कविताओं में निम्नलिखित विशेषताओं का समावेश किया है— माधुर्य गुण के अनुरूप कोमलकान्त पदावली, अनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, पूर्ण पुनरूक्त तथा अपूर्ण पुनरूक्त शब्दावली। इस प्रकार उन्होंने भाषा, अलंकार और छन्द तीनों से ही उन व्यावर्तक विशेषताओं का ग्रहण किया है जो गीतिकाव्य की समृद्धि में सहायक हो सकती हैं। ये विशेषताएं उनके काव्य में विरल न होकर सघन हैं, फलतः प्रायः प्रत्येक कविता में इनमें से अधिकांश की एक साथ खोज की जा सकती है।" (डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त—महादेवी की साहित्य-साधना)। डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त का कथन है—"महादेवी ने अपने गीतों को अधिकाधिक गेय बनाया है। गेयता के लिए प्रायः कवि दो साधनों का आश्रय लेता है—स्वर का संगीत तथा शब्द-योजना का संगीत। महादेवी के काव्य मे इन दोनो का आश्रय लिया गया है। दीपशिखा की कविताओं में स्वर का संगीत भी है और शब्द योजना का भी। उन्होंने लय और ताल के समवेत संयोजन पर उपयुक्त ध्यान दिया है। गति-नियम, यति बन्धन और तुक पालन का सर्वत्र ध्यान रखा है। उनके गीतों की लय बिल्कुल सरल है। आरोह-अवरोह का कहीं व्यवधान नहीं है। अधिकतर लय भावानुकूल है। 'दीपशिखा' में लय और धुन की विचित्रता और भी बढ़ गई है। 'ओ चिर नीरव', 'मिट चली घटा अधीर', 'सपने जगाती आ', 'तेरी छाया मे अमिट रंग', 'मैं चिर पथिक वेदना का लिये न्यास', आदि गीत इस वैचित्र्य के साक्षी हैं। इन गीतों मे ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता 'नीरजा' के गीतों से भी अधिक है। शब्दों की लयपूर्ण योजना जैसे—

'रही लय रूप छलकाती
चली सुधि रंग ढुलकाती'

और कोमलकान्त पद-विन्यास जैसे—

'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो···

ने उनके गीतों को बड़ा मधुर बना दिया है। उन्होंने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप तोल और काट-छाँट कर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया है।"

कोमलकान्त सांगीतिक प्रवाह के अनुरूप काव्य-पदावली—भाव और शिल्प का अभिन्न सम्बन्ध है। गीत में यदि एक ओर अनवरूद्ध भाव-प्रवाह की आवश्यकता है तो दूसरी ओर अलंकरण, सजावट एवं परिष्कृत शब्द-रचना से दूर प्रवाहमयी, साधारण, सरल और बोधगम्य काव्य-पदावली भी आवश्यक है। महादेवी के गीत उनकी सतत साहित्य-साधना के परिणाम होने के फलस्वरूप कला गीतों के सभी शैल्पिक गुणों से सयुक्त हैं। महादेवी छायावाद की सृष्टि है, इसलिए उनके काव्य में छायावादी कविता के शिल्प विधान का पूर्ण सफल रूप द्रष्टव्य है। अभिव्यक्ति की वक्रता, लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म उपमानों का ग्रहण, कोमलकान्त पदावली, कल्पना का वैभव, चित्रमयता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीक विधान, बिम्ब योजना आदि कलातत्त्वों का उनकी कविता में पूर्ण अभिनिवेश है। महादेवी की शिल्प-प्रतिभा अनुपम है। उनका कलाकार कला के प्रति सर्वदा सचेष्ट रहा है। यही कारण है गीतिकाव्य के अनुरूप शब्द-विधान उनकी कविता की विशेषता बन गया है। कवयित्री के वैभव-पूर्ण शब्द संयोजन को लक्ष्य कर डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—"पन्त की कला में जड़ाव और कढ़ाव है, अतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रगघुली तरलता है जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।" एक शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

"देखकर कोमल व्यथा को
आँसुओं के सजल रथ में
मोम सी साधें बिछा दी
थीं इसी अंगार-पथ में

भाषा महादेवी की अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल है। इसका कारण है, 'महादेवी जी की कला का जन्म अक्षय सौन्दर्य के मूल से, दिव्य प्रेम के भीतर से, अलौकिक प्रकाश की गुहा और पावन उज्ज्वल आँसुओं के अन्तर से हुआ है।' कुमार जनस्वामी ने अपने प्रबन्ध काव्य 'महा-

देवी वर्मा का काव्य' में महादेवी की कोमलकान्त पदावली के सम्बंध में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—"भाषा मे संगीतात्मकता अपनी विशेषता रखती है। इसके लिए वर्ण-मैत्री, शब्द-मैत्री, पद-मैत्री, कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति इन गुणों की आवश्यकता होती है। महादेवी जी के शब्द-प्रयोग में 'ट' वर्ग के वर्णो तथा कठोर वर्णो का बहुधा अभाव मिलता है। 'प' वर्ग तथा 'त' वर्ग के वर्ण म, र, ल, ण, न तथा अनुस्वारयुक्त वर्णो का प्रयोग बहुलता से मिलता है।"

**प्रमुख आलोचक और महादेवी का गीतिकाव्य**—आचार्य शुक्ल ने महादेवी की गीति-कला को लक्ष्य कर कहा है—"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नही। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी।" आचार्य शुक्ल ने अन्यत्र भी कहा है—"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई, वैसी और किसी को नहीं। उस अज्ञात प्रियतय के लिए वेदना भी इनके हृदय का भाव-केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ छूट-छूट कर झलक मारती रहती है। वेदना से उन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती है।" श्री विश्वम्भर 'मानव' लिखते हैं—"आधुनिक युग में गीत-काव्य का विकास महादेवी के काव्य में चरम बिन्दु को पहुँच गया। भाव की गहराई, विचार की उत्कृष्टता और कल्पना के वैभव की दृष्टि से इनके गीत अपनी समता नही रखते।" डॉ० शान्ति-स्वरूप गुप्त के शब्दों मे—"उनके गीत निश्चय ही भागती रेलगाड़ियों, दौड़ती बसों या हिचकोले खाती हुई रिक्शाओ मे पढ़ने की सामग्री नही है। वे एकांत मे तथा एकाग्र मन से, सो भी दो-चार करके पढ़े जाने वाले गीत हैं जिनमे डूबने के लिए सहृदयता के साथ-साथ तन्मयता तथा विज्ञता भी अपेक्षित हैं। "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है।" दीपशिखा की इस उक्ति को वे चरितार्थ करते है। सत्य के निरूपक हैं, आत्मकल्याण के दूत है, सौन्दर्य के भण्डार हैं।"

**महादेवी और आधुनिक गीतिकार**—गीतकर्त्री की दृष्टि से महादेवी को प्रसाद और निराला के बीच की शृंखला कहा जाता है। प्रसाद के गीतो मे भाव-प्रवणता और निराला के गीतों मे चिन्तन अधिक है, परन्तु महादेवी जी

के गीतों मे दोनों का समावेश है। निराला के गीत स्वर-ताल की शास्त्रीय मर्यादा के साथ चलते हैं और साथ ही दृश्यों की शृंखला में भी जकड़े हुए रहते हैं। प्रसाद और महादेवी के गीतों में संगीत शास्त्र का कोई बन्धन नहीं। निराला के शब्दों में ह्रस्व-दीर्घ के विकार कम पाये जाते है परन्तु प्रसाद में वे अधिक हैं। उधर महादेवी जी के गीतों में इस प्रकार के प्रयोग प्रसाद से कम और निराला के गीतों से अधिक है। निराला में भावों की अन्विति के साथ गीत पूर्ण होता है। प्रसाद के गीतों में भाव विच्छिन्न नहीं हो पाता परन्तु महादेवी जी के गीतों में भावों की विच्छिन्नता है, महादेवी के गीतों में एक ही भाव की पूर्ण परिणति नहीं होती तो दूसरा भाव झलक पड़ता है।

महादेवी जी के गीतों की सब से बड़ी विशेषता उनकी अनमोल सांचों में गढ़ी भाषा है। भाषा की दृष्टि से महादेवी जी किसी भी कवि से पीछे नहीं। पंत जी की भाषा क्लिष्ट और संस्कृत के भार से आक्रान्त है। निराला की भाषा में अबाध वेग तो है किन्तु शब्दों की तनतनाहट अधिक है जो गीतों के लिए उपयुक्त नही। निराला के शब्दों में पच्चीकारी भी कम है। अन्य कवियों में भी इस प्रकार चुन-चुनकर शब्दों को जोड़ने की क्षमता नही। भगवतीचरण वर्मा तथा बच्चन की भाषा साधारण के अत्यन्त निकट है। परन्तु महादेवी जी की भाषा रूपी निर्झरिणी का कलकल निनाद अद्वितीय है। शब्दों की शिल्पकला महादेवी जी की अपनी विशेपता है। कहीं-कहीं जहाँ महादेवी जी ने लोक गीतों की रचना की है वहाँ भाषा कुछ ग्राम्यत्व दोष लिए हुए है। इनके कई गीत उर्दू शैली के रूपान्तर भी हैं। इनके गीत छन्द, लय, संगीत, ध्वनि, ताल आदि के विचार से छायावादी युग के अन्यतम गीत हैं।

"महादेवी ने गीतिकाव्य की रचना में सोत्साह भाग लिया है और तद्-विषयक तत्त्व-सयोजन में छायावाद की भावगत अथवा शिल्पगत विशेषताओं से भी यथास्थान लाभ उठाया है। सरसता, कल्पना, भावुकता आत्माभिव्यक्ति, रहस्योन्मुख साधना आदि ऐसे उपादान है जिनके प्रति छायावादी कवि विशेष रूप से जागरूक रहे थे। महादेवी ने इन प्रवृत्तियों की योजना द्वारा अपने गीतों को सराहनीय भावालंकृति प्रदान की है। शिल्पगत गुणों की दृष्टि से इन्होंने

चित्रभाषा, अभिव्यक्ति-संक्षेप, अनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, प्रवाहपूर्ण सामासिकता, पूर्ण-अपूर्ण पुनरुक्त पदावली, माधुर्य गुण, उपनागरिकादि वृत्तियो जैसी विविध विशेषताओं का समादर किया है। इन सबसे समृद्ध होकर इनके गीतो ने पूर्ववर्ती गीतिकारो की रचनाओं से निश्चय ही स्वतंत्र अस्तित्व धारण कर लिया है। उनके गीतो के विषय में यह धारणा भी भ्रामक है कि उनमे विषय-वैविध्य का अभाव है, क्योकि उन्होन रहस्यानुभूति के विविध परिप्रेक्ष्य रखे हैं। गीतो के लयानुपात मे भी उन्होने एकरसता नही आने दी है, क्योकि अधिकांश गीतो मे वर्ण-सख्या अथवा मात्रा-सख्या एक जैसी नही है। यदि विविध गीतों मे समान सख्या मे वर्णादि होते अथवा एक ही गीत मे सभी पक्ति-तयों उनका प्राय. समान सख्या मे प्रयोग होता तो लयात्मक विविधता न आ पाती। महादेवी ने पक्तियो मे अक्षर-क्रम अथवा मात्रा-क्रम में अनुरूप विवि-धता लाकर इस दिशा मे सजगता का परिचय दिया है। अतः यह स्पष्ट है कि उनके गीत भावसमृद्ध होने के साथ ही अप्रत्याशित अभिव्यंजना-कौशल से अलंकृत हैं।" (डॉ० सुरेशचन्द्रगुप्त महादेवी की साहित्य-साधना)

प्रश्न ६—महादेवी के काव्य में प्रकृति-चित्रण विषय पर एक विवेचना-त्मक निबन्ध लिखिए।

उत्तर—महादेवी जी ने प्रकृति को अपने काव्य में उचित स्थान दिया है। प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर सकेत करने वाली सहचरी है, उसकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने असीम की ओर बढती हुई महादेवी जी प्रकृति के कण-कण से परिचित होती हुई आगे बढ़ी हैं। सबका स्पन्दन पहचान कर वह आश्वस्त सी हो गई हैं। उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी।

आज जिस युग को हम छायावाद के नाम से अभिहित करते है उसकी सबसे बड़ी विशेषता प्रकृति-चित्रण है और उसमें सबसे अधिक सहयोग भी प्रकृति का ही मिला है। भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति ने छाया-वादी कवियो की पग-पग पर सहायता की है। यदि प्रकृति को छायावादा कविता में से निकाल दिया जाये तो छायावाद पगु कहलायेगा। महादेवी जी भी छायावादी कविता का एक स्तम्भ है। उन्होने उस विराट तक पहुँचने की साधना के मार्ग में प्रकृति का सदैव साहचर्य ग्रहण किया है। छायावाद और प्रकृति के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए महादेवी जी ने लिखा है—

"छायावादी ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल में बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में चला आ रहा था, जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि मे भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एकप्राण बन गई। अतः अब मनुष्य के अश्रु मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस के कणों का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघुतृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान विराट् का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेक रूपता से परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।" इससे स्पष्ट है कि महादेवी जी जहाँ प्रकृति में एक ओर विराट् की छाया देखती हैं, दूसरी ओर अपनी छाया भी देखती हैं। प्रायः हिन्दी के सभी छायावादी कवियों ने ऐसा ही किया है। प्रकृति उनसे भिन्न नही रही बल्कि उनके जीवन का एक अंश बन कर ही रही है। महादेवी जी के काव्य में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। उन्होंने सन्ध्या से अपनी तुलना इस प्रकार की है—

प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीत-राग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन !

इसी प्रकार "मैं बनी मधुमास" "मैं नीर भरी दुःख की बदली" "विरह का जलजात जीवन" तथा "रात सी नीरव व्यथा तम सी अगम मेरी कहानी" आदि कविताओ मे उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है। कभी-कभी उन्होंने अपनी विशालता और अभावहीनता का परिचय प्रकृति के विरोधी तत्त्वों को लेकर दिया है—

जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रु माल,
मैं पिक बन गाती डाल डाल, सुन फूल फूल उठते पल-पल
सुख दुख मजरियों के अंकुर !

दूसरे प्रकार का प्रकृति चित्रण मानवीकरण की पद्धति पर हुआ है जो हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य देन कही जाती है परन्तु महादेवी जी ने उसे भारतीय निधि माना है क्योंकि ऐसी पद्धति हमें वेदों की ऋचाओं मे मिलती है। महादेवी जी के प्रकृति-चित्रण की यह सबसे बड़ी विशेषता है। उनके कई पद हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि कहे जाते हैं—

धीरे-धीरे उत्तर क्षितिज से आ वसन्त रजनी।
+ + +
रूपसि तेरा घन केशपाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केशपाश !

एक स्थान पर महादेवी जी ने विराट् सत्ता को—परम तत्व को—अप्सरा का रूप दिया है—

लय गीत मदिर गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मजीर !

इस मानवीकरण में प्रकृति को अपना एक अंग माना गया है—

मेरी निश्वासों से बहती रहती झंझावात,
आँसू मे दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात,
कसक मे विद्युत अन्तर्धान !

महादेवी जी अपने दुख की छाया को प्रकृति के विस्तृत वक्ष 'नभ' में देखती है। मन के दुःख से ही तारो की पलके गीली है और मेघ रोते तथा वायु आहे भरती है—

नभ पर दुख की छाया नीली,
तारो की पलके हैं गीली—रोते मुझ है मेघ
आह रूँधे फिरता है वात री।

जीवन की अस्थिरता का प्रत्यक्ष दर्शन भी प्रकृति ने कवयित्री को कराया है जैसे प्राकृतिक सौंदर्य का क्षण-क्षण में सृजन और नाश होता है उसी प्रकार जीवन का क्षण भा बदलता रहता है। प्रकृति के रहस्य को देखकर महादेवी जी कहती हैं -

भावे क्या अलि ? अस्थिर मधु दिन,
दो दिन का मृदु मधुकर-गुंजन,
पल भर का यह मधु-मद वितरण !

महादेवी जी की रहस्यवाद की कामलता का कारण भी अधिकांश रूप से प्रकृति-चित्रण है। प्रकृति की सुषमा उन्हें प्रियतम का सन्देश देने वाली जान पड़ती है। कभी-कभी प्रकृति का रूप उपदेशात्मक भी हो गया है। उनके प्रकृति-चित्रण में कई पक्तियाँ कवयित्री जी की मानसिक व्यथा की ओर सकेत करती हुई प्रतीत होती हैं—

यह बताया झर सुमन ने, यह बताया मूक तृण ने,
यह कहा बेसुध पिकी ने चिर पिपासित चातकी ने,
सत्य जो दिन कह न पाया था, अमिट सन्देश में,
आँसुओं के देश में !

यहाँ प्रकृति के उपमानों के नष्ट होने से जीवन नष्ट होने का संदेश मिलता है महादेवी जी का अधिकांश प्रकृति-चित्रण उनके अपने भावों का प्रतिबिम्ब जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त कई चित्रण ऐसे भी हैं जो अपने में स्वतत्र हैं। उनमें रूप और रगों की सजीवता है। निम्नलिखित कविता में कवयित्री जी ने 'हिमालय' के स्वतन्त्र अस्तित्व को प्रकट किया है—

तू भू के प्राणों का शत दल,
सितक्षीर फेन हीरक रज से, जो हुए चांदनी में निर्मित,
पारद की रेखाओ मे चिर, चांदी के रंगों से चित्रित,
खुल रहे दलो पर दल झलमल !
सीपी से नीलम से द्युतिमय, कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल,
कुछ सुख चचल कुछ दुख मथर, फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मंडराते शत-शत अलि बादल !

अन्य कवियों की भांति तथा प्राचीन परिपाटी का निर्वाह करते हुए

महादेवी जी ने आलंकारिक रूप में भी प्रकृति-चित्रण किया है। कई स्थानों पर उपमानों को भी ग्रहण किया गया है। साधक को साधना पथ पर जाते हुए दिखाया है जिसकी आँखों मे आंसू तथा ओठों पर मुस्कान है। आंसू और मुस्कान क्रमशः पावस और वसन्त के उपमेय हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रत्येक वर्णन में चातक, मयूर, कोकिल, भ्रमर आदि का, फूलो में कमल, गुलाब, हरसिंगार, चमेली आदि का तथा ऋतुओं में पावस, वसन्त का विशेष-कर वर्णन मिलता है। 'नीहार', 'नीरजा', 'रश्मि', 'सान्ध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' इन सबमें प्रायः कहीं भी ऐसा वर्णन नही जहाँ ऋतु वर्णन न हो।

प्रकृति के प्रति महादेवी जी की दृष्टि बड़ी पैनी है। इस का कारण उन्होंने स्वयं इस प्रकार समझाया है—"जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है। चेतन जड के बिना आकाश शून्य है। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी वाद के अन्तर्गत क्यों न हो, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो चाहे अपार्थिव की हो और चाहे दोनो के अविच्छिन्न सम्बन्ध की हो, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय में प्रवाहित हुई है।"

आरम्भ में इसी दृष्टिकोण के आधार पर जीवन के प्रति उनकी दृष्टि जिस प्रकार विस्मय भरी रही है वैसी ही प्रकृति के प्रति भी। प्रारम्भ में प्रकृति का सीधा-सादा चित्रण करके वह सन्तुष्ट हो जाया करती थीं परन्तु जैसे-जैसे वह गहराई में जाती गयी, प्रकृति उनकी अनुभूति का एक अंग बन गई। यही कारण है कि 'दीपशिखा' और 'सांध्यगीत' मे अधिकांश गीत अनुभूतिमय हैं—

मैं अलि कण-कण को जान चली,
सबका क्रन्दन पहचान चली! (दीपशिखा)

दुःख के सुखद परिणाम की अभिव्यक्ति उनके निम्न पद में हुई है—

जब मेरे शूलों पर शत-शत, मधु के युग होंगे अवलम्बित,
मेरे क्रन्दन से आतप के, दिन सावन हरियाले होंगे!
तब क्षण-क्षण मधु प्याले होंगे!

प्रकृति के सारे रहस्यों के पार्श्वपट पर एक अव्यक्त सत्ता विराजमान है

प्रकृति उनके लिए जहाँ साधना का एक रूप है वहां उसके माध्यम से वह अनन्त अज्ञात प्रियतम तक स्वतः पहुँचने का प्रयास भी करती हैं। सूफी जिस प्रकार प्रकृति को परमात्मा का तत्व मानकर तड़पता है, उसी प्रकार महादेवी भी प्रकृति को परमात्म-तत्व मानती है। इसलिए उनका रहस्यवादी हृदय सहसा कुछ पूछ उठता है—

बीचियों पर गा करुण विहाग,
सुनाता किस को पारावार ?
पथिक सा भटका फिरता वात,
लिए क्यों स्वर लहरी का भार ?

अन्य भावों के अतिरिक्त महादेवी जी ने प्रकृति से अस्थिरता, नश्वरता और अनित्यता का भाव भी ग्रहण किया है, यह इसीलिए कि किसी तरह से सत् अविनश्वर तथा नित्य की ओर ध्यान जा सके। जीवन और जगत् का मधु दिन अस्थिर है, गुञ्जन अस्थिर है और मधुप्रद वितरण भी अस्थिर है, अतः यह ससार भी नश्वर या अस्थिर है। प्रेम करना उससे ही सार्थक है जो चिर सुन्दर, चिर मधुर और चिरातीत है। कमल-दल प्रातःकाल प्रस्फुटित होते हैं, सन्ध्या को म्लान हो जाते हैं। रंगीन मेघ क्षण भर के लिए आते हैं परन्तु वायु के एक झोंके से नष्ट हो जाते हैं। संध्या का रंगीन सुन्दर चित्र तम के एक श्वास से विच्छिन्न हो जाता है। अतः सब कुछ अस्थिर है।

प्रकृति के प्रति महादेवी जी का मानसिक विकास-क्रम भी निराला ही है। जो 'नीरजा' के अन्तिम गीत—"केवल जीवन का क्षण मेरे" में महादेवी जी ने दिखाया है। प्रकृति ब्रह्म के प्रति महादेवी जी के प्रेम में बाधा डालती है, उसमे समभाग चाहती हैं। परन्तु आगे चलकर महादेवी जी ने दर्शाया है कि प्रकृति भी उसी ब्रह्म से प्रेम करती है जिससे वह स्वय प्रभावित है। संध्या नक्षत्रों के दीप जलाकर ब्रह्म की प्रतीक्षा में है, निर्झर अश्रुमय है, सागर अपनी लहरों में प्यासा घूमता है। महादेवी जी को ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी उपकरण ब्रह्म-रूपी प्रियतम से मिलने को आकुल हैं। इसलिए महादेवी जी को अब प्रकृति व्याघात पहुँचाने वाली नही लगती अपितु उनके अपने पथ की पथिक ही दिखाई देती है क्योंकि दोनों ही विरहव्यथिता हैं, दोनों ही मिलनाकुल हैं। इससे प्रकृति के प्रति महादेवी जी का दृष्टिकोण यही है

कि ब्रह्म और प्रकृति भिन्न नहीं। महादेवी जी के अन्य काव्यों में भी कई एक ऐसी पंक्तियां हैं जो इसी भाव को पुष्ट करती हैं। प्रकृति मे महादेवी जी ने अपने व्यक्तित्व को समाहित इसलिए कर दिया है कि उपास्य और उपासक एक हो जाये :

फैलते हैं सांध्य नभ में भाव मेरे ही रंगीले,
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले !

प्रमुख आलोचक और महादेवी का प्रकृति-वैभव—

श्री विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में—"प्रकृति को इन्होने अत्यन्त सहानुभूति की दृष्टि से देखा है। वह प्रिय इसलिए हो उठी है कि उसी के माध्यम से इन्होने प्रियतम की झलक पाई है और अभिन्न इसलिए कि वह प्रेम के भावोद्दीपन मे सहायक हो रही है। प्रकृति में महादेवी जी ने अधिकतर ऐश्वर्यमयी दृष्टि डाली है—चांदी की किरणें, मोती से तारे, मोती सी ओस की बूंदें, मोती सी रातें, नीलम के बादल, इन्दुमणि जैसे जुगनू, प्रवाल की उषा, सोने के दिन, इसी प्रकार स्वर्ण-पराग सी सांध्य गगन की लालिमा। उन्हें काले बादलो में बिजली ऐसी लगती है जैसे नीलम के मन्दिर में हीरक प्रतिमा, उनके निशि-वासर कनक और नीलम यानों पर दौड़ते हैं, मेघ-चनर स्वर्ण-कंकुम में बसाकर रंगी जाती है, तारे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे रजनी ने नीलम-मन्दिर के वातायन खोल दिये हों। बात यह है कि हमारी साधिका ब्रह्म की सुहागिन है। उस महान् ऐश्वर्यशाली की प्रेमिका के लिए चांदी, सोना, मोती, प्रवाल, पुखराज सामान्य वस्तुएँ न होंगी, तो फिर किसके लिए होंगी।

बीच-बीच में रम्य खंड-दृश्यों को उपस्थित करने के अतिरिक्त महादेवी जी ने प्राकृतिक वस्तुओ के पूर्ण चित्र भी अंकित किये हैं जैसे रजनी, प्रभात, संध्या, वर्षा, बादल आदि के। ऐसी रचनाओं के अन्त में भी दार्शनिकता या अध्यात्म का पुट अनिवार्य रूप से है। अलकारिक रूप में भी जहाँ प्रकृति के दृश्यों का उपयोग किया गया है, वहाँ भी किसी रहस्यभाव के सम्बन्ध से। अन्य भावों के अतिरिक्त महादेवी जी ने प्रकृति से अस्थिरता, नश्वरता या अनित्यता का भाव भी ग्रहण किया है। वह भी इसलिए कि सत्, अनिश्वर, नित्य की ओर ध्यान जा सके। कुल मिलाकर इनके काव्य में बाह्य प्रकृति आभ्यान्तर प्रकृति की प्रतिच्छाया मात्र प्रतीत होती है—

"फैलते हैं सांध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले,
तिमिर की दीपावली हैं रोम मेरे पुलक गीले।'

डा० पद्मसिंह 'कमलेश' ने लिखा है—"...प्रकृति ने उनके भावपक्ष का ही नहीं कलापक्ष का भी शृंगार किया। प्रतीकों द्वारा व्यंजना तो और कवियों ने भी की है, पर उसे अपने जीवन-दर्शन—ससीम का असीम से तादात्मय के लिए प्रकृति को माध्यम बनाना उनकी अपनी विशेषता है। उनके काव्य में प्रकृति इतनी घुल-मिल गई है कि उसे विश्लेषण के लिए अलग करके देखना भी कठिन है। हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी ने प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूर्ण अभिव्यक्ति दी है और विराट् की प्रेमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है। यही उनके लिए प्रकृति की सबसे बड़ी देन है।"

डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—"प्रकृति की यह वर्ण-कवयित्री-माधुरी महादेवी के काव्य को समसामयिक कवियों की रचना से अलग कर देती है। परन्तु यह वर्ण-माधुरी, प्रकृति की यह अनुपम छटा कवयित्री को इसलिए आकर्पित करती है कि वे परोक्ष का इंगित देने में समर्थ हो जाती है। सायं-प्रातः वर्षा के श्यामल मेघ और शरद के हिम-उज्ज्वल बादल, चातक, पपीहा, कोयल, इन्द्रधनुष, विद्युत और नक्षत्र उनके काव्य में अपने सामान्य अर्थों को खोकर अपने नये अर्थों की सृष्टि करते हैं। प्रकृति के सारे उपकरण महादेवी के काव्य में प्रतीक बनकर आते हैं। इसी से उनके चित्रों में चित्रों से पार की अनुभूति और साधना की भूमि का परिचय रहता है। कदाचित् परोक्ष का संकेत देने के लिए प्रकृति का इतना व्यापक, चित्र-विचित्र और सुन्दर प्रयोग किसी भी भारतीय कवि में नहीं मिलेगा। प्रकृति के चिर-परिचित रूप भी महादेवी के काव्य में नव-नव रूप-माधुरी लेकर आते हैं। प्रकृति उनके रहस्य-वादी काव्य की वीथिका-मात्र नहीं है। वह कहीं उन्हीं की भाँति प्रिय-विरह में तपती हुई साधिका है, कहीं पथ की संगिनी, कहीं वह स्वयं इस चिन्मय सत्ता का रूप ग्रहण कर लेती है।"

डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त का कहना है—"उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति के व्यक्त सौन्दर्य का समावेश हुआ है पर यह प्रवृत्ति निरन्तर क्षीण होती गयी है। बाह्य सृष्टि को अपने काव्य में सिंगारना मानो उनका कार्य नहीं है। अतः अधिकतर प्रकृति उनके काव्य को अलंकृत करने या भावनाओं

की पृष्ठभूमि बनकर ही आयी है। इसीलिए बाद के गीतों मे प्रकृति की अस्पष्ट गतियों अथवा छायाओं का अधिक चित्रण मिलता है। आरम्भ का कौतूहल भाव भी बाद मे चलकर बदल गया है। अब वह या तो प्रकृति में विराट् सत्ता की छाया देखती है या अपने भावों की प्रतिछवि। उसे प्रकृति भी अपने समान प्रिय के विरह मे वियोगिना और उससे मिलन को उत्सुक प्रतीत होती है।"

निष्कर्ष—"महादेवी की रचनाओं के अनुशीलन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उन्होने स्वतन्त्र प्रकृति काव्य की रचना न क रने पर भी प्रायः अपनी अभिव्यक्तियों को प्रकृति-लोक से सहज समृद्ध रखा है। प्रकृति-सम्बन्धी काव्यांशों को उन्होने छायावादी कविता-प्रणाली के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है, फलतः वह भावमय होने के साथ-साथ कलामय भी है। प्रकृति को भाव-जगत् का अंग मानकर उन्होंने मुख्यतः रहस्य-साधना का चित्रण किया है, फलतः शब्दावली, प्रतीक-विधान और उपमान की दृष्टि से भी उन्होने प्रकृति और साधना-जगत् का समतुल्य अथवा सामानान्तर वर्णन किया है। कल्पना, मानवीकरण, चित्रात्मकता, रंग-वैभव, साधर्म्म का नव आधार आदि विशेपताएँ उनके प्रकृति-चित्रण में बहुलता से व्याप्त हैं। उनके काव्य में इन प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में आधान न होता तो उनका प्रकृति-वर्णन इतिवृत्तात्मक होकर रह जाता अथवा वे उपर्युक्त प्रवृत्तियों को सीमित रूप में ग्रहण करती तो भी उनके गीतो मे प्रकृति राग का इतना सहज उच्छलन न मिलता। अब यह कहना युक्तिसंगत है कि उन्होंने अपने भाव-चित्रों को प्रकृति-फलक पर नव-नव शैलियो में सफलतापूर्वक उभारा है और छायावाद के अन्य कवियों की भाँति प्रकृति के प्राण-परिचय को अपना सहज दायित्व माना है।" (डा० सुरेशचन्द्र गुप्त—महादेवी की साहित्य-साधना)

प्रश्न ७—पन्त और महादेवी की तुलना कीजिए।

उत्तर—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दो मे पत और महादेवी की तुलनात्मक विवेचना इन शब्दो मे सार्थक होगी—"पत की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य लिया है, महादेवी की कविता ने वेदना मे सजग दार्शनिकता। शरीर की परिधि में बंधकर भी ये निःशरीर अनुभूतियों के कवि हैं—अलौकिक वेदना के। महादेवी जिस समष्टि तक दुःख के माध्यम

से पहुँचना चाहती है, पंत उस समष्टि तक सुख के माध्यम से। इसीलिए महादेवी मे एक उत्फुल्ल विषाद है तो पत में एक प्रसन्न आह्लाद।" द्विवेदी जी के इन शब्दों में सार्थकता है।

महादेवी और पत दोनों ही खडी बोली के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से हैं। दोनों ही सौन्दर्य और वेदना के कवि है। दोनों ही छायावादी हैं और दोनों ही कुछ सीमा तक रहस्यवादी भी। जहाँ तक काव्य की मूल प्रेरणा का प्रश्न है, दोनों समकालीन है सम परिस्थितियों में पोषित और पल्लवित हुए हैं परन्तु जीवन-यापन की विभिन्नता ने दोनों के दृष्टिकोणो को वदल दिया। जहाँ तक पत जी सौन्दर्य के कवि हैं वहाँ महादेवी जी वेदना की मूर्त प्रतीक, जहाँ पत जी को जीवन के प्रति सहज अनुरक्ति है वहाँ महादेवी जी आरम्भ से वैराग्य वृत्ति और अध्यात्ममूलक विचारों से युक्त हैं। वे स्वयं लिखती हैं कि 'बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दु:खात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।"

पत और महादेवी दोनों प्रकृति के कवि है। पंत जी का आरम्भिक जीवन अधिकतर प्रकृति की सुखमयी गोद में ही बीता। अलमोड़ा, नैनीताल, वेनीताल, मसूरी, शिमला आदि अनेक स्थानों मे प्राय: पंत जी घंटों बैठे प्रकृति को निहारा करते। आरम्भ में पंत जी का दृष्टिकोण शुद्ध और पावन रूप से प्रकृति के प्रति था—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन?
छोड़ अभी से इस जग को?

इससे स्पष्ट है कि पंत जी ने रीतिकालीन प्रकृति-चित्रण के तामसिक आवरण को दूर कर पावन और स्वच्छ प्राकृतिक आत्मा के दर्शन कराये। पंत जी का आरम्भिक प्रकृति-चित्रण शुद्ध है. उसमें किसी प्रकार का आरोप नही। उनकी उज्ज्वल दृष्टि और आह्लादमयी आत्मा ने प्रकृति नटी से सामञ्जस्य स्थापित कर लिया है अत: वह प्रकृति का साहचर्य सदैव चाहते हैं। अत: कहा जा सकता है कि पंत जी ने व्यक्त प्राकृतिक आत्मा का उज्ज्वल मुख दिया है।

प्रकृति के अगणित अनुपम चित्र महादेवी जी की कविता में हैं। उनमें निरीक्षण की मात्रा कम हो सकती है, चिन्तन की नहीं। महादेवी जी के ये चित्र कल्पनाप्रधान हैं। उनके प्रकृति-चित्र झिलमिलाते हुए पट पर तारक-दीपों के समान है—

करुणामय को भाता है तम के पर्दे में आना,
हे नभ की तारावलियो तुम पल भर को बुझ जाना !

अथवा

कनक से दिन मोती सी रात, सुनहली सांझ गुलाबी प्रात:
मिटाता रंगता बारम्बार, कौन जग का वह चित्राधार ?

महादेवी जी के प्रकृति-चित्रण में रहस्यात्मकता है। वह उस आत्मा में परमात्मा का आभास पाती हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पंत जी के चित्र जहां मुखर हैं महादेवी जी के अव्यक्त और अस्पष्ट। कहीं-कहीं प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है और कहीं उसका अलंकारिक अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। कहीं उनके प्रकृतिसम्बन्धी गीत उनके आराध्य के प्रतिबिम्ब हैं, कहीं उनके भावों का चित्रण है और कहीं चित्र स्वतन्त्र हैं। कई स्थानों पर प्रकृति महादेवी जी के लिए शृंगार की वस्तु है। इस प्रकार प्रकृति ने उनके केवल भावपक्ष का ही नहीं, कला पक्ष का भी शृंगार किया है। वैसे प्रतीकों द्वारा प्रकृति की अभिव्यञ्जना कई कवियों ने की है पर उसे अपने जीवन-दर्शन का माध्यम बनाना महादेवी जी की विशेषता है।

शृंगारिक भावना दोनों के काव्य में नहीं के बराबर है। कहीं भी पंत जी ने बाह्य या शारीरिक सौन्दर्य को महत्त्व नहीं दिया। बाह्य शृंगार उनके चित्रों की परिधिमात्र है। महादेवी जी का शृंगार-वर्णन अधिकतर कबीर और मीरा की कोटि में रखा जा सकता है जहाँ उनकी विरहिणी आत्मा सदा "सिसकि सिसकि भरी-भरी जी उठे कराहि कराहि।" कबीर और मीरा दोनों ने शृंगारिक रूपक बाँधकर प्रच्छन्न शृंगार की पुष्टि की है। महादेवी जी ने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति दुख से वैदग्ध वेदना से की है। उनके यौवन का माधुर्य भी वेदना से सिक्त है जिस पर ओस की बूँदों के समान आँसू का अजस्र प्रवाह सदैव विद्यमान रहता है। महादेवी के काव्य में दुःखवाद की प्रधानता है। उनका अधिकांश काव्य विरह-वेदना से समन्वित है। उनके

काव्य में प्रवाहित पीड़ा-धारा में आन्तरिक वृत्ति के देर तक निमग्न होते ही एक प्रकार का विचित्र अनुभव पाठक को होने लगता है—

पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर !

वियोग शृंगार के अतिरिक्त महादेवी के काव्य में कुछ नहीं। संयोग शृंगार के चित्र बहुत विरल हैं। 'रश्मि' में महादेवी स्वयं को प्रियतम में घिरा पाती हैं।

इसके ठीक विपरीत पंत जी के काव्य में आह्लाद है, सौन्दर्य प्रेम है। पंत जी सुन्दर के कवि हैं। इनका सौन्दर्य अबोध है, जिसमें कौतूहल वृत्ति और शिशुपन की अपूर्व अनुभूति है। 'पल्लव' में कवि कहते हैं—"विश्व कामिनी की पावन छवि मुझे दिखाओ करुणावान।" कवि की अन्तर्दृष्टि सौन्दर्य के मूल में, समस्त संसार में इसी को दृष्टिगत करना चाहती है—"अकेली सुन्दरता कल्याणि सकल ऐश्वर्यों की सन्धान।" पंत जी का समस्त साहित्य सौन्दर्य-खोज की सच्ची साधना है। यदि महादेवी सर्वत्र विरह में तल्लीन हैं तो पंत जी सर्वत्र सौन्दर्यदर्शी हैं। इसी सच्ची अनुभूति में पंत जी को विश्व का कण-कण अलौकिक आभा मे प्रफुल्लित और द्युतिमान् दिखाई देता है—

न जाने कौन अये द्युतिमान,
जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान !

पंत जी की वीणा में कई ऐसी कविताएँ हैं जिनमें यौन तत्त्व न होने के कारण तथा प्रेम का प्रारम्भिक पवित्र उद्रेक होने के कारण समवयस्क और सजातीय प्रेम ही सम्भव हो सकता है। पंत जी का प्रेम वर्णन विश्व की सीमा मे रहकर भी अलौकिक बन गया।

पंत और महादेवी दोनों की विचारधाराओं में चिन्तन और गाम्भीर्य है। महादेवी जी के 'नीहार' में ही आध्यात्मिक दर्शन हो गये हैं। सूफियों के प्रणय को लेकर कबीर की अतीन्द्रियता तथा बुद्ध की करुणा को लेकर महादेवी ने अपने को उस असीम की ओर उन्मुख कर लिया है। बुद्ध की करुणा ने उन्हें संसार के साथ तादात्म्य और आत्मीयता स्थापित करने का सामर्थ्य

जिससे अभिव्यक्ति अधिक संवेद्य हो जाती है। इसी कारण महादेवी ने आत्मा-परमात्मा-विषयक रहस्यवादी भावों की प्रस्तुति के लिए प्रायः दीपक, झंझावत वीणा, तरी, पतवार, नीरदमाला, रश्मि, तरल मोती जैसे अनेक प्रतीकों को ग्रहण किया है जो क्रमशः साधक, विघ्न-बाधा, हृदय, मानव-जीवन, साहस, अश्रु-प्रवाह, ज्ञान की ज्योति तथा आँसुओ के लिए प्रयुक्त हुए हैं। कवियत्री के गीतों का आलम्बन सूक्ष्म एव निराकार है, अतः इस रहस्यमयी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए इन सांकेतिक प्रतीकों की सहायता लेना उचित ही था। लौकिक क्षेत्र से चुने गये ऐसे प्रतीकात्मक शब्दो के द्वारा प्रमाता सहज ही कवि की अनुभूति के मूल का स्पर्श कर लेता है। 'चुभते ही तेरा अरुण वाण।' अथवा बिंध गया अज्ञान आज किसका मृदु-कठिन तीर' जैसी अभि-व्यंजनाओं मे ईश्वर से विरह की वेदना को 'वाण' के प्रतीकत्व द्वारा व्यक्त करने से प्रभाव-वृद्धि के साथ-साथ सप्रेषणीयता में भी सहायता मिली है।

सामान्यतः महादेवी के सभी गीतो मे प्रतीकों की स्थिति रही है, किन्तु आधिक्य की दृष्टि से 'दीपशिखा' के गीत उल्लेख्य है। इसमें अनेक अन्य प्रतीकों की सह-स्थिति में जीवन, हृदय अथवा आत्मा के लिए दो प्रतीकों—दीपक तथा वीणा का प्रयोग बारम्बार किया गया है। आज तार मिला चुकी हूँ, 'मदिर हर तार है मेरा', 'गूँजती क्यों प्राण-वशी', 'दीप मेरे जल अकम्पित', 'जब यह दीप थके तब आना', 'यह मदिर का दीप इसे नीरव जलने दो', जैसी पंक्तियाँ इसी तथ्य की परिचायक हैं।" (डा० सुरेशचन्द्र गुप्त-महादेवी की साहित्य-साधना)

"छायावादी काव्य से भी अधिक रहस्यवादी काव्य में प्रतीकों का प्रयोग होता है क्योंकि रहस्यवादी अपनी बात को प्रतीकों द्वारा ही समझा सकता है। महादेवी आधुनिक कविय मे अत्यन्त रहस्यवादिनी है, उनका काव्य अत्यधिक सांकेतिक है, अतः उन्होंने प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ये प्रतीक दो प्रकार के हैं—परम्परागत जो परिचित होने के कारण बुद्धिगम्य हैं तथा वे जो स्वय उनके द्वारा निर्मित है। परम्परागत प्रतीकों के अन्तर्गत हम तीन प्रकार के प्रतीक ले सकते है—

(१) प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक।

(२) निर्गुण सन्त काव्य-धारा के प्रतीक।

(३) छायावादी कवियों के प्रतीक।

उपनिषदों आदि में प्रकृति के उपकरणों—सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सन्ध्या, उषा, अमानिशा आदि का प्रतीक के रूप में प्रयोग पाया जाता है। रात्रि का नारी रूप में चित्रित करने की पद्धति अत्यन्त प्राचीन है। महादेवी ने भी यामिनी के कई नारी चित्र प्रस्तुत किए हैं—'सम्पुट केदारण्य' में माता-पिता को संपुट के रूप में वताया गया है। महादेवी ने भी

नीलम मरकत के सम्पुट दो
जिनमें वनता जीवन-मोती

में सम्पुट का प्रयोग किया है।

कवीर की भाँति महादेवी ने भी दाम्पत्य-भावना के प्रतीक को अपने रहस्यवादी काव्य में स्थान दिया है तथा ईश्वर को पति मानकर प्रणय-निवेदन किया है। शरीर को पिंजर तथा आत्मा को कीर मानने की पद्धति का भी उन्होंने अनुकरण किया है—

'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।'

सूफियों के साकी, प्याला, मदिरा आदि प्रतीकों का भी प्रयोग महादेवी के काव्य में उपलब्ध है—

'छिपाकर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन?'

छायावादी काव्य मे प्रयुक्त प्रकृति के क्षेत्र से अपनाये गए अनेक प्रतीकों—कली, भ्रमर, झंझा, इन्द्रधनुष, उषा, चंचला, मेघ, पवन, दीपक को महादेवी ने अपनाया है। अन्तर यही है कि अन्य छायावादियों की अपेक्षा महादेवी के प्रतीकों के पीछे वौद्धिकता का तत्व वहुत प्रवल है। दूसरी भिन्नता यह है कि उन्होंने छायावाद काव्य के व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य-प्रतीकों को न लेकर उन प्रतीकों की अव्यक्त गतियों तथा छायाओ को सग्रह किया है। वौद्धिकता तथा अव्यक्त गतियों तथा छायाओं को ग्रहण करने के ही कारण उनकी कविता दुरुह हो गई है। दुरुहता का एक कारण यह भी है कि वह अपने प्रतीकों के प्रयोग मे बहुत स्वच्छंद रही हैं। एक प्रतीक एक ही अर्थ मे सर्वत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, अतः वह संदर्भ के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ देता है।

महादेवी ने कुछ प्रतीकों का स्वयं निर्माण किया है। दीप को साधनारत आत्मा, सांध्यगगन को लौकिकना के प्रति विराग, यामिनी को सेवारत

काव्य-धारा का स्वरूप विश्लेषित करने में विभिन्न प्रमुख आलोचकों के विचार एवं कवयित्री का अपना कथन विशिष्ट महत्त्व रखता है। उपरिलिखित मन्तव्यों से छायावादी काव्य-धारा के निम्नलिखित प्रमुख तत्त्व निष्कर्षित होते हैं—

(१) वैयक्तिकता अर्थात् स्वानुभूति की अभिव्यक्ति।
(२) कल्पना और सहृदयता।
(३) प्रकृति का मानवीकरण।
(४) सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान।

वैयक्तिकता—छायावाद का सर्वप्रथम तत्त्व है, वैयक्तिकता, अर्थात् समाज-अंकन की अपेक्षा अपने ही सुख-दुख, हर्ष-विषाद को प्राथमिकता प्रदान करना। प्रसाद जी ने 'आँसू' में अपने ही जीवन की विरह-विदग्धता को अभिव्यक्ति प्रदान की है तो निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर' 'भिक्षुक' 'यमुना के प्रति' 'सरोज-स्मृति' 'राम की शक्ति-पूजा' आदि कविताओं ने अपने ही प्रपीड़ित एवं चिन्ताग्रस्त हृदय को वाणी से अलंकृत किया है। इसी प्रकार पन्त ने 'आंसू', 'ग्रन्थि' आदि कविताओं में अपने हृदय की ग्रन्थि ही खोली है। श्रीमती महादेवी वर्मा भी इस क्षेत्र मे किसी से कम नही हैं। उन्होने अपनी वेदना से इस संसार को रंग-बिरंगा बनाया है। "महादेवी के काव्य में स्वानुभूति का अर्थ प्रायः रहस्यानुभूति है जिसे उन्होने कल्पना, भावुकता और सौन्दर्य दृष्टि से अलंकृत रखा है। निराला और पन्त की कविताओं मे प्रकृति तथा मानव-जगत के प्रति जिस करुण संवेदना की अभिव्यक्ति मिलती है, वह महादेवी के गीतों की निधि न होकर उनके रेखाचित्रों की स्वाभाविक विशिष्ठता है, किन्तु रहस्यमय दर्शन को आत्मानुभूति के रूप में ग्रहण करने में उन्हे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। विशेषता यह है कि लौकिक रूपकों का आश्रय लेकर उन्होंने रहस्यानुभूति मे शृंगार-दशाओं के बिम्ब को भी भलीभांति सजोया है।"

कल्पना और सहृदयता—छायावादी कवियो ने अपने काव्य मे जीवन और प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग दिखाया है। अनुभूति का कल्पना-मूलक चित्रण करते समय सहृदयता का भी परिचय उन्होने दिया है। प्रेम छायावादी कवियो के काव्य-जीवन का प्रमुख अंग रहा है। छायावादी काव्य में दो प्रकार का प्रेम-चित्रण हुआ है—लौकिक और अलौकिक। लौकिक प्रेम के चित्रण मे छायावादी कवियों ने अपने ही प्रेम की सयोग और वियोगजन्य

सुखदुःख की अभिव्यक्ति की है। महादेवी में लौकिक प्रेम की अपेक्षा अलौकिक प्रेम चित्रण का आधिक्य है और उनकी अपार्थिव प्रेमाभिव्यक्ति का माध्यम विशेषतः प्रकृति रही है। यही कारण है कि महादेवी के काव्य में प्रकृति का संवेदनात्मक रूप प्रस्तुत हुआ है। "महादेवी की कविताओं में कल्पना के चित्र बहुवर्णी हैं—कहीं कल्पना ने भाव विशेष के लिए पृष्ठभूमि का चित्रण किया है, कही प्रकृति पर चेतना के आरोप के रूप में उसकी अभिव्यक्ति हुई है, कहीं वह रसोद्रेक में सहायक है और कही उसके माध्यम से आलंकारिक सौन्दर्य तथा वर्ण-परिज्ञान प्रकट हुआ है। कल्पना की तरलता ने उनकी उक्तियों में अतिरिक्त मार्मिकता और चारूत्व का विधान किया है, यह असंदिग्ध है।"

**प्रकृति का मानवीकरण :**—छायावादी कवियो ने प्रकृति को चेतन सत्ता मानकर इसमे मानव-व्यक्तित्व का आरोपण किया है और इस के माध्यम से अपने हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति का अनेक मुखी चित्रण उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। महादेवी ने भी अपने काव्य मे प्रकृति का भव्य एवं आकर्षक चित्रण किया है। डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त लिखते हैं "प्रिय ! सांध्य गगन, मेरा जीवन" और "हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन" जैसी उक्तियों मे महादेवी ने प्रकृति से इसी निकटता को वाणी दी है। प्रकृति से इस कोटि का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होने पर कवि स्वाभावतः उसमें अपने भावों की प्रतिच्छवि की खोज करता है। इस दृष्टि से महादेवी की कविता के दो कोण है—एक तो उन्होंने चेतनामयी प्रकृति का स्वतंत्र विश्लेषण किया है और दूसरे, प्रकृति के कण-कण मे विराट् के हृत्स्पन्दन का अनुभव किया है।"

**सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान**—छायावादी कवियों ने अपनी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सूक्ष्म प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग किया है। महादेवी के काव्य में भी सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान, लाक्षणिकता, चित्रमयता, भाषा की कोमलता, कल्पना का वैभव, ध्वन्यात्मकता, अभिव्यक्ति की वक्रता, प्रतीक योजना आदि विशिष्टताओं का भव्य रूप दृष्टव्य है। डॉ० नगेन्द्र ने महादेवी के शिल्प के सम्बन्ध में कहा है—"पंत की कला में जड़ाव और कढ़ाव है, अतः उनके चित्रों की रेखाएं पैनी होती है। महादेवी की कला में रंगघुली तरलता है जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।" इनके अप्रस्तुत-विधान में काव्य भाषा की सांकेतिकत अथवा प्राणवत्ता के लिए प्रतीकों,

वक्रोक्तिमूलक प्रयोगों और लाक्षणिक भंगिमाओं का प्रतिपद आश्रय ग्रहण किया गया है।

निष्कर्ष :—उपर्युक्त चिन्तन एवं मनन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य मे छायावादी तत्त्वों का मार्मिक एवं सुन्दर रूप उपलब्ध होता है। डा० विनयमोहन शर्मा का यह कथन—"छायावाद युग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन"—सार्थक प्रतीत होता है। डॉ० नगेन्द्र ने भी लिखा है—'महादेवी के काव्य मे हमे छायावाद का अमिश्रित रूप मिलता है…तितली के पंखों और फूलों की पंखुड़ियों से चुराई हुई कला और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पुरा हुआ एक वायवीय वातावरण ये सभी तत्त्व जिसमे घुले मिलते हैं वह है महादेवी की कविता।"

'महादेवी के काव्य में छायावाद' विषय का मूल्यांकन करते हुए डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त ने लिखा है—"वर्तमान हिन्दी के विकास-क्रम मे छायावाद का आविर्भाव एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इन कवियों ने भाव-क्षेत्र में नए क्षितिज की खोज की और अपनी बहुरगी कल्पनाओ द्वारा एक नए काव्यालोक का उद्घाटन किया। भाव-सम्पदा के साथ ही उन्होने शिल्पगुण को भी भिन्न आयाम दिए। 'झरना', 'ग्रन्थि', 'नीहार' आदि प्रारम्भिक कृतियो मे छायावादी कवियों ने पूर्ववर्ती काव्य-धारा से भिन्न मार्ग के प्रवर्तन के सकेत-मात्र प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उत्तरवर्ती रचनाओ मे प्रसादादि सभी छायावादियो ने हिन्दी को अन्तिम देन दी है। महादेवी का काव्य सौन्दर्य-बोध प्रकृति-चित्रण, रहस्यानुभूति और साकेतिक अभिव्यंजना की दिशाओ मे तो अपने सहयोगी छायावादी कवियो के समान प्राणवान है ही, उसमे एक अतिरिक्त विशेषता यह है कि मर्मस्पर्श का गुण उसमे सर्वाधिक है। यह दूसरी बात है कि इस दिशा में उनका क्षेत्र प्राय. रहस्य-दर्शन तक सीमित है, जबकि अन्य कवियों ने प्रकृति तथा मानव-विषयक सहृदय-दृष्टि मे अपेक्षाकृत अधिक संलग्नता का परिचय दिया है।'

——

# व्याख्या भाग

## गीत १

**प्रसंग**—प्रस्तुत गीत अनन्त प्रियतम के पथ की चिर-साधिका महादेवी वर्मा के गीति-सग्रह 'आधुनिक कवि' का प्रथम गीत है जिसमें कवयित्री ने कल्पना और भावना के अनुपम समन्वय के साथ प्रकृति की कोमलकान्त छवि का सुमनोहर दृश्य उपस्थित किया है। प्रस्तुत गीत में यह प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्म-ज्ञान होने पर साधक आत्मा लौकिक और मृण्मय सुखों में तन्मय रहने के स्वभाव को विस्मृत कर उस परम परमात्मा की अनुपम छवि को उसकी पूर्णता में आत्मसात् करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती है।

**शब्दार्थ**—निशा = रात्रि। राकेश = चन्द्रमा। अलके = वेणी। मधुमास = वसन्त। वात = वायु। अस्फुट = अस्पष्ट।

निशा की धो ...... इस पार।

**व्याख्या**—जिस समय चन्द्रमा रात्रि (रूपी स्त्री) की (अन्धकार रूपी) वेणियों को खोलकर उन्हे चादनी से धो रहा था (अर्थात् चन्द्रमा की चांदनी से अन्धकार उजाले मे बदल रहा था) वसन्त कली से मदिरा के समान मादक पराग का मूल्य पूछकर अपना स्नेह प्रदर्शित कर रहा था, और जिस समय मस्त (अथवा मतवाला) पवन ओस की बूंदों की मालाओं को तोड़कर उन (मोतियों जसे बिन्दुओं) को धूलि धूसरित कर रहा था (धूल मे मिला रहा था) उसी समय (अथवा ऐसे ही समय में) तुम (अज्ञात प्रिय) मुझे जीवन का वास्तविक प्रेम-संगीत सिखाने के लिए (जीवन का वास्तविक पाठ पढ़ाने के लिए) मेरे पास इधर, अपने लोक का परित्याग करके इस लोक—इस पार—(इस संसार) में आए थे।) कहने का तात्पर्य यह है कि कवयित्री को प्रिय का साक्षात्कार रात्रि में प्रकृति के उपर्युक्त रमणीय वातावरण में हुआ।)

विछाती था..................................प्यार पर

तुम्हारी इस प्रकार की करुणा से (कि तुम मेरे पास जीवन-संगीत सिखाने आए,) मैं नाना प्रकार के मधुर स्वप्नों (सुखद कल्पनाओ) मे लीन थी। तुम्हारे अधरो पर उस समय जो मुस्कान थी उसने मुझे मधुर पीड़ा में निमग्न कर दिया (मेरे हृदय में वह प्रेम उत्पन्न कर दिया जिसका अनिवार्य परिणाम होता है सुखमय दु:ख—मधुर पीडा, आनन्दमयी वेदना) मैं वार वार तुमसे सीखे राग (पाठ) भूल जाती थी (सगीत मे अनभ्यस्त) मेरे हाथ (उंगलिया) वार-वार (उस वीणा पर) काँप जाते थे। (प्रेम संगीत में मैं अनभ्यस्त थी इसलिए जैसे कोई अनभ्यस्त सगीतज्ञ संगीत-सम्बन्धी भूलें किया करता है वैसे ही मै भी प्रेम-सम्बन्धी भूले किया करती थी।) किन्तु हे प्रिय ! तुम अत्यन्त करुणामय थे। अतः तुम्हे मेरी भूलें अखरती नहीं थी, वरन तुम फिर भी मेरी भूलों को देखकर उनके कारण मुझमे प्यार ही करते रहते थे।

गए तव से...... .................अस्फुट झंकार

उसके पश्चात् तुम चले गए। उस वात को अब कितने ही युग बीत गए। मेरे जीवन रूपी कितने ही दीपक वुझ गए। (महादेवी का अज्ञात के प्रति जन्म-जन्मान्तर का प्रेम है) किन्तु मैंने अपने अनेक जन्मों मे भी, तुम्हारे प्रेम-संगीत जैसा मन को लुभाने वाला गाना, नही सीख पाया। हे प्रिय ! अव मुझ से नही गाया जाता। निरन्तर प्रयत्न से मेरी अंगुली थक गई है। मेरी जीवन वीणा के तार भी ढीले पड गए हैं। अतः प्रार्थना है कि मेरे हृदय में जो प्रेम-संगीत की अस्पष्ट ध्वनि है उसे तुम अपनी विश्व प्रेम की वीणा में ही मिला कर एक कर लो (अर्थात् मुझे अपने सामीप्य लाभ से चिर शान्ति प्रदान करने की कृपा कीजिए।)

साहित्यिक-सौन्दर्य—भाव और शिल्प की दृष्टि से सुसमृद्ध यह गीत आधुनिक गीति-काव्य में अपना विशेष स्थान रखता है। गीति की सर्वप्रमुख विशेषताएं आत्माभिव्यक्ति, कोमलकान्त पदावली, भावान्विति और नाद-सौन्दर्य का संविधान वर्ण्य गीत में अनुपम रूप में उपलब्ध होता है। रहस्यवादी विचार-धारा की भव्य और सुष्ठ अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत मे द्रष्टव्य है। साधिका महादेवी अज्ञात प्रियतम से चिर-मिलन की आतुरता व्यक्त करती है। तदतिरिक्त छायावादी काव्य-शैली का भी सुन्दर रूप यहाँ उपलब्ध है। प्रकृति का मानवीकरण करने की प्रणाली को महादेवी जी ने

व्यापक रूप से ग्रहण किया है। निशा, राकेश, कली, मधुमास और पवन का मानवीकरण सहृदय-सवेद्य हो उठा है। प्रतीक-शैली भी अत्र उपलब्ध है। शशि, रात्रि, चन्द्रिका, अलके कली और वसन्त प्रस्तुत या अप्रस्तुत न होकर प्रतीक हैं। समग्रतया कहा जा सकता है कि साहित्यिक-सौन्दर्य से सम्पन्न यह गीत अध्येता का मनः प्रसादन करने में समर्थ है।

## गीत २

प्रसंग—ब्रह्म-दर्शन के लिए लालायित साधक-प्राण को मिलन-स्थिति से पूर्व विविध प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। स्वप्नानुभूति भी एक ऐसी ही मधुर अनुभूति है। प्रस्तुत गीत में कवयित्री ने अपने अज्ञात प्रियतम से स्वप्नावस्था में साक्षात्कार किया है। प्रिय के दर्शन के प्रभाव और तदनन्तर उसके प्रयाण पर प्रेमिका की अवस्था एक विचित्र प्रकार की हो जाती है और उसे जीवन मे केवल पीड़ा, दु.ख और वेदना ही दृष्टिगत होती है। अन्ततः साधिका पुष्पों के विकास में अपने प्रियतम परमेश्वर के हास की कल्पना करके अपने मौन-मिलन को स्वप्नवत् न मानकर यथार्थ रूप में स्वीकार करती है।

शब्दार्थ—तूलिका=कूँची। तुहिन विन्दु=ओस की बूँदे। विधुर= जिसकी पत्नी मर गई हो। आह्वान=आवाहन। निर्निमेष=अपलक।

रजत करों की ........................ बरसाने आते।

व्याख्या—महादेवी वर्मा उस वातावरण की सुषमा का वर्णन करती हैं जब उनके प्रियतम (परमेश्वर) उनके पास आये थे। उस समय चन्द्रमा की उजली किरणों की कूँचियों से, कोमल ओस की बूँदों द्वारा, कलियों के ऊपर संसार अपनी करुणा-कथा के चित्र बना रहा था। (भाव यह है कि चाँदनी रात्रि थी, कलियो पर ओस की बूँदें पड़ी हुई थी और संसार शान्त था।) सरल स्वभाव वाले मेघ अपने द्रवित हृदय के उच्छ्वासों को, वर्षा अथवा ओस की बूँदों के रूप में विश्व को दे रहे थे और अंधकार दिन-भर के थके प्राणियो के श्रम-परिहार के लिए (श्रांत नेत्रों को सुख पहुंचाने वाले) अंजन ( सुरमे ) का काम कर रहा था ( रात्रि में अंधकार हो जाने पर प्राणियों को श्रम-परिहार का अवसर मिलता है)।

मधु की ........................ मुरली की तान।

उस समय मधु की बूँदों (पुष्पों के पराग) में तारक-लोकों के पवित्र

फल अर्थात् आकाश से फलों की भाँति बरसने वाली ओस की बूँदें गिरती थी। और इस प्रकार फूल की पखुड़ियों (नीरव कूल) में एक कम्पन-सा पैदा होता था। वह कम्पन ठीक उसी प्रकार का होता था जैसे अपनी पत्नी से वियुक्त कोई पुरुष उसकी स्मृति में कांप उठता है। ऐसे समय में वे मेरे प्रियतम मौन प्रणय, प्रेम की मधुर व्यथा के समान और स्वप्न-लोक के आवाहन की भाति चुपचाप अपनी वंशी की अत्यन्त मादक तान सुनाने के लिए आये ( भाव यह है कि महादेवी वर्मा को जब अपने प्रियतम परमेश्वर का साक्षात्कार हुआ उस समय उपर्युक्त प्रकार का वातावरण था)।

चल चितवन..................प्याले पर प्याले।

जिस प्रकार कोई दूत अपने स्वामी की बातों को स्पष्ट किया करता है उसी प्रकार मेरे प्रियतम की चंचल चितवन ऐसी थी जिससे उनके प्रेम के सारे रहस्यो का स्पष्टीकरण होता था। पहले तो मैंने टकटकी बांध कर उनकी ओर देखा परन्तु बाद मे विरह के कारण मेरे नेत्रों मे एक ऐसी हलचल मची जिसका कथन नही किया जा सकता। उसी समय से मेरा जीवन एक उन्माद-सा हो गया है। मेरी स्थिति असाधारण हो गई है। सांसारिक निधियाँ मुझे सुखद नही वरन् प्राणों के छालो के समान दुखद लगती है (अथवा प्राणों के ये छाले ही अब मेरे लिए एकमात्र निधियो के समान रह गये हैं) और मन लगातार वेदनामृत पान के निमित्त उसी प्रिय के विरह की वेदना की अधिकाधिक माँग कर रहा है (तात्पर्य यह है कि विरह वेदना मे भी एक निराला माधुर्य होता है जिसे भुक्त-भोगी ही जान सकता है। महादेवी ऐसी मधुर वेदना की अधिक से अधिक आकांक्षा करती है)।

पीड़ा का ..........................उनके ह्रास।

प्रियतम के प्रथम मिलन के उपरान्त मे विरह की अधिकतम पीड़ा का अनुभव कर रही हूँ। उस दिन से मेरी पीडा का साम्राज्य-विस्तार अज्ञात प्रियतम के निवास-स्थान तक हो गया है जो कि यहाँ कही नही, दूर क्षितिज से भी परे किसी अज्ञात स्थान मे है। प्रियतम के विरह में धीरे-धीरे मिट कर समाप्त हो जाना ही वास्तविक निर्वाण की प्राप्ति है और मूक-रोदन ही पहरेदार है ( अर्थात् मिटते रहने की अवस्था मे मूक-रोदन उसी तरह सदैव सजग रहता है जैसे कि पहरेदार सदैव सजग रहता है )। हे सखि! इस प्रकार के मेरे मूक-मिलन को तुम स्वप्न कैसे कह सकती हो ? (स्वप्न

की बात का प्रत्यक्ष कोई प्रभाव नहीं होता पर मेरे मूक-मिलन का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखलाई देता है। उसका प्रमाण यह है कि मेरे प्रियतम की जो मधुर, मादक हँसी थी वह पुष्पों के विकास के रूप में देखी जा सकती है और उनके विरह में मैंने जो अश्रु गिराये थे वे फूलों में पराग और ओस की बूँदों के रूप में वर्तमान हैं।

साहित्यिक-सौन्दर्य—रहस्यवादी विचार-पद्धति से प्रभावित एवं अनुप्राणित कवयित्री ने अपनी रहस्यमयी विरह-भावना की बहुत सुन्दर और स्पष्ट अभिव्यक्ति की है। मानव-मनोविज्ञान की दृष्टि से भी विवेच्य गीत विशिष्ट महत्व रखता है। प्रिय के मिलन पर प्रेमिका का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व आध्यात्मिक जीवन में जितना सत्य है, उतना ही और उससे कही अधिक वह भौतिक जीवन में भी सत्य है। कल्पना और भावना का आश्रय लेकर कवयित्री ने अपनी रहस्यवादी विचार धारा में एक सजीवता और मार्मिकता का समावेश कर दिया है जिससे चिन्तन और बुद्धि का विषय भी हृदय-स्पर्शी हो उठा है। तदतिरिक्त प्रकृति-सौन्दर्य का अभिनव और सुष्ठु वर्णन प्रकृति-प्रेमी पाठकों का मनरंजनकारी रहा है। शास्त्रीय दृष्टि से यहाँ विप्रलम्भ शृंगार है। कला-पक्ष की दृष्टि से भी प्रस्तुत गीत पर्याप्त सुसमृद्ध है। अनुप्रास, उपमा, रूपक और मानवीकरण अलंकारों की सहज व्याप्ति द्रष्टव्य है। छान्दिक दृष्टि से द्वितीय पद में अन्धकार के लिए 'बरसाने आते' व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग हैं। शैली माधुर्य गुणोपेत और सौष्ठव सम्पन्न है। समग्ररूप में प्रस्तुत गीत पर्याप्त समृद्ध और भव्य है।

## गीत ३

प्रसंग—प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने प्रकृति के विविध व्यापारों की सृष्टि की सुन्दरता और फिर उनके समाप्त हो जाने पर उनकी नश्वरता का उल्लेख किया है। प्रकृति की नश्वरता देख कर वह अनुभव करती हैं कि यह संसार कितना अस्थिर, मादक और निष्ठुर है। जीवन भी इसी प्रकार क्षण-भंगुर और नश्वर है।

शब्दार्थ—निश्वास=बाहर निकलने वाली सांसे। नीड़=घोंसला। शयनागार=सोने की जगह। गोधूली=गोधूली की वेला, सन्ध्या-पूर्व का समय जब गाए वन से चर कर आती हैं।

निश्वासों का नीड़..............अस्थिर है संसार।

व्याख्या—प्रातःकाल के समय न रात्रि रहती है न तारागण। कवयित्री कहती हैं मानो रात्रि प्रातःकाल होने पर निश्वासों से भरे हुए, इस संसाररूपी घोंसले के, सोने के कमरे में चली जाती है। रात्रि में जो तारागण मोती की पक्तियों के समान वन्दनवार बनाये हुए होते है वे भी उस समय नष्ट-भ्रष्ट होकर लुट जाने की तरह अशेष हो जाते हैं। उन बुझते तारों के अव्यक्त शान्त नेत्रो से मिटने के दुख से कातर होने के कारण जो आँसू निकलते हैं वे ओस की बूँदों के रूप में दिखलाई देते है। तारागण ओस की इन बूँदों के रूप मे गिरे हुए आंसुओं की स्याही से मानो लिख जाते हैं कि यह संसार कितना अस्थिर है। किसी समय हमारा साम्राज्य था और आज हम नष्ट हो रहे है।

हँस देता जब..................मादक है संसार।

जिस समय प्रातःकाल अपने उषाकाल के सुनहरे वातावरण मे रोली बिखराने के समय पीला होता है और एतदर्थ प्रफुल्लित प्रतीत होता है; तथा लहरों की विछलन पर सूर्य की भोली किरणें भी मचलने लगती हैं अर्थात् सूर्य की आभा लहरों की चञ्चलता पर पडती है। उस समय कलियां अपने सुकुमार पल्लव रूपी घूँघट को उठा कर (विकसित हो कर) पराग से युक्त हुई मानो यह कहती है कि यह ससार हमारी तरह ही मद से भरा हुआ कितना मनमोहक है!

देकर सौरभ दान..................निष्ठुर है संसार।

पुष्प अपने विकास के समय पवन को अपनी सुगन्धि लुटा देते हैं। मुरझाने पर पवन उनकी अवहेलना करके उन्हें धूलि धूसरित करती है। तब मुरझाए हुए फूल पवन से कहते है कि हम तो आपके लिए सर्वस्व खो कर आपके मार्ग में विछे हुए हैं, फिर भी आप हमारी आँखों मे धूल क्यों भरती हैं? उस समय भौंरो का वह समूह जो पुष्पोंके विकास के समय मद पान करके मत्त हो जाता था मानो अपनी गुञ्जार से यही व्यक्त करता है कि अब इन मुरझाये फूलों में परागहीन होने से क्या सार रखा है? तब मर्मर ध्वनि में पत्त मानो रोकर यही कहते हैं कि यह संसार कितना निष्ठुर है! कितना स्वार्थमय है।

स्वर्ण वर्ण.....................मतवाला संसार।

दिन की समाप्ति पर पश्चिम में सुनहरी आभा दिखलाई देती है मानो दिन अपने जीवन की पराजय को सुनहरी अक्षरों में लिख कर जाता है और गोधूली के समय आकाश के प्राँगण मे अनेकों नक्षत्रों के रूप में दीपक प्रज्वलित हो जाते हैं मानो अपना समय आता देख कर गोधूली ने प्रसन्नता से दीप जलाये हो। किन्तु थोड़ी देर वाद ही दूर से अन्धकार का समूह बढ़ता हुआ आता है और गोधूली की सारी प्रसन्नता समाप्त करता हुआ वह हँस कर ( उपहास भरे स्वर में ) कहता है कि इतने युग ( समय ) बीत गये किन्तु संसार अव भी (अब तक) मतवाला ही बना हुआ है। (उसकी वेहोशी यथा-पूर्व विद्यमान है) नित्य ही सुखमय समझी जाने वाली वस्तुओं की क्षण भंगुरता के प्रमाण अपने नेत्रों से देख कर भी वह उन्हें स्थायी मानने की भूल करता ही जाता है।

स्वप्न लोक.....................पागल है संसार।

हम वास्तविक जग में जैसा जीवन चाहते हैं वैसा नहीं पाते। तव अपने इच्छित जीवन को स्वप्न लोक के समान कल्पना के सहारे क्षण-भर के लिए निर्मित करते हैं और फिर हमारे पागल प्राण भ्रमवश यही समझ लेते हैं कि हमारा ऐसा जीवन सदैव ही वना रहेगा। किन्तु उसी समय न जाने कहाँ से एक कोमल ध्वनि आती है और वह बड़े करुणा से युक्त स्वरों मे गाकर यह वतला जाती है कि संसार के प्राणी, जो कल्पना की दुनिया को वास्तविक समझते है, कितने पागल है (भाव यह है कि मानव अपने अभावों की पूर्ति स्वप्न-लोक अथवा कल्पनालोक में करता है किन्तु स्वप्न और कल्पना को ही सत्य समझना अवास्तविक है जो भ्रमवश ऐसा समझते है वे कितने पागल है)।

साहित्यिक-सौन्दर्य—प्रस्तुत भाव-प्रधान गीत में कवयित्री ने यह प्रतिपादित किया है कि विश्व के नाना उपकरण सौन्दर्य का आगार होने पर भी नश्वर अनित्य और क्षण-भंगुर हैं, अतएव व्यक्ति को विश्व की लौकिक और भौतिक विभूतियों के आकर्षण से विचलित नहीं होना चाहिए। जीवन की गति परमेश्वर की प्राप्ति में है, इसलिए व्यक्ति को परम पिता परमात्मा के मिलने के लिए साधना करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रकृति का करुण-कोमल भावनाओं के परिवेश में वर्णन हुआ है जो सुन्दर होने पर भी मन में उल्लास का

भाव उद्दीप्त न कर करुण-भाव का संचार करता है। अलंकार-सौष्ठव से प्रायः शून्य होने पर भी भाव-माधुर्य और सौष्ठव के कारण प्रस्तुत गीत सुन्दर बन पड़ा है। विश्व जीवन का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत सुन्दर और यथार्थ वर्णन हुआ है।

## गीत ४

प्रसंग—प्रस्तुत गीत एक वेदनामय गीत है। कवयित्री जी का अपने प्रियमत परमेश्वर से साक्षात्कार होता है। उस समय लज्जा के कारण कुछ कह नही पाती। परन्तु तत्पश्चात् विरह वेदना का तीव्र अनुभव हो रहा है। पिछले छन्दों मे रहस्यात्मक भाव व्यक्त किए गए है।

शब्दार्थ—रजनी=रात्रि। वैभव=ऐश्वर्य। तटनी=नदी। विधु=चन्द्रमा। व्रीड़ा=लज्जा। निर्मम=निष्ठुर।

रजनी ओढ़े.................. करती आलिङ्गन।

व्याख्या—रात्रि का समय था। तारागण जगमगा रहे थे। उस समय ऐसा लगता था मानो रात्रि रूपी स्त्री ने झिलमिल चमकते हुए सितारों से जड़ी साडी पहन रखी हो। उसका इस प्रकार बिखरा हुआ ऐश्वर्य देख कर उजियाली मानो रो रही थी। तटनी (नदी) चन्द्रमा को छूने के लिए मचलती हुई (आकाश मे प्रकाशमान चन्द्रमा को छूने की इच्छा से ऊँची उठती हुई अथवा नदी के जल पर पड़ते चन्द्र बिम्ब का स्पर्श करने के लिए आतुरतापूर्वक अग्रसर होती हुई) लहरों को चूम कर सुधिहीन सी होकर (शशि के स्थान पर) अन्धकार की छाया का ही आलिगन कर रही थी (बेसुध होने के कारण यह नही समझ पा रही थी कि जिस छाया को वह प्रकाश-पुँज समझ रही है वह वस्तुत. अन्धकार-निर्मित है)।

अपनी जब करुण.............. ... गलियो मे।

जिस समय मलय समीर चलता है तो पृथ्वी शीतलता से आर्द्र हो जाती है मानो मलय समीर ने अपनी करुणा से भरी हुई कहानी सुनाई हो जिससे पृथ्वी का हृदय द्रवित होकर आँसू बहाने की स्थिति आ गई। पल्लव रूपी हिडोलो पर सौरभ कलियो मे चैन से सो रहा था और चन्द्रमा की किरणे धीरे-धीरे छिप-छिप कर चलने वाले की तरह मधुवेष्ठित वातावरण में प्रविष्ठ हो रही थीं (अर्थात् पुष्पित उद्यान मे चन्द्रमा की किरणे चुपके-चुपके प्रवेश कर रही थी)।

आँखों में..........................भर कर ढाली।

जिस समय आँखों ही आंखों में रात्रि व्यतीत करके (अर्थात् सारी रात जग कर) चन्द्रमा ने अपना पीला मुख फेरा (चन्द्रमा अस्ताचल की ओर प्रस्थान करने लगा) उस समय प्राची दिशा से नवीन चित्र अंकित करने के लिए प्रभात (प्रभात कालीन सूर्य) रूपी चित्रकार का उदय हुआ उस समय जबकि सृष्टि के कण-कण में नवयौवन (नये प्रभात की मधुरिमा) और लालिमा छाई हुई थी (सभी वस्तुएँ चैतन्य, जीवन-युक्त और सुन्दर थीं) उस समय (ऐसे वातावरण में) मैं निर्धन (प्रियतम के चरणों पर अर्पित करने के लिए) अपने सपनों (कल्पना आकांक्षाओं) से भरी डाली (भट) लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुई (प्रिय के संसर्ग-सुख की मादक एवं सुमधुर कल्पनाओं के अतिरिक्त मुझ निर्धन के पास और था ही क्या उन्हे भेंट चढाने के लिए ?)

जिन चरणों..............................पीड़ा का ।

मेरे प्रियतम के चरणों के जिन नाखूनों की कान्ति के सामने हीरो के गुच्छे भी तुच्छ प्रतीत होते हैं, मेरे पास उन पर भेट चढाने के योग्य कुछ नहीं था अतः मैंने उन पर केवल अपने नेत्रों से निकली धुँधले दो-चार आँसू की बूँदें ही अर्पित कर दीं। प्रियतम के दर्शनों के लिए लालायित (ललचायी) मेरी पलकों पर उस समय लज्जा का पहरा था (आतुर होने पर भी मेरी पलक उस समय लज्जा विवश होने के कारण प्रिय के दर्शनार्थ ऊपर न उठ सकी); उधर (उसी अवधि मे) प्रियतम की एक चितवन (तिरछी नजर) ने मुझे मानो पीड़ा का एक साम्राज्य ही प्रदान कर दिया (उस चितवन ने मुझे बहुत बुरी तरह घायल कर दिया)।

उस सोने के........................रहती दिवाली।

उस स्वर्णिम स्वप्न को देखे हुए कितने ही युग व्यतीत हो गए हैं अर्थात् प्रिय से विलग हुए दीर्घावधि व्यतीत हो गयी। परन्तु अभी तक प्रिय से पुनर्मिलन सम्भव नहीं हो सका है। प्रिय-विरह में अनवरत अश्रु रूपी मुक्ताओं की वर्षा करते-करते मेरे लोचनों (दृगों, नेत्रों के कोष भी रिक्त हो गए है अर्थात् वियोगावधि प्रयत्न करने पर समाप्त नही हो पा रही है और मैं अपने विरह-जनित अश्रु-प्रवाह के समाप्त हो जाने के कारण शून्य नयनों से प्रिय की प्रतीक्षा कर रही हूं। मैं अपने इस शून्य राज्य की एकमात्र साम्राज्ञी हूँ और

अपने प्रिय-विरह की मादकता में तल्लीन हूँ। प्रिय-विरह में अपने प्राण (आत्मा) रूपी दीपक को प्रज्वलित कर अविच्छिन्न भाव से दीपावली के उत्सव जैसे उल्लास, हर्ष और प्रसन्नता की योजना करती रहती हूँ।

मेरी आहें.......................... राज्य अन्धेरा।

मेरे ओष्ठ-युग्म के भीतर मेरी कराहें चुपचाप सो रही है (अर्थात् वेदना के कारण मुझे जैसी निश्वासपूर्ण आहें भरनी चाहिए थी वैसा मैं नहीं कर रही। मैं तो चुपचाप रहकर इस चिर-व्यथा को सहन कर रही हूँ।) मुझे जो यह विरह-वेदना मिली है वह मेरे प्रेम के दीवानेपन के कारण है और उसी दीवानेपन से मैंने विरह-वेदना की चोट खाई है। अब तो मेरा सब कुछ इस विरह वेदना में ही अन्तर्निहित है।

(अन्त में कवयित्री प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि) हे निष्ठुर! यदि मेरा जीवन दीपक तुम्हारे विरह दुख के कारण बुझ जाय तो भी मुझे चिन्तित होने की क्या आवश्यकता है? इससे तो तुम्हे ही हानि होगी क्योंकि अब मेरे जीवित रहने से तुम्हारी पीड़ा का साम्राज्य फैला हुआ है; मेरा जीवन दीप बुझ जाने पर तुम्हारे पीड़ा के राज्य में अंधेरा हो जायेगा। (मेरे अभाव में तुम्हारी पीड़ा को कौन धारण करेगा—यह भाव है।)

विशेष—१. इस गीत में महादेवी वर्मा के रहस्यवादी विचार अंकित है। अन्तिम छन्द में उन विचारों का रहस्योदघाटन उनके उक्ति वैचित्र्य को व्यक्त करता है।

२. इस कविता में प्रारम्भ के छन्दों मे प्रकृति वर्णन दृष्टव्य है। कवयित्री जी ने यहाँ प्रकृति का मानवीकरण किया है।

३. महादेवी जी ने अपनी एक प्रकार की अनुभूति को नाना प्रकार से अभिव्यक्त किया है। "मेरी आहे सोती हैं" तथा "चिन्ता क्या है, हे निर्मम' आदि पंक्तियों में उनकी निजी विशेषता अभिव्यक्त है।

## गीत ५

प्रसग—प्रस्तुत गीत मे कवयित्री जी ने प्रकृति के नाना उपकरणों को ऐसा ही वेदना से युक्त देखा है जैसी वेदना का अनुभव वे स्वयं कर रही हैं। यह स्वाभाविक है। सुखी व्यक्ति को ससार में सुख ही सुख दृष्टिगोचर होता है और दुखी को दुख। अतः विरह दुःख से कातर कवयित्री को कण-कण मे

अपने मानस का सूनापन दिखलाई देता है।

शब्दार्थ—अञ्जन=आंखों में लगाने का सुरमा, अन्धकार। आँखों का राग=आंखों की लाली। पांतें=पंक्तियां। नीरव=शान्त, रव-रहित।

मिल जाता है........................हुई आहों में।

व्याख्या—सन्ध्या के समय लाली होती है तदनन्तर वह लाली अन्धकार में मिल जाती है यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे कि लाल-लाल नेत्रों में काला सुरमा लगा देने से होता है। उसके पश्चात् आकाश में नक्षत्र-मण्डल दृष्टिगोचर होता है सो मानो आकाश उस शून्य में इन तारों को फैला कर उन्हें किसी की विरह-वेदना-वश मन बहलाने के लिए गिनता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे आकाश का कुछ खो गया है और उसे प्राप्त करने की उसे बड़ी चाह है। इसीलिए वह अपने भीतर ही भीतर घुट कर एक अव्यक्त अस्पष्ट वेदना वश इस शून्य में तारे गिनता है। कवयित्री जी को आकाश के हृदय में अपने ही शून्य हृदय के सूनेपन का आभास होता है।

झूम-झूम...........................खोने में।

मेघ घिर-घिर कर आते है। उन्होंने मानो वेदना रूपी हाला का प्याला पी लिया है। इसीलिये वह मत्त होकर झूमते हुए आते है। वे अपने प्राणों में रुंधी हुई निश्वासों को लेकर नभ में विचरण करते है। वे रुक-रुक कर, मानो स्मरण कर-कर के वर्षा के रूप में रो पड़ते है क्योंकि उनका वार-वार विजली के साथ मिलन होता है और बार-बार फिर अलग हो जाते हैं। (कवयित्री जी को वहाँ भी) अपने अन्तरम के सूनेपन के ही दर्शन होते हैं।

धीरे से सूने.......................चुम्बन में।

शून्य रात्रि में ओस पड़ती है। कवयित्री जी कहती है कि इस पृथ्वी के शून्य प्रांगण में रात्रि अपनी ठंडी सांसे भरती हैं। उसकी ठंडी सांसों के साथ-साथ मोतियों के सदृश आँसू की पंक्तियाँ (ओस) गिर पड़ती है। प्रात.काल रवि रश्मियाँ जब उनका स्पर्श करती है तो वे इस प्रकार कम्पित-सी होकर नीचे गिर पड़ती है जैसे प्रथम मिलन के चुम्बन से कम्प और रोमाच होता है। जो ओस ढुलक कर नीचे गिरती है, महादेवी जी को उसमे अपने हृदय का विषाद दिखलाई देता है।

जाने किस........................गिर जाने में।

प्रातःकाल शीतल मन्द समीर चलती है। मानो वायु अपने शीतलता

रूपी पंखों से फूलों के मुरझाए हुए नेत्रों का स्पर्श करती है। वह वायु उन पुष्पों को पिछले जीवन का सुखद सन्देश देती है जिससे कि उनके मुरझाए और अलसाए हुए, पंखुडियो रूपी नेत्र प्रफुल्लित हो जाते हैं (फूल खिल जाते है)। थोडी देर के लिए ये फूल विकसित होते है पर फिर मुरझा कर गिर पड़ते है क्योंकि उनके वास्तविक यौवन की स्थिति व्यतीत हो चुकी है। वे तो केवल शीतल पवन के स्पर्श से क्षण मात्र नेत्र निमीलन ही कर सकने योग्य रह गये है (महादेवी जी को इस क्रिया में अपने मानस के छिपे अवसाद के दर्शन होते है)।

आँखों की··· ···· ···············मानस का सूनापन

अन्त में कवयित्री जी अपने प्रियतम को निष्ठुर कह कर सम्बोधित करती है और कहती है कि प्रकृति के उपर्युक्त व्यापारों में ही नही वरन् अन्यत्र भी सर्वत्र मेरे मानस की शून्यता दिखाई देती है। उन आँखों में जो बिना कुछ व्यक्त किए हुए शान्त रूप से याचना करती है, वेदना, अभाव और असफलता के कारण हृदय के दुख को प्रगट करने वाले प्रवाहित अश्रुओं के मिटते हुए दागों मे, ऐसी पीड़ा मे जो हृदय रहने पर भी मूक होती है और उसके होते हुए ओठों पर मुस्कान रहती है तथा पीड़ा का अनुभव करके निकलती हुई आहो में, किंबहुना सृष्टि के कण-कण में मुझे तो अपने हृद्गत अभाव की छाया ही दिखलाई देती है। भाव यह है कि वेदना से परिपूर्ण हृदय सर्वत्र सदैव वेदना का ही अनुभव करता है। कवयित्री जी वेदनाग्रस्त है अतः उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि विपादमय दृष्टिगोचर होती है।

साहित्यिक सौन्दर्य—रहस्यवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली कवयित्री महादेवी ने काव्यानुभूति और सौन्दर्य चेतना की अभिव्यक्ति के लिए युगानुकूल छायावादी अभिव्यंजना- पद्धति को माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। छायावादी कवि प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उस पर चेतना का आरोप करते है। महादेवी जी ने अपने काव्य में प्रकृति के सचेतन रूप को स्वस्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। छायावादी काव्याभिव्यक्ति में प्रकृति का मानव जीवन से गहन सम्बन्ध स्थापित रहता है और ये दोनों एक दूसरे को व्यापक प्रेरणा प्रदान करते है। उदाहरणार्थ उनके विचार दृष्टव्य है—'छाया-वाद का कवि न प्रकृति के किसी रूप को लघु या निरपेक्ष मानता है न अपने जीवन को, क्योंकि वे दोनों एक विराट् रूप-समष्टि में स्थिति रखते हैं और

एक व्यापक जीवन से स्पन्दन पाते है। जीवन के रूप-दर्शन के लिए प्रकृति अपना असह्य सौन्दर्य-कोप खोल देती है और प्रकृति के प्राण-परिचय के लिए जीवन अपना रगमय अवकाश दे डालता है।" (महादेवी का विवेचनात्मक गद्य)। प्रस्तुत कविता में भी प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। इसी कारण उन्होंने रात्रि, वायु, पुष्प, मेघ-माला आदि विविध प्राकृतिक उपकरणों में प्राण प्रतिष्ठा कर उन्हें मानव की भाँति क्रियाशील दिखाया है। तद्तिरिक्त कवयित्री के रहस्यवादी विचारों की योजना भी प्रस्तुत गीत मे अत्यन्त भाव-गर्भित एव मार्मिक है।

## गीत ६

प्रसग—यह एक रहस्यात्मक गीत है। इसमें महादेवी वर्मा के आन्तरिक विश्वास की अभिव्यंजना है। ईश्वर की झलक पा लेने पर प्राणी सर्वत्र उसी की छाया देखता है और उसे अपने ऊपर विश्वास हो जाता है। इस कविता में कवयित्री ने यह अभिव्यक्त किया है कि ईश्वरानुभूति का प्रभाव चिरकाल तक रहने वाला होता है।

शब्दार्थ—अनन्त=आकाश, असीम। सस्मित=सुखद। अभिषेक=स्वागत। असीम=परमात्मा। लघुसीमा=आत्मा। निर्वाण=मोक्ष।

मैं अनन्त..........................आंसू से राते।

व्याख्या—मैं इस अन्तहीन पथ (आकाश) में अपने प्रियतम के सम्बन्ध में जिन सुखद सपनों अथवा कल्पनाओ को लिखती (लिपिबद्ध करती) हूँ वे सदैव अमिट रहेगी। अर्थात् मैं इस आकाश मार्ग में अपने भावी प्रियतम-समागम सम्बन्धी जो स्वप्न देखती हूँ वे सदैव अपरिवर्तित रहेगे और ये रातें जो उनके विरह से मुझे बहुत सताती है, अपने आँसुओ से उन सुख स्वप्नों को कभी धो न सकेगी अथवा विस्मृत नही कर सकेगी (भाव यह है कि कवयित्री की प्रेम-भावना को समय और परिस्थिति परिवर्तित नही कर सकती)।

उड़ उड़..........................पीड़ा की रेख।

मेरा प्रेम निरन्तर रहने के साथ-साथ व्यापक भी रहेगा। वह पृथ्वी के कण-कण में व्याप्त रहेगा। इसीलिए पृथ्वी से जो धूल उड़ कर आकाश मे मेघों का अभिषेक करेगी उसमें भी मेरे प्रेम की पीर देखने को मिलेगी। बात यह है कि जब पृथ्वी के कण-कण में मेरी प्रेम-पीर भरी हुई है तो आकाशगामी धूल के अंचल में भी मेरी पीड़ा का रहना स्वाभाविक है।

तारों में..................मँडरायेंगी अभिलाषायें।

अपनी प्रेम-पीडा की गहनता और व्यापकता के कारण मुझे प्रिय-प्राप्ति के लिए अधिक उत्साह प्राप्त हो रहा है। फलतः मैं प्रिय की प्राप्ति के लिए और भी अधिक प्रयत्न करूंगी। तारागण के रूप में मैं असंख्य आंखों को धारण करके प्रिय को पाने का प्रयास करूंगी। तदनन्तर मेरे मन मे प्रिय की प्राप्ति की अभिलाषाये इतनी अधिक होंगी जिनकी कोई सीमा न होगी और वे असीम आकाश मे सर्वत्र व्याप्त हो जायेंगी (तात्पर्य यह है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए कवयित्री का प्रयत्न अथक और अभिलाषायें अनन्त होगी)।

वीणा होगी मूक..................सौ-सौ निर्वाण।

मेरी शरीर रूपी वीणा मूक हो जायेगी और जिस आत्मा के रहने से यह शरीर रूपी वीणा वजती है वह अन्तर्धान हो जाएगा। (वीणा और बजाने वाले का ताप्पर्य यह है कि जब तक शरीर में आत्मा है तब तक यह शरीर कार्य करता है, आत्मा के निकल जाने पर शरीर वैसे ही क्रियाहीन हो जाता है जैसे वजाने वाले के अभाव मे वीणा निस्पन्द हो जाती है।) कवयित्री कहती है कि मेरे शरीर से जब आत्मा निकल जायेगी तो मेरी एक ऐसी अवस्था होगी जिसमे विश्व की ओर से एकदम विस्मृति होगी। विस्मृति की यह अवस्था परम आनन्दमय होगी। सबसे बड़े सुख की कामना, जो मोक्ष की कामना होती है वह भी इस विस्मृति की अवस्था से न्यून ही रहेगी। सैकड़ों मुक्तियाँ विस्मृति की इस अवस्था के चरणो मे आकर लोटेंगी।

जब असीम..................मिटने का खेल।

विस्मृति की अवस्था को प्राप्त करने के उपरान्त असीम परमेश्वर से मेरी लघु सीमा वाली आत्मा का मेल हो जायेगा अर्थात् आत्मा परमात्मा से मिलकर तादात्म्य स्थापित कर लेगी। इस प्रकार हे देव! तब तुम यह देखोगे कि यह अमर कही जाने वाली आत्मा परमात्मा से मिलकर मानो एक प्रकार से उस रूप में अपने अस्तित्व को समाप्त कर देने से मिटने का ही खेल खेलेगी (भाव यह है कि आत्मा तो अमर कहा गया है—ईश्वर अंश जीव अविनाशी—परन्तु अद्वैतवाद के सिद्धान्तानुसार आत्मा परमात्मा से मिलकर समुद्र में बूंद की तरह एक हो जाती है। इस तरह एक प्रकार से

अमर आत्मा भी अपने रूप को असीम में विलीन करके मानो मिटने का ही कार्य करती है।)

साहित्यिक-सौन्दर्य—प्रस्तुत गीत में महादेवी जी ने रहस्यवादी साधना-पद्धति से प्रभावित एवं अनुप्राणित होकर अपने भाव-सुमन-सौरभ की अभिव्यक्ति की है। छायावादी कवियों में महादेवी जी ही प्रमुखतः रहस्यवाद के भीतर रही हैं। आचार्य शुक्ल लिखते है—'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव-केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएं छूट-छूट कर झलक मारती रहती हैं।' महादेवी जी के काव्य में रहस्यवादी तत्वों का अन्वेपण करने से पूर्व उनके रहस्यवाद-विषयक विचारों को समझ लेना आवश्यक है। वह छायावाद को रहस्यवाद से सहज सम्बद्ध मानती है और रहस्यवादी काव्यमें विशिष्ट रागात्मकता और गीतिकाव्य की नवीन रचना-प्रणालियों की अवस्थिति मानती हैं। यही कारण है कि उनके अधिकांश सभी रहस्यवादी गीतो में कल्पना, भावना और चिंतन के साथ-साथ विशिष्ट रागात्मकता और कला-संयोजन की कुशलता के दर्शन होते है। प्रस्तुत रहस्यवादी गीत में कवयित्री की ईश्वर के प्रति गहन विरह-वेदना की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है। भौतिक आकर्षणों के परित्याग अथवा आत्म-विस्मृति को मुक्ति से भी बढकर स्थान दिया गया है। कल्पना की व्यापकता और मोहकता प्रयाता को सहज आकृष्ट कर लेती है।

गीत ७

प्रसंग—कवयित्री को विरह-वेदना प्रिय है। अपनी इस स्थिति में वह अपने को किसी से हीन नही समझती। वह दुख को ही सुख माने हुए हैं। प्राकृतिक वस्तुएं और साँसारिक वैभव आदि सबसे उन्हें अपनी पीड़ा ही अधिक प्रिय है क्योंकि वह भी प्रिय के समान ही अच्छी लगने वाली है। (इस गीत से उन्होंने अपने सूनेपन की महत्ता प्रतिपादित की है।)

शब्दार्थ—रजनी=रात्रि। श्रम कन=पसीने की बूंदें, ओस की बूदें। दीपावलियां=तारों की पंक्तियां। मादक=नशीली, मद भरी हुई। व्रीडा=लज्जा। मरु=सूखा, रेगिस्तान।

छाया की··························फुलझड़ियां।

व्याख्या—रात्रि में प्रकृति का रमणीय वातावरण होता है। बादल मतवाले की भांति विचरण करते हैं। फलतः कभी तो चन्द्रमा आदि को आच्छा-

दित करके अंधेरा-सा हो जाता है और कभी उजाला। इस प्रकार बादल मानो मतवाले होकर आंख-मिचौनी का खेल खेलते हैं। रात्रि मे ओस की बूंदें भी पडती है मानो मेघों के इस खेल में रात्रि भी भाग लेती है और इसी कारण उसे खेलने मे परिश्रम करने से पसीने आ जाते हैं। यह ओस उसके कपोलों पर ढुलकती हुई पसीने की बूंदें ही है।

रात्रि मे शीतलता के कारण पुष्प विकसित हो रहे हैं मानो वे अपनी विकास रूपी मीठी चितवन से संसार को देख रहे हैं। आकाश में असंख्य तारागण चमकते है। उनकी पक्तियाँ आकाश में एक दीपावली का सा दृश्य उपस्थित करती है। सन्ध्या के समय पीला-पीला वातावरण होता है फिर आकाश में चन्द्रमा और नक्षत्रों की कान्ति फैलती है। सो सन्ध्या के पीले मुख पर चन्द्र आदि का प्रकाश ऐसा लगता है मानो उस पीले मुख पर फुलझडियो के प्रकाश की आभा पड़ रही हो।

विधु को......................प्राणों का महगापन।

आकाश मे चन्द्रमा निकला हुआ है। वह ऐसा लगता है मानो चांदी की एक श्वेत थाली हो। यत्र-तत्र पुष्प सुगन्धि व्याप्त हो रही है सो मानो वह चन्द्रमा रूपी थाली ही सुगन्धि से भरी हुई है। वह बड़ी मादक सुगन्धि है। चन्द्रमा की उज्ज्वलता के आगे रात्रि का मानो अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया है। उजियाली रातें चन्द्रमा की उस थाली में मिसरी की भांति ही ऐसे घुल-मिल गई है।

कवयित्री कहती है कि प्रकृति का उपर्युक्त वैभव मुझे देने के लिए जिस समय तुम मेरे पास आओगे किन्तु जब मैं उस वैभव के भुलावे मे न आकर उसका तिरस्कार कर दूंगी और तुम्हें अपना वह धन लेकर भिक्षुक की भाँति निराश लौट जाना पड़ेगा उस दिन तुम यह समझ सकोगे कि मेरे प्राणों का वास्तविक मूल्य क्या (कितना अधिक) है (प्रकृति का उपर्युक्त वैभव मेरे प्राणों के सम्मुख मूल्यहीन एवं तुच्छ है।

क्यों आज ......................दीपक सा मन।

हे प्रियतम, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे आप मुझे मरकत मणियों से युक्त सिंहासन देना चाहते है (अर्थात् मेरी वेदना से प्रभावित होकर मुझे साँसारिक वैभव प्रदान करना चाहते है) किन्तु मुझे इस वैभव-साम्राज्य की किञ्चित मात्र भी आकांक्षा नहीं है। मेरे हृदय रूपी मरुस्थल मे चमकता

सिकता कन जो वेदना के रूप में वर्तमान है वही मेरे लिए श्रेयस्कर है (अर्थात् सांसारिक वैभव आदि के स्थान पर मुझे आपके कारण प्राप्य हुई विरह-वेदना ही अधिक अभीप्सित है )।

(अपने लिए सांसारिक और प्राकृतिक वातावरणों की अनावश्यकता और उनकी न्यूनता बतलाते हुए वह कहती हैं कि) इन सभी वस्तुओं का प्रकाश नश्वर होता है। स्नेह तो क्षणिक है, आज है कल नही, जैसे नक्षत्र मण्डल बड़ा प्रकाशमान होता है पर फिर बुझ जाता है। किन्तु इनके स्थान पर मेरा मन रूपी दीपक श्रेष्ठतर है। वह लगातार ही आपकी स्मृति में जलता रहता है। अतः जब मुझे आपकी स्मृति बनाये रखने वाला मन प्राप्त है तब मेरे लिए नश्वर वस्तुओं के प्रति भला क्या आकर्षण रह जाता है (अर्थात् तनिक भी आकर्षण नहीं है)।

जिसकी विशाल......................पाया गिन ?

दुख का साम्राज्य सर्वत्र फैला है। दुख के विशाल प्रसार के आगे संसार किंकर्त्तव्य-विमूढ हुआ रहता है। अतः दुःख के आने पर वह एक बच्चे की भांति निरुपाय होकर उस दुख को सहन करता है। किन्तु वही दुख मेरे लिए कुछ दूसरे प्रकार का है। मेरी आंखों में दुख के कारण जो आंसू आते हैं उनमें ही वह दुख स्वयं नष्ट हो जाता है। (भाव यह है कि महादेवी वर्मा ने आंसुओं को ही सुख मान लिया है। अतः दुख से दुखी होना उनके लिए दूसरा अर्थ रखता है।)

मेरी अश्रु-प्रवाहित आंखो को देख कर संसार कह देता है कि मेरी आंखें निर्धन हैं अर्थात् किसी सांसारिक वस्तु के अभाव के कारण रो रही हैं। किन्तु क्या वह संसार अभी तक इन नेत्रों द्वारा बरसाए गए अश्रु रूपी मोतियों की गिनती कर पाया है? (भाव यह है कि मेरे नेत्रों के खजाने में अश्रु मोतियों के रूप में इतनी अधिक सम्पत्ति सुरक्षित है कि उसका सहज आकलन भी सम्भव नही। अतः इस अपरिमित ऐश्वर्य की उपस्थिति में भी इन नेत्रो को निर्धन समझने वाले संसार की बुद्धि के सम्बन्ध में भला क्या धारणा बनायी जाय ?)

मेरी लघुता ... ..... .. .....असीम सूनापन।

साधारणतः संसार ने इसे मेरी लघुता ही माना है कि मैं प्रतिकूल परिस्थिति के कारण रो रही हूं। यही सबका एक मत होने से दिव्यलोक में रहने

वाले मेरे प्रियतम भी प्रभावित हुए और उन्हे भी मेरे इतना लघु होने पर लज्जा का अनुभव हुआ। परन्तु मैं उनसे पूछना चाहती हूँ कि क्या उनके प्राण इतने सबल हैं कि वे उस पीडा को अपने यहाँ स्थान दे सके जिसको मेरे प्राण सदैव ही सहन करते रहते हे ?

मै सदैव प्रिय के प्रेम की भिक्षा माँगती रहती हूँ। मेरा जीवन इस प्रकार एक भिक्षुक जैसा ही है जो सदैव सर्वत्र अभीष्ट की कामना करता रहता है। किन्तु यदि मुझे भिक्षुक की अभीष्ट भिक्षा की भांति प्रिय के प्रेम की भिक्षा मिल गई तो मेरी क्षुद्रता जाती रहेगी क्योंकि प्रिय को प्राप्त करके तो मै तद्वत तद्रूप हो जाऊंगी। मेरे प्रयास का यह भिक्षुक जीवन उनसे किसी प्रकार भी छोटा नहीं है। एक ओर प्रिय परमेश्वर के यहाँ करुणा का सागर है, वे असीम करुणाकर हे तो दूसरी ओर मेरे हृदय मे भी पीड़ा का असीम समुद्र है। दोनो मे अनन्तता का भाव समान रूप से विद्यमान है, फिर इनमे से एक को लघु और दूसरे को महान मानना सर्वथा असगत एव अनुचित है।

विशेष—१. कवयित्री ने इस कविता मे अपना अलोक सामान्य लघुता और वेदना का चित्रण किया ह। उन्हे अपनी पीड़ा को सहन करने की शक्ति पर विश्वास है और वह यह भी जानती है कि इस पीड़ा को सहन करने की शक्ति किसी मे नही है। इसी से वह अपने प्रिय को भी चुनौती देती हैं।

२. प्रारम्भ के छन्दो मे प्रकृति का सुन्दर कल्पनाओं से युक्त चित्रण किया गया है। प्रकृति के विविध स्वरूपो के वर्णन मे आँखों के सामने उनका चित्र-सा उपस्थित हो जाता है।

३. रहस्यवादी विचारधारा से युक्त प्रकृति-चित्रण इस कविता की अन्य विशेषता है।

## गीत ८

**प्रसंग**—इस गीत में कवयित्री जी ने प्रिय प्राप्ति के मार्ग मे आने वाली विविध बाधाओं की ओर दृष्टिपात करते हुए यह बतलाया है कि इस संसार से नाना प्रकार की बाधाओ के होने के कारण कौन हमें दूसरी ओर पहुँचाएगा। ससार एक सागर के समान है, जैसे सागर को पार करने मे जल, मारुत, तरंग, भवर, जल के जीवजन्तु आदि अनेक बाधाएँ होती है वैसे ही

इस संसार सागर को प्राप्त करके ईश्वर से मिलने में भी अनेक बाधाएं उपस्थित होती है। इसी ओर कवयित्री जी का संकेत है।

शब्दार्थ—मारुत =वायु। प्रतिकूल=उल्टा, विपरीत। फेनिल =झागों वाले। उत्ताल =ऊँची। विसर्जन =त्यागना। तरी =नाव।

घोर तम········ ······ · ···देगा उस पार।

व्याख्या – संसार सागर को पार करने में आने वाली बाधाओं का वर्णन करते हुए कवयित्री जी कहती हैं कि ऐसा वातावरण है, बतलाओ कौन जीवन नैया को ससार सागर से पार लगाएगा ? चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ है। घनघोर घटाएँ घिर-घिर कर आ रही है। वायु प्रतिकूल गति से तीव्रता से प्रवाहित हो रही हैं जिससे पर्वत भी मालूम होता है कि जड़ से हिलने वाले हो रहे हैं। समुद्र बार-बार गरज कर भय उत्पन्न कर रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में कौन दूसरी ओर पहुँचाने में सहायता कर सकता है ?

तरंगें उठीं····· ··· · ···············उस पार।

पर्वत के आकार की बहुत ऊँची-ऊँची तरगे उठ रही है। उनसे हा-हाकार करने की तरह डरावना शब्द सुनाई देता है। ऊँची लहरों के ऊपर बहुत अधिक मात्रा में फेन दिखलाई देते है मानो वे लहरों के तीव्र उच्छ्वास हों। ऐसा लगता है कि वे नाव की हँसी उड़ा रहे है कि ऐसे वातावरण में नाव की क्या दशा होगी। इसी समय संसार सागर को पार करने में प्रयत्नशील व्यक्ति के हाथ से साधन रूप पतवार भी छूट गई। अब बतलाओ, उसे कौन दूसरे पार पहुँचा सकता है ?

ग्रास करने ··························उस पार ?

नाव छोटी-सी है। समुद्र में विशालकाय जल-जन्तु हैं। वे स्वच्छन्द रूप से यत्र-तत्र घूम रहे हैं। वे नाव को सहसा एक ग्रास की भाँति मुंह मे अनायास ले जाने की इच्छा से घूम रहे है। ऐसी स्थिति में आगे गहराई के कारण काले (डरावने) रंग का अपार समुद्र देख कर धैर्य का भी अन्त हो गया। सामने अनन्त उत्ताल (ऊँची) तरंगें उठ रही है। ऐसे तितीर्षु को इस परिस्थिति मे कौन पार उतार सकता है ?

बुझ गया··························उस पार ?

अब तक आकाश में नक्षत्र चमक रहे थे किन्तु अब तो नक्षत्रों का वह

प्रकाश भी विलीन (समाप्त) हो गया। मुझे नक्षत्रो के प्रकाश से कुछ अपने कार्य की सफलता की आशा थी किन्तु अब वह आश्रय भी नही रहा। अपना काला वस्त्र सजा कर रात्रि यह कहती हुई-सी प्रतीत होने लगी कि अब ऐसी स्थिति मे अपने मनोरथ रूपी फूलों को त्याग दो अर्थात् पार जाने की इच्छा अब छोड़ दो। उपर्युक्त परिस्थिति मे कवयित्री के साथ नाव लेने वाला कोई कुशल कर्णधार भी नही है। तब कौन दूसरे पार पहुँचाने मे समर्थ हो सकता है?

सुना था...... ........... . .........उस पार ?

इस ससार सागर से पार हो जाने पर एक सुनहरा (सुखप्रद) अलग स्वतन्त्र ससार है (भव-सागर से पार हुए व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति होती है) ऐसा मैंने सुना है। वहाँ के पक्षी भी बड़े सुन्दर हैं। उन्होने मृत्यु जैसी किसी वस्तु का अनुभव नहीं किया। इसलिए मृत्यु की छाया का भी नाम सुन कर वे अनहोनी बात समझ कर हँसते है वहाँ की पृथ्वी बड़े अनूठे ढग से सजी है। उस जगह कौन पहुँचा सकता है? (कवयित्री की लालसा दृष्टव्य है)

जहाँ के... ... ............... .... उस पार।

जिस स्थान के झरने शान्त होकर गान किया करते हैं (मूक गीत गाते है) और ऐसा सुना जाता है कि उससे मनुष्य को अमरता की प्राप्ति होती है, जहाँ का आकाश भी कोमल अनूठी सतत वर्तमान ध्वनि से परिपूर्ण रहता है। जिसे सुन कर सब के हृदय के समस्त प्रसुप्त उदात्त कोमल भाव जागृत हो जाते है और जो स्थान अपरिमित प्रेम से पूर्ण है ऐसे स्थान पर मुझे कौन पहुँचा देगा!

पुष्प मे .... .. ...... ............ उस पार ?

वहा के पुष्प कभी समाप्त न होने वाली मुस्कान से व्याप्त रहते है अर्थात् वहां पुष्प सदैव प्रफुल्लित रहते है, वायु के चलने से उसके त्याग का ध्वनन होता है क्योकि शीतलता और सुगन्धि वह सदैव प्रदान करती प्रवाहित होती है। सभी वस्तुएँ अलौकिक दिव्य प्रकार से विकास को प्राप्त होती है। वैसे कोमल और सुन्दर प्रकाश सर्वत्र प्रकाशित होता हुआ प्रतीत होता है। ऐसा दिव्य और सौन्दर्य की निधि स्वरूप वह संसार कहाँ पर है? उस जगह पहुँचाने में कौन मेरी सहायता कर सकता है?

सुनाई किसने ............ ..... ...... ..... .............उस पार।

ऐसी ही स्थिति में वह कौन है जिसने मन को मुग्ध कर देने वाली एक आनन्दप्रद तान कान में फूँक दी? ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई यह कह रहा है कि अपनी जीवन नौका को इस संसार सागर के मध्य में ले जाओ, वहाँ डूब जाओ। बस पार होने का यही एक मात्र उपाय है। डूब कर तुम इस संसार सागर से पार हो सकते हो (मृत्यु के उपरान्त ही इस संसार से छुटकारा मिलता है पहले नही) बस ऐसी स्थिति मे आत्म-विसर्जन (अपने आप को उस प्रवाह के समर्पित कर देना) ही कर्णधार (मल्लाह अथवा पार पहुँचाने में सहायक) सिद्ध होता है। (परमात्मा के चरणो में) सर्वस्व विसर्जन करने पर ही भव सागर के पार पहुँच जाना सम्भव है।

विशेष—१. प्रस्तुत कविता में कवयित्री जी ने ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति के मार्ग में जो असुविधाएँ और बाधाएँ आती है उनकी ओर दृष्टिपात किया है और अन्त में यह दिखला दिया है कि आत्म-त्याग द्वारा ही उस अलौकिक प्रभु के सामीप्य-सुख का लाभ हो सकता है।

२. 'दूर कितना है वह संसार' इस पक्ति से कवयित्री की वेदना, छटपटाती और उत्सुकता का पता चलता है।

३. इस गीत में प्रकृति अपने भयानक रूप में चित्रित मिलती है। महादेवी जी ने जहाँ प्रकृति का रमणीय रूप दिखलाया है वहां यह भयानक चित्र भी दृष्टव्य है।

## गीत ९

प्रसंग—प्रस्तुत कविता महादेवी वर्मा के हृदय की विशेष अनुभूति को व्यक्त करती है। उन्होंने संसार को देखा, प्रकति को देखा। उन्हें भुक्तभोगी होने के कारण सब के प्रति संवेदना और सहानुभूति प्रकट करने वाली हृदय की विशालता मिली है। अपने प्रिय के ऐसे ही संवेदनात्मक चित्र इस कविता में प्रस्तुत किये गये हैं।

शब्दार्थ—व्यथा=दु:ख, वेदना। अवसाद=दु:ख, व्यथा। शून्य=आकाश। नीरव=शान्त। अलसाई=आलस्य से भरी हुई। उन्माद=पागलपन। सिहर=काँपना। हाला=मदिरा। विषाद=दु:ख। सुभग=सुन्दर।

थकी पलकें······मेरे छोटे प्राण ।

व्याख्या—(जब कोई व्यक्ति थक कर सोता है तो उसे स्वप्न दिखलाई देते है। इधर आकाश में बादल छाये हुए है। उनके लिए कवयित्री कहती है) मानो आकाश थका हुआ है और अपनी व्यथा के कारण सो रहा है। ये बादल उस सोते हुए आकाश की पलकों मे स्वप्न की भाँति विचर रहे हैं। उन बादलों से बूंदें टपकती हैं मानो बादलों के हृदय की व्यथा चुपचाप पानी की बूंदों के रूप में टपक रही हों। ऐसे समय में, तथा जिस समय वेदना की वीणा पर आकाश शान्त राग गा रहा हो और रात्रि निश्वासो के तारों में तारागण रूपी पुष्पों को पिरो कर हार बना रही हो, हे देव! उन तारागण रूपी पुष्पों के बीच में मेरे भी इन उन्मत्त प्राणों को गूंथ देना। मेरे ये छोटे प्राण बडे हठीले हैं इन्हें उन तारागण के साथ ही गूंथ देना।

किसी जीवन························ आँसू के हार।

प्रातःकाल का वातावरण बड़ा रमणीय होता है। जिस समय ऐसे रमणीय वातावरण में मतवाला प्रातःकाल सौन्दर्य के रूप में अपने विगत जीवन की आनन्दमयी स्मृतियों को लुटा रहा हो, कली रात भर बन्द रहने के कारण अपनी अलसाई हुई आँखों को प्रातःकालीन सुषमा में खोल कर खिल रही हो और अपने रात्रि के स्वप्न की बात कह रही हो। मन्द, शीतल मलय समीर अपने वेग के उच्छ्वासो द्वारा यह प्रकट कर रहा हो कि वह अपने खोये हुए उन्माद को खोजने मे व्यस्त है और जिस समय पुष्प अपनी निहित प्यास की इच्छा को इस प्रकार व्यक्त कर रहे हों कि उन्हे ओस की बूंदो की इच्छा है उस समय हे देव! तुम उन पुष्पों को प्यास से न तडपने देना। तुम उन्हें मेरे सुकुमार आंसू पिला देना। ये मेरे आँसुओं के हार से सजे हुए है, इन्हें तुम पुष्पो को देकर उन बेचारों को सात्वना प्रदान करना, उन्हे सतुष्ट करना।

मचलने उद्गारों·················मादक राग ।

जिस समय किरणें अपने उद्गारों को व्यक्त कर रही हो, उस क्रिया में वह कभी-कभी मचल जाती हों और अपने-आप मे ही उलझ जाती हों, चचल छोटी लहरें किसी के उच्छ्वासों को पा कर काँप-कांप उठती हों, (वायु द्वारा लहरों मे कम्पन होना स्वाभाविक है) संसार शून्य में चकित सा हो कर अपने प्राणों की विगत भूल और निराशा रूपी दागों को गिन रहा हो, सूर्य अपनी सुनहरी सृष्टि का प्रसार करके अपनी उस सुषमा की प्याला

में किसी का (कमलों का) पराग पी रहा हो, उस समय हे मेरे देव ! सूर्य की उस प्याली में मेरे जीवन-भर के एकत्र किये हुए प्रेम को अनजाने में ही डाल देना। यह मेरा प्रेम मादकता से भरा है।

मत्त हो ............ ..         .. मुरझाया फूल ।

मदिरा पान से सभी मस्त हो जाते है। जिस समय समुद्र स्वप्नों की मदिरा को ढाल कर उसके पीने से मतवाला हो कर महानिद्रा में व्याप्त हो, सोते समय उसकी लहरों रूपी धड़कनों में तूफान भी अपने वेग के कारण उत्पन्न हुई ध्वनि को मिला रहा हो; जिस समय मूक छाया वृक्ष के झकोरों को अपना लुभावना मूक सदेश दे रही हो तथा जिस समय दुखी व्यक्तियो की छिपी हुई व्यथा उन्हें प्रत्येक आहट पर सुख की लालसा से "कौन ?" का प्रश्न करने को बाध्य कर देती हो अर्थात् प्रत्येक आहट में अपने अभीष्ट की प्राप्ति की कामना से सब देखते हों, हे देव ! तुम ऐसे समय पर वहाँ जा कर यह मेरा जीवन रूपी पुष्प भेट कर देना। ऐसे अवसर पर काम आने पर यह मेरा मुरझाया हुआ जीवन पुष्प अव्यक्त सौन्दर्य प्राप्त करेगा।

विशेष—१. यह कविता महादेवी वर्मा की प्रकृति के प्रति सहानुभूति की भावना को व्यक्त करती है। कवयित्री का हृदय बड़ा मार्मिक और विशाल है। उस पर सब का प्रभाव पड़ता है। प्रकृति की वस्तुओं को भी अभावग्रस्त देखकर वह अपने आप जैसे भी हो सके सुख दे कर-आत्म-संतोष प्राप्त करना चाहती है।

२. इस कविता में महादेवी वर्मा की हृद्गत वेदना की अभिव्यक्ति है। उन्हें प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में भी उसी वेदना के दर्शन होते हे। स्वानुभूत वेदना के प्रभाव को समझ कर वह किसी को उस वेदना से ग्रस्त नहीं देखना चाहती और इसीलिए अपने जीवन की सार्थकता इसी में मानती है कि उनका जीवन किसी को प्रदान करने के काम में आ जाये।

## गीत १०

प्रसंग—इस कविता में महादेवी वर्मा ने यह व्यक्त किया है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए स्थिरता और शान्ति की आवश्यकता है। जीवन की नाना इच्छा और क्रियाओं से जाज्वल्यमान स्थिति प्रिय की प्राप्ति मे बाधक है। वह तो रात्रि के अँधेरे के समान शान्त और व्यर्थ की चमक-दमक से परे

के वातावरण की सृष्टि करने पर ही प्राप्त हो सकता है।

शब्दार्थ—मुखरित=शब्दायमान, सस्वर । आवहान=बुलावा । निस्पन्द=शान्त । निर्घोष=शान्त, बिना शब्द किये । चपला=बिजली ।

जो मुखरित ········ सुला दी कम्पन ।

व्याख्या—(कवयित्री कहती है कि मैंने अपने प्रिय को प्राप्त करने के प्रयत्नमे परिवर्तन कर दिया है ) मैंने अपने दुर्बल प्राणों के उस कम्पन (धड़कन) को शान्त कर दिया है जो कि मेरे प्रिय को बुलाने के नीरव आवाहन को भी व्यक्त कर देता था (प्राणो की तड़पन से प्रिय प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा और प्रयत्न का शब्दायमान होना स्वभाविक था)।

थिरकन अपनी··· ··· ·············· आँधी ।

पहले मेरे नेत्र प्रिय के लिए बड़े उत्सुक और लालायित रहते थे। अतः वह कभी भी स्थिर नही रहते थे, सदैव चंचल बने रहते थे। परन्तु अब अपने नेत्रों की आकुल और चंचल पुतलियों के कम्पन को मैंने अपनी भारी पलकों में बाँध दिया है। जो आँखें प्रिय की पीड़ा में आँधी के समान उत्पात मचाने की भाँति वेग के साथ आँसुओ की वर्षा किया करती थी अब वह आँखे भी शान्त पड़ी है।

जिसके निष्फल ···························चाहें ।

मेरा जीवन एक दीपक के समान है। दीपक जल-जल कर अपने प्रिय की राह देखता है। मेरा जीवन-दीप भी प्रिय के लिए जल कर राह देखता रहा। दीपक जल-जल कर अपने को समाप्त कर देता है और उसका जलना व्यर्थ ही रहता है। मेरा जीवन भी प्रिय के लिए जलता रहा और अब मुझे भी प्रिय की प्राप्ति न होने पर जीवन की सार्थकता प्रतीत नही होती।

निर्घोष घटाओ ······ · ············बेहोशी ।

घटनाओं का वेग जब कम होता है तो बिजली भी नही चमकती। शान्त घटाओ में बिजली अपनी तड़पन को छिपाये रहती है। (मैंने भी अपने हृदय को शान्त कर लिया है इसलिए ईश्वर के लिए जो विरह व्यथा थी वह भी शान्त हो गई है।) झन्झा के मतवाले वेग के समान प्रिय की प्राप्ति का जो मेरा पागलपन था वह भी धीरे-धीरे शान्त होता जा रहा है।

करुणमय को··························बुझ जाना ।

मेरे करुणामय प्रियतम को, ऐसा प्रतीत होता है कि अन्धकार के आवरण

के पीछे से आना (प्रकट होना) ही अच्छा लगता है। इसलिए हे आकाश के नक्षत्रों की पंक्तियो, तुम पल भर के लिए बुझ जाओ जिससे कि प्रकाश विहीन होकर अन्धकार का साम्राज्य हो जाये और फिर मेरा प्रिय मेरे पास आ जाए।' (अर्थात् प्रिय का आना तभी सम्भव है जब मन की व्यर्थ की हलचल और अशान्ति की समाप्ति हो। इसलिए कवयित्री अपने हृदय के उन सभी भावों को शान्त रखना चाहती है जो अब तक प्रिय के लिए आवेग पूर्ण कोलाहल मचा रहे थे। कवयित्री को पूर्ण विश्वास है कि उस शान्तिपूर्ण स्थिति में उसे अपने प्रियतम की प्राप्ति अवश्य हो सकेगी)।

विशेष—१. इस कविता मे महादेवी वर्मा का दृष्टिकोण बदल गया है। वह अपने हृदय को शान्त करके दूसरे वातावरण की सृष्टि करती हैं।
२. कवयित्री ने अपने रहस्यवादी विचारों का आवेग समाप्त करके चिन्तन का आश्रय लिया है। अपने मन को तदनुकूल बनाने पर ही प्रिय की प्राप्ति संभव है—ऐसा उनका विश्वास हो चला है।

## गीत ११

प्रसंग—प्रस्तुत कविता में महादेवी जी ने बचपन का चित्र खींचा है। बचपन से उन्हें बड़ा प्यार है। उसकी विशेषता प्रतिपादित करते हुए उसकी दिव्यता, शान्ति और सरलता का कथन किया गया है। किन्तु यह ससार बड़ा मायावी है। बचपन यौवन में परिवर्तित होता है। उसकी वह विशेषता नहीं रहती। अन्त में कवयित्री यह कहती हैं कि पुष्प कांटों में ही विकसित होता है इसलिए जीवन मे सब अवस्थाओं और परिवर्तनों को अपरिहार्य समझ कर सुखपूर्वक सहन करना चाहिए।

शब्दार्थ—देव वीणा=ईश्वर की वीणा। क्षणभंगुर=क्षण-भर में नष्ट होने वाला। उपहार=भेंट। उपवन=बाग। क्षीरनिधि=क्षीर-सागर। शुभ्र=सफेद। निर्मेघ=मेघों से रहित। सुभंग=सुन्दर। अलक्षित=बिना दिखलाई दिये। सम्मोहन=लुभाने वाली। आस्वादन=स्वाद लेना, पीना। मायावी=माया वाला। संजीवन=अमृत। अन्तर्धान=छिपना। ऋतुराज=वसन्त। शून्य=खाली। उन्मीलन=खोलना।

स्वर्ग का·········· ·····················मेरा जीवन।

व्याख्या—अपने प्रिय बचपन का वर्णन करते हुए महादेवी जी कहती हैं कि मेरा बचपन स्वर्ग के शान्त उच्छ्वास की भांति था। वह ईश्वर की वाणी

शून्य से..............................छोटे जीवन ।

(मनुष्य के क्षणिक जीवन को उन्नत बनाने के उपायों की ओर संकेत करते हुए महादेवी जी कहती है कि मानव जीवन शून्य की भांति गंभीर हो जाना चाहिए। जीवन त्याग की ऐसी वीणा हो जिसमें से स्वच्छन्द मुक्त रीति से त्याग की ध्वनि निकले। (अर्थात् मानव जीवन को गम्भीर और त्याग से भरा हुआ होना चाहिए)। यह जीवन प्रेम का ऐसा छोटा सा प्याला हो जिसमे कि सारा संसार डुवा दिया जाय अर्थात् मानव हृदय के प्रेम का विस्तार प्रसार सम्पूर्ण विश्व तक हो जाय। मानव की प्रेम की सुगन्धि के आगे नित्य प्रति प्रसन्नता के साथ परिमल युक्त पुष्प भी अपनी हार मान कर लज्जित हो जाएँ। हे मेरे छोटे जीवन, तुम्हें इस प्रकार का वनना चाहिए।

सखे !..............................प्यारे जीवन ।

(अपने प्यारे जीवन को 'सखा' शब्द से सम्बोधित करते हुए महादेवी जी कहती है कि) यह संसार तो एक ऐसी जगह है जहाँ माया का साम्राज्य है। मेरा और तुम्हारा साथ थोड़े समय का ही है अर्थात् यह कौन जान सकता है कि किसकी जीवन लीला कब समाप्त हो जाय। हे बन्धु ! यहां तो फूलों में सुन्दर रंग काँटो के मध्य विकसित होने पर ही दिखलाई देता है। यदि काँटे है तो फूल है, यदि काँटे ही नही तो फूल ही कहाँ से आयेगा ? इसी तरह संसार-क्रम भी है। क्षणिक और नश्वर जीवन के आधार पर ही तो सृष्टि का क्रम चलता है। इसलिए इस स्थिति मे रह कर कांटों के पुष्प की भाँति तुम को भी विच्छेद सहन करना चाहिए (अपने जीवन की विभीषिकाओं को सहन करना चाहिए यह भाव है)। अतः मेरे प्यारे जीवन, तुम्हे यह नही भूलना चाहिए।

विशेष—१. इस कविता में महादेवी जी ने अपने शैशव काल के प्रति अनुराग और मोह प्रदर्शित किया है किन्तु शैशव का, परिवर्तन क्रम के अनुसार, परिवर्तित होना अपरिहार्य समझ कर वह जीवन की परिस्थितियों को सहन करके अक्षुण्ण रहने का ही मत अभिव्यक्त करती है। कविता सरल है और भाव सुन्दर है।

२. महादेवी जी ने माया की ओर सकेत करके उसे ही सब विपत्तियों और छलनाओ का मूल कारण बतलाया है। इसके लिए गम्भीरता

और त्याग यदि जीवन मे लाया जाय तो मनुष्य की उन्नति हो सकती है, ऐसा उनका मत है।

## गीत १२

प्रसग—इस कविता में महादेवी जी ने पहले प्रकृति के विविध व्यापारों का वर्णन किया है। प्राकृतिक दृश्यों से उनको ईश्वर प्राप्ति की ओर प्रयत्न करने को प्रेरणा मिली है। इसके पश्चात् उन्होने अपने अनुभव को अभिव्यक्त किया है। कविता रहस्यवादी विचारों से परिपूर्ण है। प्रकृति की सुषमा में उन्हे अपने प्रियतम की छवि दिखलाई देती है। तभी वह अपने प्रिय परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने लगती है। कविता मे मिलनोत्सुकता है।

शब्दार्थ—अलकें=केश, वेणी। पंकज=कमल। रोदन=रोना। अवगुण्ठन=घूँघट। विधु=चन्द्रमा। बालारुण=प्रभातकालीन सूर्य। अविराम=लगातार। मधुमय=मीठी, आनन्द देने वाली। जर्जर=फटे-पुराने, जीर्ण-शीर्ण। विस्मृति=भूल। मनुहार=विनय।

जिस दिन ........................ ......पलकें।

व्याख्या—(प्रकृति के किन व्यापारों से कब महादेवी जी को ईश्वरानुभूति हुई इसका उल्लेख करते हुए वह कहती हैं) जिस दिन (मौन शान्त) तारों से किरणों की अलके यह कहने लगी कि तुम सो जाओ क्योंकि तुम्हारी कोमल पलकें नींद के कारण अलसाई हुई हैं (भाव यह है कि तारों के अस्त होने और सूर्य के उदय होने के समय कवयित्री को ईश्वरानुभूति हुई। इसके अतिरिक्त और अनुभूति स्थल नीचे की पंक्ति में दिए गए हैं)—

जब इन ........ ........ .. ......... भरी सीं।

जब विकसित होते हुए इन फूलों पर पराग की पहली-पहली ही बूंदें बिखरी थीं अर्थात् जब पुष्पों में पराग का प्रादुर्भाव हुआ था, तथा सूर्य ने कमल की, विनय करती हुई आँखो को देखकर उसके विकास के लिए प्रथम दर्शन दिए थे—

दीपकमय कर............ .......... रोदन।

जब प्रेम में मस्त हुए शलभ ने अपने जीवन को दीपक पर न्यौछावर करके अपने को उसकी लौ में विलीन कर दिया था (प्रियतम के साथ तादात्मय स्थापित कर लिया था) और इसी तरह जिस समय बालक मेघों (छोटे-छोटे

किसी भी रूप मे प्रिय आए, उसका सामीप्य लाभ करने को प्रस्तुत हैं। अब अपने जीवन की जागृति को सम्बोधित करते हुए कहती है कि) हे जागृति ! तुम इस बात को याद रखना, भूल न जाना कि यदि मेरा प्रिय स्वप्न बन कर आए तो तुम सदैव के लिए निद्रा की अवस्था धारण कर लेना (स्वप्न सोने की अवस्था मे ही दिखलाई देते हैं इसलिए मैं स्वप्न रूप म आए हुए प्रिय से सदैव के लिए साक्षात्कार प्राप्त कर सकूंगी।)।

विशेष—इस कविता मे महादेवी जी ने अपने रहस्यवादी विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए यह दिखलाया है कि अपने प्रियतम की छवि का आभास प्रकृति के अन्दर सदैव वर्तमान है। उसी से उन्हे प्रेरणा मिलती है और तदुपरान्त एक रहस्यवादी की अनन्त प्रतीक्षा के पश्चात् प्रियतम से मिलने की कैसी मिलनोत्सुकता हो सकती है, ऐसे भाव व्यक्त किए है।

## गीत १३

प्रसंग—महादेवी जी ने प्रकृति के विभिन्न व्यापारो में प्रिय छवि के दर्शन किए है। प्रकृति वर्णन मे अधिकाँश मे उनकी रहस्य भावना भरी हुई है। प्रस्तुत कविता उनकी स्वतन्त्र रूप मे एक पुष्प के ऊपर कही गई भावधारा है।

शब्दार्थ—मधुरिमा=माधुर्य। सुषमा=शोभा। अजान=न जानने वाले, न जानने योग्य। स्निग्ध=चिकनी। मकरन्द=पराग। आरक्त=लाल। मँजु=सुन्दर। अभिनव=अनोखा, नवीन। सम्मोहन=मोहित करने वाला। सुकुमार=कोमल।

मधुरिमा के ............................कोमल प्राण।

व्याख्या—(महादेवी जी पुष्प को 'कोमल प्राण' कह कर सम्बोधित करते हुए कहती है कि) तुम माधुर्य और मधु के अवतार सदृश हो। तुम्हारी शोभा अमृत के समान है। उससे तुम अत्यन्त शोभाशाली बने हुए हो। तुम्हारे ऊपर पड़ी हुई ओस की बूँदें यह प्रदर्शित करती हैं कि तुम आँसुओ के कारण सहम कर चुपचाप खड़े हो। तुम बिलकुल चुप और शान्त हो। तुम्हारी स्तब्धता के विषय मे वैसे ही कुछ नही जाना जा सकता जैसे तारो के विषय में कुछ नही जाना जा सकता। तुम अपने विकास के रूप में सदैव मुसकराते रहते हो। पता नही, हे कोमल प्राण वाले पुष्प ! तुमने यह मुसकराने का अपना स्वभाव किस प्रकार अथवा कहाँ से प्राप्त किया है ?

स्निग्ध रजनी......................मोहक सन्देश।

तुमने स्नेह युक्त-चाँदनी से युक्त रात्रि से अपनी हँसी ली है—ऐसा लगता है। तुम्हारे सारे अवयव रूप से भरे हुए हैं अर्थात् सर्वत्र ही तुम रूपवान हो। तुमने नवीन पल्लवों का घूंघट डाल रखा है। तुम्हारा किसी से स्पर्श न किया गया अनोखा पराग हैं। हे स्वर्ग के समान मोहक सन्देश देने वाले! तुमने यह देश कैसे ढूँढ़ लिया है (कहने का तात्पर्य यह है कि तुम अपनी शोभा और गुणों से स्वर्गीय वस्तु लगते हो, अलौकिक हो। फिर तुम इस संसार में क्यों आ गए हो)?

रजत किरणों......................मुस्काते फूल।

हे पुष्प! तुम्हारे नेत्र बड़े साफ है। ऐसा लगता है तुमने चाँदी जैसी उज्ज्वल किरणों से अपने नेत्र धो कर साफ कर लिए है। तुमने सुगन्धि का अनोखा बोझ उठा रखा है। तुम्हारे कोष से मधु छलकता पड़ता है अर्थात् तुम मधु से पूर्ण हो। तुम इस पार अकेले ही चले आए हो। हे सुन्दर छोटे मुस्कराते हुए फूल! तुम्हारा इधर आना देख कर ऐसा लगता है कि तुम रास्ता भूल कर इधर आ गए हो अन्यथा इधर आने की तुम्हें क्या आवश्यकता थी?

उषा के छू......................की बाट।

(उषा-काल में सर्वत्र लालिमा छा जाती है और उसी समय फूलों में भी यौवन आता है। कवयित्री जी कहती है कि) उषा के लाल-लाल रंग के कपोलों का स्पर्श करके हे पुष्प! तुम्हारा उन्माद किलकारी मारने लगता है (तुम उषा काल में ही प्रसन्न हो कर मद से भरते हो)। प्रभात होने पर जब तारा-गण नष्ट-प्रभ होते है तो तुम उनके वैभव के परिवर्तन की स्थिति को देख कर दुखी होते हो। पता नहीं तुम्हें उस समय क्या याद आ जाता है जिसका तुम पर इतना प्रभाव पड़ता है। तुम्हारी सुगन्धि इतनी अधिक है मानो सुगन्धि का एक बाजार लगा हुआ हो। यह तो बतलाओ, तुम्हारी इतनी अधिक सुगन्धि किस निर्मोही प्रिय की बाट देख रही है (यदि उसे तुमसे मोह होता तो शीघ्र आता पर किसी को न आया देख कर पता चलता है कि तुम्हारी सुगन्धि का अभीष्ट निर्मोही है)।

चाँदनी का......................कारागार।

चाँदनी की शोभा तुम्हारे ऊपर पड़ती है। तुम अधखुली आंखों से उसकी

ओर निहारते हो। ऐसा लगता है कि तुम अपनी आखों के किनारो से चांदनी की सारी शोभा को समेट कर अपने में धारण कर लेते हो। तुम मधु सौरभ और विकास से युक्त पूर्ण यौवनत्व को प्राप्त हो कर फिर उसे लुटा देते हो अर्थात् तुम्हारी सुगन्धि, मधु और विकास अपने यौवन को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। उस समय ऐसा लगता है कि तुम अपने विगत युगों की प्रेममयी स्थिति का स्मरण करते रहते हो किन्तु तुम्हें यह पता नहीं कि तुम्हारा यह नया-नया प्यार जिसको तुम स्मरण कर रहे हो किसी दिन तुमको कष्ट देने वाले कारागार के समान सिद्ध होगा ( अर्थात् तुम्हे इस प्यार के स्थान पर वेदना जन्य पीडा का अनुभव करके एक कारागार में रहने वाले के समान यातना सहन करनी पड़ेगी )।

कौन वह·····························के ससार।

( संगीत में आकर्षण की प्रबल शक्ति होती है। मृग तो नाद पर अपने शरीर को ही न्योछावर कर देता है। कवयित्री कहती है कि) हे पुष्प ! ऐसा लगता है कि तुम भी इस संसार में इसलिए आए हो कि कोई बड़ा मधुर आकर्षक राग तुमने सुना है जो तुमको अपने स्वाभाविक आकर्षण से इधर खीच लाया है। इसलिए बतलाइए वह ऐसा मोहित करने वाला राग कौन-सा है ? अथवा तुम्हारी रचना करने वाला तुम्हारा कर्तार बड़ा निष्ठुर है जिसने तुमको बना कर इस कष्टमय देश में भेज दिया है। इसलिए बतलाओ तुम्हारा वह निष्ठुर कर्तार कौन है ? अब इस जग में आकर तुमको हँस-खेलकर कांटो के हार पहनने होगे। यह माना कि तुम बड़ी कोमलता और भोलेपन से युक्त हो परन्तु यह तो इस ससार का नियम है कि सभी को कांटो को (दुख को) प्रसन्नता के साथ ही सहन करना पड़ता है और दूसरा न कोई मार्ग है न साधन (फूल को तो कांटों में ही रहना है। कांटो से अलग रहना कहाँ संभव है ?)

विशेष—इस कविता में प्रकृति का आलम्बन रूप मे वर्णन किया गया है। कल्पना और अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति के कारण यह कविता श्रेष्ठ है। महादेवी की प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताओ में से यह प्रमुख है क्योंकि इसमें रहस्यवाद का मेल न करके शुद्ध प्रकृति-वर्णन मिलता है। भाव और भाषा की दृष्टि से भी यह कविता उत्तम है।

## गीत १४

प्रसंग—यहाँ महादेवी जी की अनुभूति की निराली अभिव्यक्ति देखने में आती हैं। उन्हें वेदना भी उतनी ही प्रिय है जितना कि उनका प्रिय—"प्रिय से कम मादक पीर नहीं।" इसलिए उन्होंने सदैव वेदना में सुख का अनुभव करने की बात कही है। प्रस्तुत कविता में भी उन्होंने स्वर्गीय एवं शाश्वत रहने वाली वस्तुओं की अपेक्षा अपनी वेदना को ही प्रिय समझ कर अपने प्रिय से उसी की याचना की है। इस कविता में देव लोक की मर्त्य-लोक से तुलना की गयी है।

शब्दार्थ—अनन्त=जिसका कभी अन्त न हो। ऋतुराज=वसन्त। अवसाद=अन्त। बेसुध=बेहोश, आत्म विस्मृत।

वे मुस्काते ························पीड़ा सोती।

व्याख्या—वहाँ पर (देव-लोक में) ऐसे पुष्प विकसित नहीं होते जिनको कि मुरझाना अच्छा लगता हो अर्थात् देव-लोक में पुष्प सदैव विकसित रहते हैं। वहाँ के तारों के दीपक ऐसे नहीं है जिनको बुझ जाना अच्छा लगता हो। वहां सदैव तारों का प्रकाश होता रहता है। वहाँ नीलम की-सी कान्ति वाले बादल ऐसे नही है जो घुलकर वर्षा के रूप में अपने को समाप्त कर देने की इच्छा रखते हों। वहां ऋतुराज (वसन्त) भी ऐसा होता है जिसने कभी यह देखा ही नहीं कि जाया किस मार्ग से जाता है। अर्थात् सदैव वसन्त श्री का प्रसार रहता है। वहां रहने वाले व्यक्ति कभी दुख से रोते नही हैं इसलिए उनके नेत्र आंसुओं से शून्य रहते है। उनके नेत्रों में आँसू मोती बनकर कभी नहीं आते। वहां व्यक्ति को वेदना के कभी दर्शन नही होते इसलिए उनके प्राणों की शैया पर अपने आपको विस्मृत करके कभी भी पीड़ा आत्मविस्मृति की अवस्था में नही होती। वे पीड़ा से रहित रहते हैं।

ऐसा तेरा··· ···················मिटने का स्वाद।

कवयित्री ईश्वर से कहती है कि उपर्युक्त प्रकार से वर्णित ऐसा है तुम्हारा देश, वह देव-लोक। उस लोक में वेदना नहीं है और उस लोक में किसी वस्तु की समाप्ति भी नही है। सभी शाश्वत और चिरन्तन है, क्योंकि उन लोगों को कभी दुःख, वेदना और वियोग सहन करना नहीं पड़ता इसलिए वे लोग यह नहीं जानते कि प्रिय-पीड़ा में कैसे जला जाता है? और उस

लोक के वासी जलना जान ही कहाँ से सकते है ? जलना तो वही जान सकता है जिसने मिट कर देखा हो। मिटने में क्या स्वाद है यह तो मिटने वाला ही जानता है। देव-लोक मे कभी कुछ मिटता नही। इसलिए उन्होंने जलने का अनुभव नही किया (क्योंकि महादेवी को तो पीड़ा मे जलने में ही आनन्द आता है इसलिए उनको वह अमर-लोक नही भाता।)

क्या अमरों..............................का अधिकार।

हे प्रभु, यदि आप करुणा करके मुझे उपहार के रूप मे उस अमर-लोक में निवास करने की स्थिति प्रदान करेगे तो मुझे क्या मिला ? मैं उस लोक मे रहना नहीं चाहती क्योंकि मुझे तो वेदना प्रिय है। इसलिए हे देव! आप मुझे करुणा करके वह लोक न दीजिए। मुझे तो इस मर्त्य-लोक में ही रहने दीजिए। यहाँ वेदना है। वेदना पर मेरा अधिकार है। अतः अनश्वरता के उस लोक से मुझे यह नश्वर लोक ही अधिक प्रिय है। मेरा यही पर अधिकार रहे और मैं वेदना मे मरती रहूँ यही मेरी कामना है।

विशेष—१. महादेवी जी का अपना दृष्टिकोण इस कविता में अभिव्यक्त हुआ है। निरन्तर एक-सी स्थिति उन्हें प्रिय नही क्योंकि एक-सी स्थिति से अनिच्छा उत्पन्न होती है। इसीलिए वह एक-सी स्थिति वाले अमर लोक में जाने को प्रस्तुत नहीं। वेदना-प्रियता इस गीत का प्राण है।

२. इस कविता मे अमर-लोक की स्थिति का चित्रण किया गया है। उसकी चिरन्तनता को प्रकृति के कुछ उपादानों से जैसे पुष्प, नक्षत्र, मेघ, वसन्त आदि, को लेकर अपने भाव व्यक्त किये गये हैं।

## गीत १५

प्रसग—इस गीत मे महादेवी वर्मा ने प्रभातकाल का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। प्रातकालीन सुषमा को सुन्दर कल्पना और सुन्दर भावों के साथ चित्रित करके, अन्त मे उसकी समानता अपने प्रिय की सुध से करके ईश्वर की सृष्टि-रचना-कौशल का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—अरुण = सूर्य। मधु = माधुर्य, पराग। कनक रश्मियाँ = सुनहरी किरणें। अथाह = बहुत अधिक, अपार। प्रवाल = मूँगा। कुहर म्लान = कुहरे के कारण धुँधली। स्वर्ण प्रात = सुनहरी प्रात काल। तिमिर-गात = अन्धकार के समान काले शरीर। सौरभ = सुगन्धि।

चुभते ही ........................... कुहर म्लान

व्याख्या—(यदि किसी व्यक्ति के शरीर में वाण चुभा दिया जाय तो निस्सन्देह रक्त प्रवाहित होने लगता है। यहां कवयित्री जी ने सूर्य की किरणों को वाण माना है, जिसके प्रकृति के अन्य पदार्थों में लगते ही रक्त की धारा के समान स्वर फूट निकलते है। सूर्य के निकलने पर सारा शान्तिमय वातावरण मुखरित और स्वरित हो जाता है। इसलिये वह सूर्य को सम्बोधित करते हुए कहती है कि) हे सूर्य ! तेरे किरण रूपी बाण के चुभते ही कण-कण से माधुर्य से भरे हुए झरने के समान बड़े अच्छे लगने वाले सजल गाने प्रकृति के विविध पदार्थों से निकलने लगते हैं। सूर्य की किरणें सुनहरी होती हैं। इन सुनहरी किरणों में अन्धकार का अथाह समुद्र जाग कर हिलोरें लेने लगता है (अर्थात् अन्धकार अब अपने को बदल कर सुनहरापन धारण कर लेता है । प्रातःकाल होने पर जो पक्षी तरह-तरह के शब्दों से युक्त कलरव करते हैं वे ऐसे लगते है मानो उस समुद्र में बुलबुले प्रवाहित हो रहे हों। अब तक क्षितिज की जो रेखा कुहरे के कारण मलीन और धुँधली दिखाई देती थी, वह सूर्य की किरणों के स्पर्श से लाल-लाल रंग की दिखलाई देती है। इसलिए वह ऐसी लगती है जैसे उन कनक रश्मियों से परिवर्तित तम-सिन्धु की मूँगे की पक्ति हो जो बड़ी कोमल लगती है।

नव कुन्द-कुसुम ........................... तान

(प्रातःकाल सफेद-सफेद बादल होते हैं। उन पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो वे रंग-बिरंगे दिखलाई देते हैं। इस पर कवयित्री कहती हैं कि) नवीन कुन्द के पुष्पों की भांति जो सफेद मेघों का समूह आकाश में प्रभात-काल में छाया हुआ है वह सूर्य की किरणें पड़ने से ऐसा लगता है मानो इन्द्रधनुप के सात रंगों वाला चंदोवा तना हो। प्रातःकाल कलियाँ विकसित होती हैं। उनके विकसित होने में चटकने की ध्वनि होती है सो मानो उनसे चटकने की ध्वनि की ताल देकर चंचल प्रवाहित होती हुई हवा ओस की बूंदों को नचाती है (वायु के चलने से ओस की बूँदें हिल कर गिरती और बिखरती हैं)। प्रातःकाल के सुनहरे वातावरण में भ्रमर भी अपने शरीर को धो लेते हैं अर्थात् भौंरे भी अपने काले शरीर को सुनहरी आभा से युक्त पाते हैं और वे अपनी उस तान को, जो रात्रि को सूर्यास्त के फलस्वरूप,

पुष्पों के अविकसित रहने के कारण मूक रही थी फिर दुहराते हैं (भौंरे गुंजारना प्रारम्भ कर देते है—यह भाव है)।

सौरभ का··························पल्लव अजान।

प्रातकाल वायु मन्द स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होती है। उसमें पुष्पों की सुगन्धि भी मिली रहती हैं सो मानो वायु परियों के समान है जो स्वच्छन्द रूप से आनन्द में आकर घूम रही है और सुगन्धि उनके केशों का समूह है जिसको उन्होने फैला रखा है (केश फैला कर विहार करने वाली स्त्री की कल्पना है।) तितली के छोटे-छोटे बच्चे घूम रहे हैं। वे मद पी कर झूम-झूम कर मस्ती में घूम रहे है और फूलो की गीली-गीली केसर का पान कर रहे है। उसी समय पत्ते भी वायु के चलने के कारण कम्पायमान हो कर अनजाने में ही अपनी मर्मर ध्वनि छेड़ देते है (पत्तों में से वायु के चलने पर मर्मर की ध्वनि आने लगती है)।

फैला अपने··························सुधिविहान।

(प्रातःकाल सभी प्राणी सजग हो जाते है। निद्रा त्याग कर सब चैतन्य होने लगते है। उसी समय कवयित्री कहती हैं कि) रात्रि के समाप्त होने पर अपने स्वप्न रूपी पंखों को फैलाकर नीद क्षितिज के दूसरी ओर उड़ गई (पंख फैलाकर उड़ने वाले पक्षी से समानता है) अब तक मनुष्य पूरी तरह से नेत्र नही खोल पाये, उनके नेत्र आधे खुले हुए ही हैं। अभी तक उन्होने जो स्वप्न देखे थे वह कुछ याद हैं कुछ भूल गए। इसलिए उनके अधखुले नेत्र कमल के पुष्प के समान हैं। कमल के फूल में पराग स्थित होता है और इन सभी प्राणियों के नेत्रों में विस्मृति का खुमार स्थित है। सो यह पराग युक्त कमल के पुष्प के समान है। इस प्रकार यह प्रातःकाल एक चतुर चित्रकार के समान है। चित्रकार किसी चित्रफलक को रंग से रंगता है। यहाँ यह प्रातःकाल हृदय रूपी चित्रफलक को रंग रहा है। रंगने की सामग्री है ओस के रूप मे दिखलाई देने वाले अश्रु और प्रकाश के रूप में दिखलाई देने वाली हँसी। इस प्रकार जैसे चित्रकार एक अनुपम सुन्दर दृश्य को चित्रित करता है उसी प्रकार प्रातःकाल होने पर अनुपम सुषमा सर्वत्र परिलक्षित होती है।

महादेवी वर्मा का हृदय प्रिय की स्मृति आने पर उसी प्रकार अश्रु और हासमय हो जाता है।

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री ने प्रकृति के विभिन्न चित्र उपस्थित किए हैं। कल्पना के सहारे उन्होंने प्रकृति के प्रातःकालीन वातावरण को सजीव बना दिया है और प्रत्येक स्थिति का एक-चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

२. इस कविता का कलात्मक मूल्य बहुत अधिक है। सर्वत्र अलंकृत रीति से उक्ति कही गई हैं। कई प्रकार के रूपकों को बांधा गया है। उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का इस कविता में योग है।

## गीत १६

प्रसंग—प्रस्तुत कविता मे महादेवी वर्मा ने विचारपूर्ण बातें रखी हैं। विचारों को सरस रीति से प्रस्तुत किया है। प्रकृति की वस्तुओं को नाना प्रकार से देखा गया है। नाना प्रकार के प्राकृतिक व्यापारों के संचालन के पीछे छिपी हुई किसी अज्ञात सत्ता की ओर अभिधा वृत्ति से संकेत किया गया है। फलतः रचना में रहस्यात्मक भावनाएं भरी हुई हैं। रहस्यवाद की प्रारम्भिक स्थिति, अन्तर्निहित सत्ता के प्रति जिज्ञासा के दर्शन इस कविता में होते हैं। गीत अच्छे भावों से युक्त है।

शब्दार्थ—शून्यता=आकाश। अम्लान=प्रफुल्लित। शिल्पी=शिल्पकार, ईश्वर। रजत प्याले=चाँदी के प्याले। अवदात=धीरे से। सृजन=रचना। स्पंदन=कंपन। अनुताप=दुख। नव्य विधान=नया विधान, नई व्यवस्था।

शून्यता में ······························साकार।

व्याख्या—आकाश में मेघों का आगमन होता है। वे सर्वत्र छा जाते है। इसी प्रकार निद्रा रूपी आकाश में स्वप्न रूपी मेघ आकर सर्वत्र आच्छादित होजाते हैं। कली जो बड़ी सुकुमार होती है वह अपने विकास की पूर्णता को प्राप्त करके मधु से युक्त होकर अपनी पूर्णता को साकार प्रत्यक्ष करती हैं। अर्थात् कली से पराग तभी छलकेगा जब कली अपने पूर्ण विकास को प्राप्त करके यौवन-सम्पन्न होगी।

हुआ त्यों ······························निर्माण।

जिस प्रकार निद्रा की शून्यता में स्वप्न और कलिका की सुकुमारता में मधु का आविर्भाव होता है उसी प्रकार ऐसा कौन है जिसके हृदय में विश्व में एकाकीपन का आभास सर्वप्रथम हुआ हो? ऐसा वह कौनसा शिल्पकार है

जिसने अनजाने में ही इस संसार की सृष्टि रूपी प्रतिमा का निर्माण कर दिया। (कवियत्री जिज्ञासा प्रस्तुत करती हैं इस सृष्टि के रचना करने वाले और रचना की आवश्यकता को महसूस करने वाले के प्रति)।

काल सीमा..............................बुन-चुन।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस ससार की सृष्टि करने वाले ने उस स्थान और समय पर जहाँ कि काल और सीमा मिलते है अपने हृदय को मोम के समान पिघलने वाली पीड़ा में पिघलाया और चमकाया। तत्पश्चात हास और अश्रु के तारो से बुन-चुन कर एक पर्दा तैयार किया और अपनी उस स्व-निर्मित प्रतिमा "विश्व प्रतिमा" के ऊपर डाल दिया (कहने का तात्पर्य यह है कि इस सृष्टि-रचना-चतुर परमेश्वर ने सृष्टि के व्यक्तियो को सुख-दुःख से युक्त बना दिया है)।

कनक से..............................चित्राधार।

दिन में सूर्य का साम्राज्य रहता है। सुनहरी आभा से युक्त रहने के कारण दिन सोने के होते है। चन्द्रमा की कान्ति से पूर्ण होने के कारण रात्रि मोती की कान्ति के समान स्वच्छ चमकीली होती है। सन्ध्या समय और अधिक सुनहरा वातावरण रहता है और उषा काल में रक्तिम आभा दिखलाई देती है। पता नही ससार की इन वस्तुओ को समय-समय पर विविध रगो से रगने वाला चित्रकार कौन है जो रग-बिरगे इन चित्रो को बनाता, बदलता और बिगाड़ता है ?

शून्य नभ.. .. .. ........................को फूँक।

आकाश खाली होता है। अन्धकार उसमे प्रवेश करता है। वह आकाश को चूम कर अगणित तारागण प्रकाशित कर देता है। किन्तु प्रातःकाल होने पर जैसे ही उजाला होता है नक्षत्र छिप जाते है। पता नही प्रातःकालीन प्रकाश बिना कुछ कहे चुपचाप ही उनको (नक्षत्र दीपों को) फूँक मार कर क्यो बुझा जाता है ?

रजत प्याले · ..........................मोल।

रात्रि मे सभी प्राणी सो जाते है मानो रात्रि रूपी बाला चांदनी के चांदी के प्याले मे निद्रा रूपी हाला को ढाल कर सब प्राणियों को बाँट आती है जिसके कारण सभी मदमस्त हुए सोते है। किन्तु ऐसा कौन है जो उस हाला के मूल्य को कलियो के ऊपर पड़े हुए ओस कणों के रूप में आँस घोल कर

चुकाता है (तात्पर्य यह है कि कलियों पर पड़ी हुई ओस मानो वह मूल्य है जिसे किसी ने रो-रो कर चुकाया हो)।

पोंछती जब..................................कर गाल।

रात्रि को ओस पड़ती है। प्रातःकालीन प्रवाहित वायु ओस की उन बूँदों को गिरा देती है। ऐसा लगता है मानो ओस की बूँदें रात्रि के आंसू है और वायु उन आँसुओं को पोंछती है। दूसरी ओर, उसी समय प्रातःकाल मे क्या कारण है कि बाल सूर्य हँसता हुआ दिखाई देता है? वह अपने गालो को लाली से लाल किये होता है (प्रभात मे निकलता बाल सूर्य लाल-लाल रंग का होता है—यह भाव है)।

कली पर..................................प्रतिपल।

(प्रात काल भौंरे कलियों पर जा कर बैठते है। वे मस्त हो कर अपनी गुंजार भी करते है। जिस समय भौंरा कली पर बैठ कर अपने प्रथम गान को गाना प्रारम्भ करता है उससे चारो ओर एक बड़ी थिरकन और मुस्कराहट फैल जाती है। कवयित्री को उसके स्मरण से अपनी बात याद आती है और कहती है कि) उस बेला में विफल सपनों के हार (आँसू) पल-पल में क्यों ढुलकते रहते है। (आँसू विफल सपनों के हार इसलिए है क्योकि आँसू प्रायः अपने अभीष्ट की विफलता के कारण ही निकला करते है।)

गुलालों से..................................स्वर्ण पराग।

(सन्ध्या के समय सूर्य पश्चिम की ओर छिपता है। उस समय उधर की ओर वातावरण भी लाल-लाल होता है। कवयित्री कहती हैं) कि वह लाली मानो सूर्य के रास्ते को लालिमा से लीपने के लिए होती है। पश्चिम की ओर छिपने वाला सूर्य लाल होने के कारण एक जलते हुए दीपक के समान है और इसी दीपक के जलने पर अन्य दीपक जलेंगे। सन्ध्या मानो फिर अपने सौभाग्य से भरपूर होने के कारण आनन्द से हँस रही है। और उसके नेत्रों से यह सुनहरी रग का पराग झड़ रहा है।

उसे तम..................................श्वासोच्छ्वास।

अन्धकार की बढ़ती हुई लहर उपर्युक्त सुनहरे वातावरण को उड़ा कर पता नही किस ओर ले जाती है? (अर्थात् जैसे ही अन्धकार का आगमन होता है वैसे ही रक्ताभ और स्वर्णिम सन्ध्याकालीन वातावरण विलीन हो जाता है। कवयित्री को इतने सुन्दर वातावरण के विलीन होने पर खेद

होता है। वह कहती है कि) क्या इस संसार का नियम यही है कि बहुत अधिक शोभा की सृष्टि की जाय और फिर उसका नाश कर दिया जाय? क्या संसार का सांस लेना और सांस निकाल देना यही है कि सुन्दरता की सृष्टि की जाय और फिर उसका नाश कर दिया जाय?

किसी की..............................चुपचाप ।

संसार में बहुत से व्यथित प्राणी हैं। किसी व्यथित प्राणी की चितवन ऐसी होती है कि उससे आहत हुआ सृष्टि का कण-कण काँप उठता है। उसी अज्ञात के व्यथा से पूर्ण उच्छ्वासों के सग्रह से इस विश्व रूपी विराट् संगीत की रचना कौन करता है? और फिर उसी के दुख से दुखी होकर प्रलय का रूप धारण करके वह कौन है जो चुपचाप उस विराट् संगीत को समाप्त करके डुबा जाता है (भाव यह है कि ईश्वर एक से अनेक होने की भावना से (एकोऽहं बहु स्यामि) सृष्टि की रचना करता है और फिर वह ही उस सृष्टि को प्रलय-काल में समाप्त कर देता है)।

आदि मे..............................जय हार ।

संसार का चक्र चलता रहता है। किसी वस्तु का प्रारम्भ होता है फिर अंत और पुनः प्रारम्भ। इस प्रकार आदि मे सृष्टि का अंत छिपा रहता है (कहने का तात्पर्य यह है कि किसी वस्तु के प्रारम्भ होते ही यह भी जान लेना चाहिए कि इसका अंत भी इसी प्रारम्भ में छिपा है। इसका अन्त निश्चित है और किसी वस्तु के अन्त होने से यह समझ लेना चाहिए कि वह आज अपने नवीन रूप मे बनने जा रही है। कवयित्री इस को देख कर यह प्रश्न करती है कि) क्या इस प्रकार आरम्भ और अन्त होने की बात से युक्त ही यह ससार एक सूत्र (धागे) के समान है जिसमें सुख-दुख, जय और पराजय के हार पिरोए हुए हैं (अर्थात् संसार का क्रम यही है कि कभी दुख है कभी सुख, कभी आदि है कभी अन्त, यह क्रम अनादि है और अनन्त काल तक चलता भी रहेगा।)

विशेष—१. इस कविता मे महादेवी वर्मा ने संसार की परिवर्तनशीलता, उसकी अनित्यता और सृजन-संहार के क्रम की एक दार्शनिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। इसलिए जीवन मे सुख दुख, उत्थान-पतन और जय पराजय निश्चित है, ऐसा वह अन्त में मानती है।

२. यह कविता रहस्यवाद की जिज्ञासा से समन्वित है। प्रकृति के विचित्र

पदार्थों की विशेषता और उनके क्रम को देख कर कवयित्री उनके संचालन के पीछे छिपी हुई उस शक्ति को जानने की इच्छा रखती हैं कि वह कौन है? कविता चिन्तन प्रधान और रहस्यमयी है।

## गीत १७

**प्रसंग**—प्रस्तुत कविता एक रहस्यवादी कविता है। कवयित्री अपने प्रिय परमेश्वर के विरह मे दुखी है। वह अपनी विरहानुभूति का विविध प्रकार से वर्णन करती है। उनके हृदय में अपने प्रिय से मिलने की जिज्ञासा है। इन्हीं भावों को इस कविता में प्रस्तुत किया गया है।

**शब्दार्थ**—रजत रश्मियाँ=चाँदी के समान श्वेत किरणें। धूमिल=धुँधला। निदाघ=गर्मी। स्रोत=सोता। सँसृति=संसार। पाहुन=पाहुना, अतिथि। मानस=हृदय। निर्मित=बना हुआ। मूक पथिक=सूर्य-चन्द्रादि। विनिमय=लेन-देन। उर्वर=उपजाऊ। आमन्त्रित=बुलाता, निमन्त्रण देता।

रजत रश्मियों ........................ वह जाता।

**व्याख्या**—बादल चाँदनी के समान स्वच्छ नही होते। चाँदनी में वह धूमिल से लगते हैं। कवयित्री कहती है कि जिस प्रकार चाँदी जैसी चाँदनी की किरणों में धूमिल बादलों का आगमन होता है उसी प्रकार उनके मन-मन्दिर में भी धूमिल-सी प्रिय की छवि आती है। गर्मी अधिक होने पर जैसे बादलो से वर्षा होती है वैसे ही हृदय की वेदना की गर्मी से मेरे हृदय में भी करुणा का सोता वह निकलता है।

उसमें मर्म ........................ लिख जाता।

संसार के जीवन का रहस्य उस परमेश्वर में ही छिपा हुआ है। अकेले तार में जैसे बहुत से कम्पन हो जाते है वैसे ही ससार की सारी क्रियाओं का आधार वह अकेला ही है। वह ससार के सभी प्रकार के पदार्थों और विषयों का संचालन करने वाला एकमात्र सूत्रधार है। उसके हृदय में असीम करुणा व्याप्त रहती है। वह ससार के करुणा से शून्य सभी स्थानो मे करुण काव्य की सृष्टि की तरह करुणा का संचार कर जाता है अर्थात् ईश्वर असीम करुणा करने वाला है। संसार में उसकी करुणा के अगणित उदाहरण देखे जा सकते हैं।

वह उर..........................बरसा आता।

वह हमारे हृदय में अचानक ही ऐसे आता है जैसे कोई अतिथि बिना तिथि के आया करता है। ईश्वर का हृदय मे आवास होने से ऐसा लगता है मानो वह ही सन्देश देता है कि अब कृपण मत बनो। अपने हृदय को विशाल बनाओ, सङ्कुचित दृष्टिकोण छोड़ो। वह हमारे हृदय की सारी निधियों को गिन लेता है अर्थात् सारे रहस्यों को जान लेता है। संसार एक भिक्षुक की भान्ति उसकी कृपा दृष्टि के लिए कामना करता रहता है तो वह नेत्र रूपी द्वार से संसार रूपी भिक्षुक पर हँसी बरसाकर (प्रसन्नता के साथ अपनी करुणा का रस बरसा कर) सब को सुख प्रदान करता है।

यह जग है..........................हो पाता।

यह संसार सदैव सर्वत्र विस्मय से भरा हुआ है। सृष्टि रचना को देख सब आश्चर्य-चकित होते है। यहां (सूर्य और चन्द्रमा जैसे) मूक पथिक नित्य ही आते रहते है जिनके विषय मे कुछ पता नही। हमारे प्राण अन्य सभी प्राणियो से पूर्णतः परिचय प्राप्त नही कर पाते। बात यह है कि ईश्वर की रचना को तभी जाना जा सकता है जब वह स्वय किसी पर कृपा करके उसे बतलाना चाहे। उनका कृपा संकेत प्राप्त हुए बिना एक-दूसरे से विचारों का आदान-प्रदान नही हो सकता।

मृगमरीचिका..........................का नाता।

ससार के सुख मृगमरीचिका के समान है (एक सुख से कोई सुखी नही होता फिर तृषित मृग की भाति सब एक दूसरे, दूर से अच्छे लगने वाले सुख की ओर अग्रसर होते है) सुख ऐसे आता है जैसे कोई प्यासा बड़ी आशा से (शीघ्रता से) आता है किन्तु सुख आकर के हृदय द्वार बन्द कर लेता है (अर्थात् सुखी व्यक्ति दूसरों के प्रति सहृदयता और सहानुभूति नही रखते, सुखी व्यक्ति गर्व मे भर जाता है और अपने को मधु ऋतु की भाँति चिर-सुखी समझ कर यह कहता है कि मुझे अब पतझर रूप दुख से क्या प्रयोजन है। (अर्थात् सुखी व्यक्ति आगामी दिनों मे अपने दुखी होने की कल्पना नहीं करता और झूठे क्षणिक सुख को शाश्वत समझ कर व्यर्थ का ही गर्व करता रहता है।)

दुख के पद..........................कर लाता।

दुख के पैर छू कर सृष्टि के कण-कण के आंसू के निर्झर बह निकलते हैं (अर्थात् दुख से सभी के हृदय दुखित हो जाते है और उनमें करुणा का निवास

हो जाता है) । दुःख को सहन करके जीवन कोमल और उपजाऊ हो जाता है (अर्थात् दुखी मनुष्य दूसरों की परिस्थिति को जानकर उनके प्रति कठोरता का व्यवहार नही करता तथा उसका हृदय शीघ्र ही द्रवित होता है और सहानुभूति व संवेदना प्रकट करता है) अपने छोटे-से हृदय में भी वह समस्त संसार को समा लेने की क्षमता रखता है। इसीलिए सारे संसार को एक साथ मिलाने और एक-सा समझने का भाव दुखी मनुष्य के मानस में भर जाता है।

विशेष—१. इस कविता में व्यक्ति का सुख और दुख दोनों प्रकार की परिस्थितियो में चित्रण किया गया है। सुखी व्यक्ति का संवेदन शून्य और गर्वित होना तथा दुखी व्यक्ति का परदुख-कातरता के कारण विश्व बन्धुत्व के भाव को स्वीकार करना बताया गया है। कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन की छाप इस गीत में प्रतिध्वनित होती हुई जान पड़ती है।

२ कवयित्री ने ईश्वर की कृपा को ही आधार मान कर यह कहा है कि उसकी कृपा के विना न कोई इस सृष्टि के रहस्य को समझ सकता है और न ईश्वर तथा उसकी कृति अर्थात् सृष्टि के जीवो के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है।

## गीत १८

प्रसग—महादेवी जी की एक अनूठी अनुभूति है। वह है उनकी वेदना। वेदना के अभिव्यक्तिकरण का उनका अपना निराला ढंग है। उन्हें वेदना इसी लिए प्रिय है कि उसके रहते हुए उन्हें नए-नए अनुभवों का और परिचयों का ज्ञान होगा। फिर कही मिलन होने से अनिच्छा पैदा न हो जाए इसलिए वह वेदना को ही चाहती है। साथ में प्रिय की प्राप्ति के लिए प्रयत्न की बात भी कहती हैं। बस वेदना और प्रिय प्राप्ति का प्रयत्न ही उन्हें अभीष्ट है। ऐसे ही विचार इस गीत मे प्रस्तुत किए गए हैं।

शब्दार्थ—चिरतृप्ति=चिरकाल तक रहने वाली सन्तुष्टि। विरक्ति=उदासीनता। विभूति=ऐश्वर्य, राख। अवगुंठन=पर्दा। मिस=बहाने से। सित=सफेद। असित=काला। सजल=जल सहित, गीले। मुकुरता=शीशे की भांति दृष्टिगोचर कराने वाला। पुलिन=किनारा। युगकूल=मिलन-विरह, दोनो किनारे। द्रुत=शीघ्र चलने वाले। चितवन=देखना।

विधुर=दुखी। विषाद=दुख। स्मित=मुस्कराहट।

चिर तृप्ति..............................जावे मन।

व्याख्या—जीवन की सफलता कवयित्री को इस बात में लगती है कि जीवन मे अपने सुख की तरह-तरह की कामनाओं के लिए प्रयत्नशील रहा जाय। कामनाओं की तृप्ति उन्हें अभीष्ट रही क्योंकि कामनाओ की सदैव के लिए तृप्ति हो जाने से वह प्रयत्न और उत्साह तथा कर्मण्यता जाती रहेगी। इस प्रकार का जीवन सफल जीवन नही होगा। बात यह है कि जैसे हम अपनी इच्छाओ की पूर्ति करके सुख प्राप्त करेंगे वैसे ही सुख फिर सदैव सुख ही नही लगता रहेगा। कालान्तर में सुख विरक्ति के रूप मे परिणित हो जायेगा। बादल अपने को जल से भरते है और फिर उसको वर्षा के रूप में ढुलका देते है। वर्षा के पश्चात् बादल सूने होते हैं। यदि वास्तव मे देखा जाय तो भरने की पूर्णता इसी मे है कि वह यथासमय खाली भी कर दिया जाय। इसी प्रकार सुख की पूर्णता यही है कि उस सुख से मन हट कर फिर सदैव के लिए दुख को ही अपना ले।

चिर ध्येय ..............................आँसू के सागर।

कवयित्री कहती है कि जलने वाली वस्तुओ का सदैव यह लक्ष्य रहता है कि वे जल कर ठंडी राख के ऐश्वर्य के रूप मे प्रस्तुत हों अर्थात् जलती कोई वस्तु इसलिए है कि वह राख बन जाए। इसी प्रकार पीड़ा सहन करते-करते उसकी पराकाष्ठा पर वह पीडा नही रहती। पीड़ा सहन करने का आदी हो जाने से पीड़ित उस पीड़ा के दुख को सदैव सुख मान लेता है इस भावना से प्रभावित होकर वह प्रभु से प्रार्थना करती है कि (मेरे इस छोटे जीवन में तृप्ति का कण मात्र भी नही भरना। (अर्थात् मैं तृप्ति लेकर फिर अतृप्त होऊंगी इसलिए मुझे तृप्ति की तनिक भी अभिलाषा नही है)। मेरी आँखे सदैव तुम्हारे रूप की प्यासी रहे (तुम्हारा रूप-दर्शन मुझे कभी न हो मै यही चाहती हूँ)। इस स्थिति मे तुम्हारे वियोग के कारण सदैव मेरे तृषित नेत्र आँसू भरते रहेगे। मैं दुख को चिर सुख मान लूँगी।

तुम मानस ..............................पाऊँ पर।

महादेवी जी अपने प्रियतम प्रभु से कहती है कि तुम मेरे हृदय मे दुख के पर्दे के पीछे छिप कर निवास करो अर्थात् यदि मुझे दुख होगा तो आपका स्मरण करूँगी और आप दुखी पर अवश्य कृपा करते हैं इस लिए मेरे पास

अवश्य छिपे हुए रहेंगे। (भाव यह है कि आप मुझे दुख दीजिए। उस दुख की अवस्था में मैं तुम्हे ,ढूँढने के वहाने सृष्टि के कण-कण से परिचित हो लूँगी अर्थात तुम्हें ढूँढ़ने के वहाने से मैं सारी सृष्टि को खोज कर नए-नए परिचय और अनुभव प्राप्त करूंगी। तुम मेरे नेत्रो में, जो सदैव तुम्हारे वियोग में आँसुओ से पूर्ण रहेंगे, उनकी सफेद और काली पुतली वन कर रहो। इस प्रकार जब तुम ही मेरे नेत्रों मे रहोगे तो मैं तुम्हारे द्वारा ससार की सभी वस्तुओ को देखूँगी और तदनुसार ज्ञान प्राप्त करूँगी। किन्तु नेत्रों में बसे होने के कारण तुम्हे ही नहीं देख सकूँगी। (अर्थात् मैं तुम्हारी करुणा और कृपा की पात्र वनी रहूँ और तुम्हारे लिए प्रयत्न करती रहूँ यही मेरी इच्छा है तुम्हे प्राप्त करके फिर अनिच्छा हो, जैसा कि साधारण नियम होता है ऐसा मैं नही चाहती )।

चिर मिलन........................हों फीके।

(विरह की आकाँक्षा करते हुए कवयित्री मिलन को भी चाहती है। अतः वह कहती हैं कि मेरी जीवन सरिता ऐसी होनी चाहिए जिसके सदैव विरह और मिलन दो किनारे हों। इस प्रकार प्रत्येक क्षण जैसे नदी अपने दोनों किनारों का स्पर्श करती है वैसे ही मैं भी विरह और मिलन का अनुभव करती रहूँ, ऐसी मेरी इच्छा है। किन्तु वह मिलन को इस प्रकार चाहती हैं जैसे क्षितिज की रेखा होती है। देखने मे प्रतीत होता है कि पृथ्वी और आकाश मिले हुए अब एक दूसरे को प्राप्त हुए जाते हैं परन्तु चलते-चलते दूर तक भी वह क्षितिज कही प्राप्त नही होता। इसलिए वह प्रभु से कहती है कि) आप (क्षितिज की, रेखा के समान मेरे जीवन के पास ही दिखलाई दिया करो और क्षितिज की रेखा को जैसे नहीं पकड़ा जा सकता वैसे ही तुम्हे भी मैं प्राप्त न कर सकूँ, केवल प्रयत्न ही करती रहूँ—ऐसी मेरी अभिलाषा है।

द्रुत पखों........................की सीमा।

(प्रभु प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहने के ऐसे ही भाव रखते हुए वह कहती हैं कि) मेरी यह इच्छा है कि मेरा मन तुम्हे प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार शीघ्रता से उड़ान भरे जैसे कि पक्षी आकाश में दूर तक उड़ता है। पक्षी कितना भी उड़े परन्तु वह अनन्त नभ की सीमा को नही पार कर सकता। इसी प्रकार मेरे मन रूपी पक्षी को ईश्वर रूपी नभ का छोर प्राप्त

करते-करते युग बीत जांय परन्तु ईश्वर प्राप्ति न हो, वह ईश्वरीय रहस्य के एक तत्व को भी न जान सके, ऐसी मेरी इच्छा है। हे प्रभु! तुम कभी समाप्त न होने वाली प्रतीक्षा के समान हो जाओ और मैं थके हुए पथिक का धीरे से चलने वाला पैर हो जाऊँ (अर्थात् जिस प्रकार बहुत दूर लक्ष्य होने पर, थका हुआ होने के कारण, लक्ष्य प्राप्ति के लिए विरही पथिक चलता है पर वह सुदूरता के कारण लक्ष्य की ओर बढ़ता है पर प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं भी यह चाहती हूँ कि तुम्हारी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते-करते ही मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जाए और मैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति स्वरूप आपको कभी प्राप्त न कर पाऊँ। प्राप्ति के लिए ही मुझे प्रयत्न प्रिय, सुखद और वांछनीय है।)

तुम हो.......................................पुलक सा।

महादेवी जी कहती हैं कि हे प्रभु! यदि तुम प्रातःकाल की प्रकाशमय दृष्टि बन कर आओ तो मैं तुम्हारे सामने व्याकुल रात्रि बन जाऊँ। रात्रि रात-भर तो ओस के रूप में रोती रहती है पर जब उसके मिलन का समय आता है तो प्रातःकाल होने पर छिप जाती है। मैं भी यही चाहती हूँ कि मैं जीवन-भर आपके मैं वियोगमें रोती रहूँ। और जब मेरे मिलन का अवसर आवे तब निशा की भांति छिप जाऊँ (भाव यह है कि उन्हें मिलन के लिए प्रयत्न ही वाँछनीय है, प्राप्ति नहीं! वह चाहती हैं कि यदि उन्हें मिलन के क्षण की माधुर्यमयी प्राप्ति भी हो तब भी उसमें एक पीड़ा की कसक रहनी चाहिए)। उस समय यद्यपि प्राणों मे आन्दातिरेक के कारण पुलक का होना स्वाभाविक है किन्तु उसी समय विरह भी होठों पर मुसकराने लगे (भाव यह है कि कवयित्री विरह को कभी नहीं छोडना चाहती। इसीलिए वह मिलन के सुख की आकांक्षा के साथ ही विरह को भी चाहती है)।

पाने में...... .............................दो छोरें।

(कवयित्री ईश्वर को प्राप्त करके बैठ जाने के पक्ष में नही है। इसलिए वह कहती है) कि हे प्रभु! यदि तुम मुझे प्राप्त हो जाओ तो उसे मैं खोना समझूँ अर्थात् तुम्हारी प्राप्ति मात्र ही क्यों कि मेरा लक्ष्य नही है इसलिए मुझे तुम्हारी प्राप्ति पर अपनी सफलता नही वरन असफलता ही प्रतीत होगी। दूसरी ओर, तुम्हे प्राप्त करके खो देने मे ही मैं आपकी प्राप्तिवत सुख का आनन्दानुभव करूँ। मेरा लक्ष्य आपको खोजने के लिए प्रयत्न करना है, न

कि प्राप्त करना। इसलिए मेरी इच्छा है कि मेरे जीवन में आपके लिए सदैव अतृप्ति ही बनी रहे। आप प्राप्त नहीं होंगे तो अतृप्ति बनी रहना स्वाभाविक है। आपके लिए सदैव तृपित रहना ही मेरा मिट जाना हो (अर्थात् आपकी प्राप्ति की इच्छा करते-करते ही मेरे जीवन का अन्त हो जाय—ऐसी मेरी अभिलाषा है)। जिस तरह डोर में मोती गूँथा जाता है उसी तरह विषाद के मोतियों को आपकी चाँदी जैसी उज्जवल सुखद मुसकराहट के डोरे में गूँथा जाय अर्थात् आपके प्राप्त न करने का विषाद और मिलन का आनन्द एक ही स्थान पर अनुभव किये जाने चाहिएँ। क्षितिज पर आलोक और तिमिर का मेल होता हुआ दिखलाई देता है। मेरे लक्ष्य भी उसी प्रकार आलोक और तिमिर के संगम से युक्त होने चाहिएँ (अर्थात मुझे सदैव मिलन का आनन्दानुभव स्वरूप आलोक और विरह की पीड़ा जन्य तिमिर सदैव एक साथ मिलता रहे, यही मेरी कामना है।

विशेष—१. कवयित्री ने इस कविता में अपने जीवन में एक ऐसी स्थिति की कल्पना की अभिव्यक्ति की है जिसमें ईश्वर प्राप्ति का सुख और वियोग का दुख दोनो एक साथ हों। उन्हें संयोग और वियोग दोनों ही प्रिय हैं।

२. कवयित्री की रहस्यवादी प्रयत्न की स्थिति दृष्टव्य है। ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति यदि सदैव ईश्वर के विरह से व्यथित रहेगा तब उसकी प्राप्ति कर सकता है। जीवन का लक्ष्य ही जब ऐसा बन जाए तब उसकी प्राप्ति हो सकती है।

३. कवयित्री की वेदना को हृदयगम करने की, अपनी निजी अभिव्यक्ति है। कविता विभिन्न अलंकारो और सुन्दर कल्पना के योग से सुन्दर है।

## गीत १६

प्रसंग—प्रस्तुत गीत में महादेवी जी ने प्रकृति के विविध व्यापारो को सुन्दर कल्पना से संजोया है। प्राकृतिक व्यापारों की छवि पर मुग्ध होकर उनके रहस्य को जानने की इच्छा होती है। अतः वह जिज्ञासा भाव से प्रश्न करती हैं कि वह कौन है जो यह सब करता है? और इनमें निहित रहस्य का आधार क्या है? कविता रहस्यवादी विचारों से परिपूर्ण है और रहस्यवाद

की प्रथम स्थिति जिज्ञासा के दर्शन इस कविता में होते हैं।

शब्दार्थ—कुमुद=कुमोद, कुमोदनी एक पुष्प। दल=पत्ते, समूह। अनिल=वायु। नैश तम=निशा का अन्धकार। तड़ित=बिजली। अम्बर=आकाश। रुपहली=चांदी जैसी। ज्योत्स्ना=चाँदनी। मुकुल=कली। मोतियों=ओस के मोती। यवनिका=पर्दा।

कुमुद-दल..........................वह कौन है ?

व्याख्या—कुमुद के पुष्प रात्रि में विकसित होते हैं। उन पर ओस की बूंदें पड़ी होती हैं। सूर्य निकलने पर ओस की वे बूंदें सूखने लगती हैं। कवयित्री कल्पना करती है कि कुमुद के पुष्पों पर पड़ी जो ओस है वह मानो वेदना के कारण पड़े हुए उनके दाग है और सूर्य की किरणें उन दागों को पोंछती हैं। तारागण भी सूर्योदय होने पर विलीन हो जाते हैं मानो प्रातः-कालीन वायु के निश्वासों का स्पर्श पा कर अनजान-सी हुई तारिकाएँ चकित होती हैं– ऐसा प्रतीत होता है। उस समय कवयित्री को ऐसा लगता है मानो उन्हे कोई इस प्रकार बुला रहा हो जैसे दूर से आती हुई संगीत की ध्वनि अपनी ओर आकृष्ट करती है। कवयित्री इस मौन आमन्त्रण देने वाले के प्रति जिज्ञासा रखती हे और कहती है कि वह कौन है जो मुझे बुलाता है ? (प्रातःकालीन वेला में ईश्वरानुभूति का कथन किया गया है।)

शून्य नभ..........................कौन है ?

शून्य आकाश मे रात्रि के अंधकारमय वातावरण में जिस समय घटा उमड़ कर आती है वह ऐसी लगती है जैसे दुखो का भार उमड़ कर आया करता है। उस समय शलभो की पक्तियां भी चारो ओर दिखलाई देती हैं। वे ऐसी लगती है जैसे सुनहले मोतियों के समान आंसुओ के हार हों। उस समय बिजली की कौंध से नेत्र चकाचौंध हो जाते है और सहसा मुंद जाते है। कवयित्री कहती है कि उस समय बिजली की मुस्कान मे मुझे किसी अज्ञात छवि के दर्शन होते है। इसलिए जानने की इच्छा है कि बिजली की मुस्कान मे वह कौन है ?

अवनि-अम्बर..........................कौनहै ?

सीप के दो भाग होते है और उनके बीच मे मोती होता है। यहाँ पृथ्वी और आकाश की चांदनी के कारण चांदी जैसी सीप है। उस पृथ्वी और

आकाश के मध्य चचल मोती की तरह से काँपता हुआ उर्मिल सागर है। वहाँ बादल घूमते हुए ऐसे प्रतीत होते है जैसे बर्फ का समूह तैर रहा हो। क्योंकि सर्वत्र चांदनी ही चांदनी प्रसारित रहती है और उनमें बादल और भी सफेद मालूम हो कर चाँदनी के समुद्र में बर्फ के समूह के तैरने की आभा देते हैं। उस समय सुगन्धि आती है। कवयित्री कहती है कि उस समय सुगन्धि बनकर जो मुझे सुलाने के लिए थपकियाँ-सी देता हुआ नींद के उच्छ्वास के समान प्रतीत होता है वह कौन है ?

जब कपोल.......................... .. कौन है ?

प्रात:काल सूर्यागम के पश्चात् गुलाब पर पड़ी ओस की बूंदें सूख जाती हैं। साथ ही नक्षत्र-मण्डल विलीन हो जाता है। कवयित्री कल्पना करती है कि प्रात:काल एक बच्चे के समान है। गुलाब के पुष्प पर जैसे ओस की बूंदें सूख जाती है वैसे ही भोर में प्रात:काल रूपी बच्चे के गगन रूपी कपोल से नक्षत्र रूपी बूंदें सूख जाती हैं। सूर्य की किरणे सर्वत्र फैल जाती हैं और ओस की बूंदों को सुखा देती है मानो सूर्य-रश्मियों की सुनहरी धार मे सभी कलियाँ स्नान करके विकसित होती हैं और अपनी ओस की बूंदों को मूर्तियों के अर्घ्य के समान सूर्य को समर्पित कर देती हैं। (भाव यह है कि सूर्य निकलने पर कलियाँ विकसित होती हैं, उन पर सूर्य की किरणें पड़ने से वे सुनहरी लगती है और उन पर पड़ी ओस सूर्य की गर्मी में सूख जाती है।) कवयित्री कहती है कि प्रात:कालीन उस जागृत वातावरण में जब रात्रि की निद्रा के कारण अब तक दिखाई देने वाले मेरे स्वप्न विलीन हो जाते है तो उन स्वप्नों पर पर्दा डाल कर जो मेरे नेत्रों को खोलता है वह कौन है ? क्या कोई मुझे उसका ज्ञान करा सकता है ?

विशेष—१. महादेवी जी को प्रकृति की रमणीयता में अपने प्रिय की छवि के दर्शन होते है। इसी से वह उसकी अनुभूति करके चकित होती है। अपनी ईश्वर विषयक जिज्ञासा को इस कविता में उन्होने मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। कविता रहस्यात्मक भावनाओं से भरी है।

२. प्रकृति के आश्रय से अपनी रहस्यात्मक अनुभूति को व्यक्त करने के कारण इस कविता में प्रकृति-वर्णन सुन्दर हुआ है।

प्रकृति के व्यापारों की वास्तविक स्थिति को कल्पना के सहारे व्यक्त करके कविता मे अलंकरण और उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार भी उत्पन्न कर दिया गया है।

## गीत २०

प्रसंग—अपनी रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति महादेवी वर्मा ने नाना प्रकार से की है। प्रस्तुत कविता भी एक रहस्यात्मक कविता है। इसमें कवयित्री जी ने अपनी अन्तर्गत वेदना को दिखलाया है। इसके लिए उन्होंने प्रकृति के नाना व्यापारों को चुना है। उन्होंने अपने हृदय की, प्रिय-वियोग से उत्पन्न विकलता को भी व्यक्त किया है। कविता-विचारात्मक और कल्पना समन्वित है।

शब्दार्थ—नक्षत्र-लोक=आकाश। शतदल=कमल। आघात=चोट। तरल मोती=पिघले हुए मोती। अनिल=हवा। चल पंखों=चंचल पंख। पलक दोलों=पलक रूपी डोली। आँख का फूल=अश्रु कण। वीचि विलास=लहरों की क्रीड़ा। दुस्तर=कठिन।

किसी नक्षत्र..............................दे नादान!

व्याख्या—कमल पर ओस की बूँदे पड़ती है। कवयित्री के विचार में ये नक्षत्र लोक से टूटे हुए मोती है। इसी प्रकार इस विश्व रूपी बड़े शतदल पर किसी अज्ञात नक्षत्र लोक से तरल मोतियों की बूँद के समान ओस की बूँद दुख के रूप में टूट पड़ती है। (भाव यह है कि मनुष्य के दुख में आँसू निकालने का कारण कुछ अज्ञात ही है। ओस की बूँद के समान वह दुख का आँसू भी अपने विषय में अनभिज्ञ होता है)। उसे न अपने नाम का और न अपने वास्तविक उद्गम स्थान का ही ठीक-ठीक ज्ञान होता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई उससे उसका परिचय पूछे तो वह बेचारा नासमझ अपना ठीक-ठीक परिचय क्या दे सकता है? अर्थात् उससे उसका परिचय प्राप्त करना सम्भव नहीं।

किसी निर्मम..............................मिलन-प्रभात!

जब कोई निर्दयतापूर्वक अपने हाथ की चोट से वीणा के तारों को जोर से छेड़ कर उसमें बहुत तीव्र कम्पन पैदा करता है तो वह कम्पन से उद्भूत झंकार वायु के चञ्चल पंखों पर सवार हो कर बहुत दूर चली जाती है। वह

झंकार शीघ्र ही समाप्त भी हो जाती है (दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि उसका जन्म ही विरह की रात व्यतीत करने के लिए हुआ है)। ऐसी स्थिति में वह अपने मिलन की बात क्या सुना सकती है? (भाव यह है कि जिस झंकार के निकलते ही उसका वियुक्त होना प्रारम्भ हो गया उससे मिलन की अपेक्षा कैसे की जा सकती है)?

चाह शैशव ..........................पिछला इतिहास।

मनुष्य जीवन का शैशव-काल किसी प्रकार के परिचय से पूर्ण नहीं होता। मनुष्य जीवन के शैशव-काल की तरह ही परिचयहीन आँसू की बूँद होती है। वह पलक की डोली में क्षण-भर के लिए झूल लेती है और फिर ढुलक कर चुपचाप कपोलों पर आ जाती है। कपोलों पर आ कर आँसू की बूँद विलीन हो जाती है। इस प्रकार उसका आदि और अन्त एक ही साथ होता है अर्थात् तभी वह पैदा होती है और तभी विलीन भी हो जाती है। कवयित्री कहती है कि इस प्रकार क्षणिक अस्तित्व वाली आँसू की बूँद अपना पिछला इतिहास क्या बतलाए? (उसकी क्षणिकता में उसका कुछ इतिहास बन ही न पाया तो वह कथन किसका करे—यह भाव है)।

मूक हो ..........................अपनी पहचान!

आकाश में बादल गम्भीर गर्जन करते हैं। उनके गर्जन से सारा संसार जाग जाता है। इसके पश्चात् बादलों की वह गर्जना स्वयं चुप हो जाती है। उस गर्जना की प्रतिध्वनि पृथ्वी पर इधर-उधर टकराती फिरती है। वह अपेक्षाकृत कोमल होती है और असहाय की भांति इधर-उधर घूमती-फिरती है। जब ध्वनि को यह पता नहीं कि वह किस देश से उत्पन्न हुई है? वह क्या है और कहां से उसका जन्म हुआ है? जब उसे स्वयं के विषय में यह कुछ भी पता नहीं है तो वह अपनी पहचान क्या बतला सकती है क्योंकि अपना परिचय देने के लिए यह अनिवार्य है कि अपनी सारी बातें पता हों।

सिन्धु को ..........................दस्तर काम?

महादेवी जी अपने प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे देव! समुद्र में अनेक लहरें क्षण-प्रतिक्षण बनती और बिगड़ती रहती है। वे लहर अपने क्षणिक जीवन का समुद्र को क्या परिचय दे सकती हैं? मेरे तुच्छ प्राण भी इसी प्रकार के छोटे बुलबुले के समान क्षणिक है। मेरा सृजन भी

तुम्ही से हुआ है और मेरा नाश भी तुम्ही मे होता है अर्थात् जीवात्मा ईश्वर से ही उत्पन्न होती है और उसी में विलीन हो जाती है। हे देव ! आप मुझे अपने अस्तित्व ज्ञान का पता लगाने का कठिन कार्य क्यों देते हैं !' (भाव यह है कि जब आत्मा का जन्म अनन्त परमात्मा से हुआ है तो वह अनन्त के विषय में जिसको निगम भी नेति-नेति कहते है कैसे परिचय दे सकती है) ?

जन्म ही..............................अभिसार।

अपने विषय मे बतलाते हुए कवयित्री कहती है कि मेरा जन्म होते ही आपसे वियोग हुआ क्योंकि मैं तुम्हारा ही तो उच्छ्वास हूँ (जीव ईश्वर का अंश होता है)। मुझे तुम्हारे वियोग से जो पीड़ा हुई उसके कारण मैंने दुख-भरी आह ली। यह विश्वरूपी हवा मेरी उसी ठन्डी साँस को चुरा लाई है इसी कारण संसार के सभी जीव पीडा से व्याकुल हैं। हे प्रभु ! आप मुझे बार-बार इस प्रकार छोड़ कर अन्धकार के साथ चुपके-चुपके मिलने के लिये प्रयत्नशील क्यों बना देते हैं ? अर्थात् मुझे बार-बार जन्म ग्रहण करने की स्थिति में डाल देते हैं और उसमे फिर मेरा संसर्ग अज्ञान के साथ होना स्वाभाविक हो जाता है (भाव यह है कि कवयित्री को बार-बार जन्म ग्रहण करके अज्ञानांधकार में फंसना प्रिय नहीं। उसी से बची रहने के लिए वह प्रभु से प्रार्थना करती है)।

छिपा है............................ उपहार !

जननी का जननीपन और उसकी वास्तविकता शिशु के निरर्थक रोने में छिपी हुई है अर्थात् बच्चा जब व्यर्थ में ही रोता है तब जननी अपनी वत्सलता दिखलाती है। जननी के वात्सल्य का पता बच्चे के रोने के समय चलता है। चित्रकार के विषय में वास्तविक ज्ञान चित्रकार के बनाये हुए चित्रों को देख कर ही लगाया जा सकता है। चित्र चाहे जड़ हों पर उनसे चित्रकार के विषय में विविध ज्ञान की प्राप्ति होती है। हे प्रभु ! मेरे नेत्रों में सदैव आँसू भरे रहते है; वे आँसू ही मेरे लिए सुन्दर हार के समान है। वे मुझे तुम्हारा एक सुन्दर उपहार प्रतीत होते है (भाव यह है कि किसी व्यक्ति के दिये गए उपहार को देख कर उस व्यक्ति की याद आ जाना स्वाभाविक है। कवयित्री को प्रभु-वियोग-दुख के कारण आँसू मानो उनके उपहार में मिले है। इसलिए उन आँसुओ को देख कर, जिनके कारण वह आँसु निकलते है उसकी (प्रभु की)

स्मृति हो आती है)।

**विशेष**—१. इस कविता में कवयित्री जी के कुछ दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। जीवात्मा और परमात्मा का क्या सम्बन्ध है? जीवात्मा की उत्पत्ति कहां से हुई? नाश होने पर जीवात्मा कहाँ जाती है? आदि तथ्यों का स्पष्टीकरण इस कविता में किया गया है। अतः रहस्यवादी विचारों के साथ-साथ दार्शनिकता का पुट दृष्टव्य है।

२. महादेवी वर्मा ने न जाने किन कारणों से वात्सल्य भाव समन्वित उक्तियां अपने काव्य में नहीं की हैं। इस कविता में थोड़ा-सा उनके इस भाव की ओर दृष्टिपात करना दिखलाई देता है। वात्सल्य रस का यदि थोड़ा-बहुत आभास मिलता है तो वह इन निम्न पंक्तियों में कहा जा सकता है—

"छिपा है जननी का अस्तित्व।
रुदन में शिशु के अर्थविहीन।"

३. इस कविता में भी कवयित्री ने प्रकृति के विविध व्यापारों के उदाहरणों से ईश्वर के विषय में कुछ भी न कही जाने वाली अनिर्वचनीयता की पुष्टि की है। कविता में प्रकृति के सूक्ष्म दर्शन के साथ-साथ कल्पना का भी पुट है।

## गीत २१

**प्रसंग**—इस कविता में महादेवी जी ने संसार के विविध वस्तु व्यापारों का वर्णन किया है। उन्हें समय-समय पर जहाँ आश्चर्य और नवीन अनुभूति हुई उसी समय यह प्रश्न भी किया है कि यह कौन है जो ये समस्त कार्य करता है? अन्त में संसार की परिवर्तनशीलता देख कर इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि परिवर्तन में ही विकास और सफलता की प्राप्ति होती है। यह सृष्टि का एक अमिट शाश्वत नियम है।

**शब्दार्थ**—तुहिन=बर्फ, तुषार। छविमान=शोभाशाली। मधुदिन=वसन्त। अंचल=वस्त्र, दुपट्टा। अन्वेषण=खोज। अथाह=बहुत गहरी। स्पन्दन=कम्पन। अनुताप=दुख, पश्चाताप। अविराम=लगातार। मधुमास=वसन्त। अनल=आग। पावस=वर्षा ऋतु। वीचि विलास=लहरों की क्रीड़ा। निदाघ=गर्मी। निमिष=पल-भर। उर्मि=लहर। कुहू=अमावस्या

की रात्रि। माधव=बसन्त। वपुमान=स्थिर, साकार। क्षार=नष्ट, राख। मृतपिण्ड=मिट्टी के ढेले। प्रयास=प्रयत्न।

तुहिन के........................किसका अन्वेषण।

व्याख्या—नदी के किनारे पर वर्फ की तरह तुषार की तह जमी हुई है और उस पर बसन्त ऋतु मे वहुत सुन्दर लगने वाली लहर आ कर टकराती है तथा जिस प्रकार स्वप्न की भोली अनजान प्रतिमा के ऊपर वेदना की छाया का आच्छादन हो जाता है अर्थात् जीवन के भावी स्वप्नों को अन्तर की वेदना धुंधला बना देती है इसी प्रकार इस संसार मे मनुष्य के भोले जीवन की स्थिति होती है। मनुष्य-जीवन मे स्वप्न और जागृति का मूक मिलन सदैव होता रहता है अर्थात् संसार जो स्वप्नवत सारहीन है संसार का उसमें आ कर जन्म लेने वाले ईश्वर के अंश रूप जीव और इस संसार का सदैव चुपचाप मिलन होता रहता है। जीव अपनी विस्मृति को अपने अंचल में बाँध कर (अर्थात् अपने को खोया हुआ-सा अनुभव करके) किसी की खोज कर रहा है। मेरी सम्मति में वह अपने प्रभु की खोज कर रहा है। क्या कोई वास्तविक रूप में वतला सकता है कि वह किसकी खोज कर रहा है?

धूलि के........................सन्धान।

मानव जीवन की व्याख्या करते हुए महादेवी जी कहती हैं कि मनुष्य का जन्म धूल के एक कण के समान अस्तित्वहीन और क्षुद्र है किन्तु उसमें असीम आकारवाले आकाश की तरह अनन्त इच्छाएं भरी हैं। मानव जीवन एक बूंद के समान छोटा और नश्वर है किन्तु अपने छोटे से जीवन में ही उसे दुख के समुद्र को पार करना पड़ता है अर्थात् मानव जीवन में दुखों की सीमा नही है। वह अपने एक-एक कम्पन में अपार स्वप्नों की कल्पना करता है अर्थात् तनिक-सा कार्य करके ही मनुष्य उससे सम्बन्धित अनेकों लाभों की कामनाएं करता है। परन्तु मनुष्य को प्रत्येक क्षण बहुत अधिक असफलताएं ही सहन करनी पडती हैं। उसको प्रत्येक साँस में जलन पैदा करने वाले दुखों का अनुभव होता है। उसकी कल्पनाएं लगातार शीघ्रता से प्रवाहित होती रहती है। बस, मनुष्य के छोटे-से प्राण यही तो हैं कि वह पल-पल पर दुख का अनुभव करता है और भावी सुख के स्वप्न देख कर प्रसन्न होता रहता है। यह दुःख और [भावी-सुख-स्वप्न [उसके लिए शाप और वरदान बन कर

एक जगह मिले रहते हैं।

भरे उर..............................साकार ?

सृष्टि का प्रत्येक प्राणी ईश्वर के प्यार का पात्र है। वह बड़े विशाल हृदय वाला प्रभु है। उसके हृदय में शोभा का वसन्त भरा हुआ है अर्थात् वह अतीव सुषमा से युक्त हृदय वाला है। उसके नेत्र करुणा के कारण सदैव अश्रु प्रवाहित करते रहते हैं (ईश्वर बहुत करुणा करने वाला है)। उसके ओठों पर सदैव मुसकराहट रहती है और जिस प्रकार वर्षा ऋतु प्रसन्न हो कर सब पर जल की वर्षा करके सब को हरा-भरा और पल्लवित कर देती है उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी कृपा के वारि की वर्षा से सभी प्राणियों पर करुणा करके उन्हे सुखी और समृद्ध बनाता है।

मनुष्य के शरीर का निर्माण करने वाले विविध तत्वों का वर्णन करके उसके निर्माता के प्रति जिज्ञासा के भाव दिखलाते हुये वे कहती हैं कि मनुष्य के शरीर में सृष्टि के कई तत्वों का समावेश किया गया है। नीले आकाश के विस्तार का कुछ अंश लेकर तथा दो-चार अग्नि के धूमिल कण साथ में मिला कर, जल से सदैव आत्म-निर्भर रहने वाली लहरों की क्रीड़ा ले कर, शीतल, मन्द मलय समीर से कुछ उच्छवास ले कर और पृथ्वी से कुछ परमाणुओं को ले कर मनुष्य के शरीर का निर्माण हुआ है अर्थात् आकाश, अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी, इन पांच तत्वों से मनुष्य शरीर की सृष्टि हुई है। कवयित्री इस प्रकार मानव का निर्माण करने वाले प्रभु के विषय में जिज्ञासा रखते हुए कहती हैं कि ऐसा मानव इन तत्वो से किसने बना दिया ?

दृगों में..............................का प्रात।

महादेवी जी अपने हृदय मे ईश्वरीय प्रेम की सरसता और तज्जनित वेदना की शुष्कता और कटुता का अनुभव एक साथ करती हैं इसीलिए वे कहती हैं कि मेरे नेत्रों में अज्ञात रूप से गर्मी के दिनों की उष्णता और पावस की रातों की सरसता और शीतलता दोनों ही रहती हैं। मुझे अमृत का सरस स्वाद और हाला की मादकता एक साथ अनुभव करने को मिल रही है। मेरे जीवन में एक ओर तो व्यथा के बादल छाए हुए हैं और दूसरी ओर गर्मी की आग भरी है। मेरे हृदय में पृथ्वी की कठोरता और नवनीत की कोमलता समाई हुई है। मेरे जीवन में पलक मारने के समय के तुल्य गति भरी हुई है

मिटा देने की विफलता को सहन करने पर ही विकास के लक्ष्य की पूर्ति सम्भव है।

विशेष— १. इस कविता में दार्शनिक विचार दृष्टव्य है। कवयित्री ने मनुष्य के शरीर का निर्माण पृथ्वी, जल, तेज, वायु और अग्नि, पाँच तत्वों के संयोग से कहा है। उक्त विचार बहुत प्रसिद्ध है। नाना विद्वानों ने इसको व्यक्त किया है इसी विषय में निम्न उक्ति दृष्टव्य है—

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पच रचित यह अधम शरीरा॥

२. महादेवी जी की, विफलता मे ही सफलता और विकास की पूर्ति के कथन की प्रणाली उनकी अभिव्यक्ति की विशेषता है।

## गीत २२

प्रसंग—प्रस्तुत गीत में महादेवी वर्मा विषाद-ग्रस्त मानव जीवन से प्रभावित होती है। उनके सामने एक ओर प्रकृति की अनूठी शोभा है और दूसरी ओर कष्टों को सहन करके जर्जर हुआ मानव जीवन। इस स्थिति में वह निर्णय नही कर पाती कि उनकी सहानुभूति किधर अधिक होनी चाहिए। माँ के सम्बोधन से प्रतीत होता है कि कवयित्री भारत माँ को सम्बोधित करते हुए अपने देश-प्रेम के भावों को इस कविता में व्यक्त करते हुए अपनी बात कहती है।

शब्दार्थ—हिम-हीरक=हीरे के समान प्रतीत होने वाली ओस की बूँदे। सौरभ=सुगन्धि। लतिकाएं=बेलें, लताएं। निस्पन्द=शांत। रजत रश्मियाँ=चाँदी जैसी किरणे। निर्निमेष=टकटकी बाधे हुए। अजस्र=निरन्तर प्रवाहित होने वाले। क्रन्दन=रुदन।

कह दे........................ जीवन देखूँ!

व्याख्या—हे भारत माता! आप ही बतलाएं कि मै किस ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित करूँ। एक ओर तो प्राकृतिक सुषमावाली कलियां है जो अपने यौवनागमन पर पूर्ण विकास को प्राप्त करके खिल रही है। दूसरी ओर भूख-प्यास और विपत्ति के कारण मुरझाए हुए ओठों वाले प्राणी दिखाई देते है। मैं प्रकृति के वातावरण को देखूँ, जो सदैव अपनी शोभा का प्रसार करता है

अथवा दुख, क्लेश और आपत्तियों के कारण जर्जर हुए मानव को। मैं इस बात का निर्णय करने में स्वयं को असमर्थ पा रही हूँ।

देखूँ हिम................................देखूँ?

नीले रंग के कमल के पुष्प हैं। उन पर पड़ी हुई ओस की बूँदें हँसती हुई-सी प्रतीत होती है। वे हीरे के समान स्वच्छ हैं। कवयित्री कहती हैं कि मैं प्रकृति की इस हिमबिन्दु युक्त पुष्पित कमलों की सुषमा को देखूँ अथवा मुरझाई हुई आँखों से बहती आँसू की बूँदों को देखूँ (भाव यह है कि एक ओर तो प्रकृति की सुषमा है और दूसरी ओर दुख से पूर्ण मनुष्यो के आँसू हैं मैं किधर की ओर अपनी दृष्टि डालूँ?)

सौरभ पी-पी................................को देखूँ।

एक ओर सुगन्धि को पी-पी कर शीतल मन्द-मन्द वायु चल रही है। दूसरी ओर दुख के घूँट पी कर ठंडी साँस भरने वाले मनुष्य हैं। मेरी समझ में नही आता कि प्रकृति की सुगन्धित वायु को देखना ठीक है अथवा दुख से दुखित व्यक्तियों के दुख-दर्द के प्रति सहानुभूति दिखलाना ठीक है।

खेलूँ................................देखूँ!

एक ओर भारत की वसन्त की प्राकृतिक शोभा है। वसन्तागमन पर वातावरण पराग से युक्त होने के कारण बड़ा मधुर हो रहा है। दूसरी ओर संताप रूपी अग्नि द्वारा जलाया हुआ प्राणों का बाग है जो पतझर के समान यौवन, सुषमा और जीवनोत्साह से शून्य है। इन दोनों में से मैं किसे देखूँ, किस में जा कर मैं आनन्दपूर्वक विहार करूँ?

मकरन्द-पगा................................देखूँ।

एक ओर केसर की सुषमा है जो मकरन्द से युक्त है। उस पर तितलियाँ आनन्दपूर्वक विहार कर रही हैं और मधु पान करके जीवन प्राप्त कर रही है। दूसरी ओर हृदय रूपी पिंजड़े में जीवन रूपी शुक पड़ा हुआ है और उसे एक-कण के लिए तरसना पड़ रहा है अर्थात् प्रकृति की सुषमा अच्छी है या वे जो व्यक्ति विपत्ति के कारण इतने दीन हैं कि उन्हें जीवित रहने तक के लिए पर्याप्त खाद्यान्न भी प्राप्त नही हो रहा। इन दोनों में से किसकी ओर दृष्टि डाली जाए?

कलियों को.........................करुणा देखूँ !

एक ओर कलियों का बना जाल बिछा है। कलियों की अधिकता के कारण लताएं उनमें छिपती-सी दिखलाई पड रही हैं। दूसरी ओर मुसीबत के कारण ऐसी दशा को प्राप्त हुए व्यक्ति है कि वहाँ स्वयं लज्जा को भी दृश्य देखकर करुणा आ जाती है। इस स्थिति में मैं किधर अपनी दृष्टि डालूँ ?

बहलाऊँ.......................शैशव देखूँ ।

नवीन-नवीन कोपले हैं। उन पर बैठ कर हिलते हुए भौंरों के बच्चे झूला-सा झूल रहे है। कवयित्री कहती हैं कि मैं इसी वातावरण में मग्न रह कर इन अलि-शिशुओं को प्रसन्न होता हुआ देखूँ अथवा पत्थरों जैसी भयानक आपत्तियों मे मसले जाते हुए फूलों के समान सुकुमार मानव के बच्चों को देखूँ ?

तेरे असीम.......................को देखूँ ।

प्रकृति का यौवन रंग-बिरंगे फूल-पत्तों से युक्त है। यह दृश्य जगमग करती हुई दीपावली के सदृश उज्जवल और आनन्ददायक है। दूसरी ओर किसी एकान्त स्थान पर अपने जीवन रूपी दीपक को बुझाए हुए कोई व्यक्ति पड़ा है। मुझे बतलाइये कि मैं इनमे से किसे देखूँ ? मैं स्वयं निर्णय करने में असमर्थ हूँ।

देखूँ विहगों .......................मानस देखूँ ।

पक्षी अपनी सुन्दर ध्वनि से कलरव कर रहे हैं। जल भी अपनी स्वच्छन्द गति से कल-कल की ध्वनि करता हुआ प्रवाहित हो रहा है। दोनों की ध्वनि मिल कर, एक हो कर एक सुन्दर वातावरण की सृष्टि कर रही हैं। दूसरी ओर बिना कम्पन के शान्त वीणा के समान किसी मनुष्य का बिखरा हुआ भग्न हृदय है। बतलाइए मैं किस की ओर अपनी दृष्टि डालूँ ?

मृदु.......................अभिनय देखूँ ।

एक ओर कोमल चाँदी जैसी स्वच्छ किरणें है। वे निद्रा के कारण अलसाई-सी प्रतीत हो रही है। दूसरी ओर टकटकी बाँधे दुखी व्यक्तियों के नेत्र हैं। वे बहुत चिन्तित हैं। अब मै प्रकृति की इस शोभा को देखूँ अथवा चिन्तित व्यक्तियों की चिन्ताओं को देख कर उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करूँ ?

तुम्ह में अम्लान………………क्रन्दन देखूँ।

कवयित्री भारत माता के प्राकृतिक सौंदर्य को देख कर और देश के सामाजिक जीवन को देख कर कहती हैं कि हे माँ! तेरे इस प्राकृतिक सौंदर्य को देखने से प्रतीत होता है कि प्रकृति की वस्तुएँ निरन्तर सुन्दर सुखद हँसी हँस रही हैं। उसका यौवन सदैव दृष्टव्य है। परन्तु देश के मनुष्यों का जीवन अभाव ग्रस्त है। वे दुखी होने के कारण अपना करुण-क्रन्दन कर रहे हैं। अब आप ही बतलाइये कि मैं इन दोनों बातों मे से किस को अपनाऊँ? (निर्णय मेरी बुद्धि के परे है अतः आप ही स्वय समझाइये कि मुझे क्या करना उचित है)?

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री का हृदय देश के समाज की दशा से प्रभावित है। समाज पीड़ित है। उनका हृदय द्रवित होता है। अब तक प्रकृति के विविध व्यापारों का कल्पना के सहारे उन्होंने वर्णन किया परन्तु इस कविता में अपने करुण हृदय की अभिव्यक्ति करके समाज जो दुखित है उसके प्रति सहानुभूति दिखलाई है। फलतः उनकी दृष्टि में प्रकृति की सुषमा मानव व्यथित जीवन के आगे कोई महत्व रखती हुई प्रतीत नहीं होती।

२. कविता सरल होते हुए भी यत्र-तत्र सुन्दर कल्पना की उड़ान भी भरती है। भाषा और भाव दोनों सरल हैं।

## गीत २३

प्रसंग—महादेवी जी इस गीत में जीवन का चित्र अंकित करती हैं। वह जीवन से पूर्णतः प्रसन्न और सन्तुष्ट भी दिखलाई नही देतीं। जीवन की व्यथाओं और अभावों का बड़ा मार्मिक चित्र वे प्रस्तुत करती है। साथ ही ऐसे जीवन का निर्माण करने वाले अपने प्रिय प्रभु को उलाहना भी देती है। ऐसा जीवन बनाने की उसको क्या आवश्यकता थी? कविता ऐसे ही मार्मिक और उपालम्भ के भावों से पूर्ण है।

शब्दार्थ—सुप्त=सोती हुई। व्यथाओं=मुसीबतों, वेदनाओं। उन्मीलन =खोलना, सामने आना। झंझा=तेज वायु। अनुरंजित=रंग कर। म्लान =मुरझाना।

दिया क्यों........................गई मुस्कान !

महादेवी जी अपने प्रभु से कहती हैं कि हे प्रभु ! आपने मुझे ऐसे जीवन का वरदान क्यों दिया जिसमें मुझे अभीष्ट आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। मेरे इस जीवन में भूतकाल की नाना स्मृतियाँ आती हैं और मैं अभाव-सा अनुभव करके बार-बार कांप जाती हूँ। मेरे जीवन में तरह-तरह की छिपी हुई व्यथाएँ निकल-निकल कर सामने आती हैं अर्थात् व्यथाओं के कारण जीवन मे उल्लास नही है। अब से पूर्व, जीवन में नाना प्रकार की कल्पनाएँ करके भावी आनन्दोपलब्धि के स्वप्न देखा करती थी, परन्तु अब मेरी कल्पना ने मुस्कराना छोड़ दिया। बात यह है कि जीवन के दुखमय वातावरण मे भावी सुख और आनन्द की कल्पाएँ भी नही की जा सकती। अतः मेरा जीवन दुख से भरा हुआ है। आपने मुझे इस प्रकार का जीवन क्यों दिया ? मुझे आपका ऐसा वर नही चाहिए (यह उलाहना है)।

इसमें है झंझा .............................के गान।

वायु अपने शैशवकाल मे अर्थात् प्रारम्भ में धीरे-धीरे चला करती है और उसके पश्चात् तेज होती है। मेरा जीवन भी इसी प्रकार है। पहले थोड़ी-थोड़ी वेदना और दुख की अनुभूति हो रही है पर यह कालान्तर में तीव्र हो जाएगी। इसके साथ ही मेरा जीवन कलियों के रंगीन वैभव के समान भी रंगा हुआ है अर्थात् कलियाँ नाना प्रकार के रूप-रंग से युक्त वैभवशाली होती है। मैं भी तरह-तरह के सुखो से अनुरंजित हूँ। मेरे जीवन में कभी-कभी ऐसी ही एक हर्ष और आनन्द की ध्वनि पैदा होती है जैसे कि मलयानिल के चलने पर जल की लहरें एक संगीत की ध्वनि पैदा करने लगती है (कहने का तात्पर्य यह है कि मेरा जीवन वेदना और दुख का अनुभव करने के साथ-साथ हर्ष और आनन्द की भी अनुभूति करता है।)

इन्द्रधनु सा .............................अभिमान।

इन्द्रधनुष बादलों से पैदा होता है। उसके पश्चात् वह बादलों में ही विलीन हो जाता है इसी प्रकार कोमल किसलयों पर सुन्दर ओस की बूँदें पडती हैं। उसके पश्चात् वे ओस की बूँदें उन्ही किसलय दलों में विलीन हो जाती हैं। मेरा जीवन भी इसी प्रकार का है। वह जिसमें से पैदा हुआ है उसी में जा कर समा जाने वाला है (अर्थात् जीव की उत्पत्ति ईश्वर से होती

है और फिर जीव ईश्वर में ही जा कर जल की बूँद की भाँति समा कर एकाकार हो जाता है।) कवयित्री कहती है कि मेरे जीवन को इस प्रकार मिटकर परमेश्वर में ही समा जाना है और इस बात से जीवन पल-पल में एक प्रकार का गर्व अनुभव करता है।

सिकता में·································हो म्लान।

रेत में खींची गई रेखा क्षण भर में ही लुप्त हो जाने वाली होती है। अर्थात् रेत की रेखा चिरस्थायी नही होती। दीप की शिखा वायु के द्वारा कम्पित होने पर फिर स्थिर नहीं रह सकती। उसका अस्तित्व क्षणिक होता है। मेरा जीवन भी इसी प्रकार नश्वर और क्षणिक है जैसे कि वालू पर खींची गई रेखा और वायु के द्वारा कंपाई गई दीये की लौ होती हैं। वह काल के कपोलों पर आंसू की भांति ढुलक कर थोड़ी देर में ही सूख जाता है (अर्थात् जीवन काल के वशीभूत है थोड़े समय तक तो जीवन स्थिर रहता है और फिर कभी भी वह अचानक समाप्त हो सकता है। आँख से निकले हुए आँसू के सूखने में जैसे देर नही लगती वैसे ही जीवन के नष्ट होने में समय नहीं लगता—यह भाव है।)

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री ने मानव-जीवन की कुछ व्याख्या-सी की है। मानव-जीवन मे भूत की स्मृतियाँ, वेदना और उल्लास सभी का समन्वय होता है। परन्तु मानव-जीवन नश्वर है और क्षणिक है। वह काल के वश में है।

२. इस कविता मे कवयित्री ने अपने प्रिय प्रभु को एक उलाहना दिया है कि ऐसी स्थिति वाले जीवन के वरदान की मुझे आवश्यकता नहीं जैसा कि आपने मुझे दिया है। कविता के उपालम्भ से कवयित्री का प्रिय से अधिक सामीप्य प्रकट होता है। उपालम्भ उसी स्थिति में दिया जाता है।

## गीत २४

**प्रसंग**—प्रस्तुत कविता मे महादेवी जी ने अपने शैशव जीवन की सरलता, निष्कपटता और उदारता का वर्णन किया है। वह जीवन अपनी सरलता के कारण सदैव कवयित्री जी को याद रहता है। उसके साथ बड़े होने पर वह सरलता, निष्कपटता और उदारता नहीं रहती। कवयित्री को इस प्रकार के

जीवन को देखकर दुख होता है। अन्त की पंक्तियों में उन्होंने यह व्यक्त किया है कि ईश्वर की प्राप्ति भी इस जीवन में न हो सकी। इससे उनके हृदय की वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। अतः कविता अन्त में रहस्यवादी विचारों से भी युक्त है।

शब्दार्थ—आकुल—बेचैन। चातक=पपीहा। अविरल=लगातार। मुकुर=शीशा। संसृति=संसार। चित्रपटी=रंग-बिरंगा कपड़ा। निस्पन्द=शान्त। सौरभ=सुगन्धि। जोहना=देखना। सिकता=मोती। हीरक=हीरा।

नव मेघों ........... .... .........करने छाया।

व्याख्या—जिस समय चातक पक्षी का सुकुमार हृदय नवीन मेघों के लिए इस प्रकार मचलता था जैसे कि बालक का मन मचला करता है अर्थात् चातक पक्षी बहुत बड़ी उत्कण्ठा से जल-दान के लिए बादलों की ओर देखता था, उस समय मेरी इन आंखों से करुणा के कारण सावन के मेघों की भांति आँसू घिर-घिर कर आ जाते थे। जब मैं यह देखती थी कि तितलियों के रंग-बिरंगेपन को सूर्य की किरणें अपनी उष्णता के कारण नष्ट कर रही हैं तो मेरे नेत्र उन तितलियों के ऊपर छाया करने के लिए व्याकुल हो जाते थे। (भाव यह है कि प्रकृति के किसी एक उपादान द्वारा दूसरे के प्रति प्रदर्शित तनिक सी कठोरता भी कवयित्री के दयालु हृदय में द्वितीय के प्रति सहानुभूति की अजस्र धारा की सृष्टि कर दिया करती थी)।

जब अपनी........ ........ .. जीवन-प्याली।

रात्रि के समाप्त होने पर तारागण समाप्त हो जाते हैं और ओस की बूंदे दिखलाई देने लगती हैं। कवयित्री कल्पना करती है कि रात्रि अपने दुख के कारण निकले हुए निश्वासों से तारागण को तपा कर पिघला देती थी और पिघल-पिघल कर वे ओस के रूप में पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। कवयित्री को उनसे बड़ी सहानुभूति थी कि बेचारे क्यों पिघल गये, कितने पिघल गए इसलिए ओस की बूंदों को सहानुभूतिवश गिनती-सी रहती थी। फिर कहती है कि प्रातःकाल कलियाँ ही कलियाँ दिखलाई देती है। वे लाल-लाल होती है। आकाश की शोभा उनके सामने कुछ नहीं होती। मानो उन कलियों की लाली ने आकाश को बहुत लज्जित कर दिया हो—ऐसा

लगता था। उस समय मेरे हृदय में प्रसन्नता के कारण रोमांच हो जाता था और मेरी जीवन रूपी प्याली आनन्द के रस से भर कर छलकने लगती थी (अर्थात् मुझे उस समय बहुत अधिक आनन्द की उपलब्धि होती थी)।

घिर कर ..........................जाता बन ?

शैशव के वर्षाकालीन आनन्द को व्यक्त करती हुई महादेवी जी कहती हैं कि जब वर्षा के दिनों में लगातार मेघों के आच्छादन से आकाश परिपूर्ण होता था और घिर कर आये बादल नीचे होने के फलस्वरूप नभमण्डल ही झुका हुआ सा प्रतीत होता था उस समय मेरा मन किसी ऐसी वेदना से भर जाता था जिसका कथन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार तबले की ताल के द्रुत और मन्द होने के आधार पर ही नर्तकी द्रुत और मन्द नाचा करती है उसी प्रकार बादलो की तेज गर्जना के साथ बिजली भी तेजी से चमकती थी मानो बादल ताल देते थे और बिजली रूपी नर्तकी उसी गति से नाचती थी जिस गति से कि बादल गर्जन रूपी ताल देते थे। उस समय मेरे मन रूपी बाल-मयूर को बहुत आनन्द आता था और उसके लिए वह एक मधुर संगीत बन जाता था।

किस भाँति..............................थे अपने।

यह मैं किस प्रकार कह सकती हूं कि सृष्टि के विविध पदार्थों के साथ परिचित होने के मेरे वे दिन कैसे थे ? (अर्थात् मेरा तत्कालीन सृष्टि के जड़-चेतन के साथ परिचित होना सर्वथा अकथनीय है। मेरा यह हृदय दूसरों के दुख से शीघ्र ही दुखी हो जाता था।) दूसरों की वेदना को देख कर मेरा मन उनके साथ ऐसा घुल-मिल कर एक हो जाता था जैसे मिश्री घुल कर सर्वथा एकम-एक हो जाती है (अर्थात् मन सहानुभूति से भरा हुआ था) उस समय मेरे मन रूपी दर्पण में अपनेपन की छाया नहीं पड़ती थी (अर्थात् मेरा मन निजी स्वार्थों से परिपूर्ण नहीं था वरन् दूसरों के हित में लगा हुआ था।) मेरे मन रूपी मुकुर में दूसरों के सुख-दुख ही प्रतिबिम्बित होते हुए दिखलाई देते थे। अर्थात् मैं दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख को देखकर सुखी होती थी। मेरी निजी सुख-दुखात्मक कामनाएँ और अनुभूतियाँ कुछ नहीं थीं— यह भाव है।)

तव सीमा ..........................था पीड़ा।

मैं अपने शैशव में छोटी थी परन्तु मेरा सृष्टि के असीम व्यापारो के साथ परिचय था। मैं बचपन मे ही सृष्टि के विविध व्यापारों से परिचित थी। सृष्टि के साथ सहानुभूति रखने के कारण कभी तो मैं प्रसन्न हो कर मुसकराती थी और कभी मुझे सृष्टि के पदार्थो को देख कर दुःख होता था और इसीलिए मेरे आँसू निकला करते थे। प्राकृतिक संसर्ग से सुख और दुख, मुस्कान और अश्रु का इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान-सा होता रहता था। सुख-दुख परिवर्तन के मार्ग मे दो वच्चों की भाँति क्रीड़ा करते थे (भाव यह है कि एक क्षण सुखी और दूसरे क्षण दुखी होते रहने की मेरी स्थिति थी मुझे प्रकृति की विशाल और सुख-दुखात्मक अनुभूति प्रदान करने वाली रचना को देख कर वड़ा आश्चर्य होता था। साथ ही जग की स्थिति को देख कर। मुझे दुख होता रहता था और जग की वस्तुएँ मानो मुझे सहानुभूति प्रदान करने के लिए वुलाया करती थी।

ये दोनों.........................छू कर जीवन।

संसार एक चित्रपट के समान था। उस चित्रपट के सुख और दुख दो छोर थे (अर्थात् संसार मे सुख और दुख का अनुभव मुझे उसके ससर्ग से हुआ करता था।) बिना संसार के दुखों के प्रति सहानुभूति दिखलाए मुझे अपने निजी दुख की कोई परवाह नही थी (अर्थात् मेरा निजी दुख जिसमें मुझे आनन्द आता हो और कुछ नही था।) संसार को दुखी देख कर दुखी होना ही मेरा दुख था और सम्पूर्ण सृष्टि की शोभा मेरे बिना व्यर्थ ही जा रही है ऐसा मैं अनुभव करती थी (अर्थात् मुझे ऐसा लगता था कि प्राकृतिक शोभा मेरे योग की अपेक्षा करती है।)ऐसा मेरा सरल, निष्कपट और भोला जीवन था। परन्तु बचपन के बीतने पर वह भोलापन जाता रहा। न मालूम मेरा वह सब भोलापन किसने चुरा लिया। उस समय मुझे अपना कुछ भी ज्ञान नही था। मैं अपने को विस्मृत किए सुखी थी। परन्तु अब जीवन की वास्तविकता ने मुझे चकित कर दिया है। जीवन को किसी ने आकर और छू कर एकदम बड़े आश्चर्य से भर दिया है (भाव यह है कि समझ आने पर जीवन की शैशव-कालीन विस्मृति की अवस्था के सुख की समाप्ति हो गई।)

जाती नव जीवन..................आँसू बन कर?

बादल अपनी वर्षा से कण-कण मे नवजीवन ला देते है। कवयित्री कहती

हैं कि पहले बचपन में मेरी करुणा रूपी घटा सृष्टि के कण-कण में नव-जीवन का संचार बादल की वर्षा के समान कर जाती थी। अब वह करुणा की घटा शान्त हो कर मेरे मन के छोटे से बंधन में बँधी सो रही है (अर्थात् पहले मेरा मन द्रवीभूत हो कर सब पर करुणा करता था पर अब मेरी करुणा अपने दुख तक ही सीमित है।) कभी मुझे सुख होता है तो उसके फल-स्वरूप मेरे ओठों पर मुस्कराहट आ जाती हैं। चाहे सुख थोड़ा और क्षणिक ही है पर मुझे पल-भर को तो प्रसन्न कर ही देता है। कभी मुझे दुख होता है। वह दुख आंसू बन कर मेरे नेत्रों में अभिनय करता है (अर्थात् जब मुझे दुख होता है तो मेरे नेत्रों मे दुख के कारण आँसू आ जाते हैं।)

अपनी लघु...... ......................निर्वासित।

(कवयित्री का दृष्टिकोण अब बचपन के चले जाने पर दूसरे प्रकार का हो गया है। अब उनके विचार विशालता को छोड़कर संकुचित और अपने तक ही सीमित हो गए हैं। (इसलिए वे कहती हैं कि) मेरी निश्वासों से अब मेरी अपनी ही कामनाएँ निकलती हैं (अर्थात् अब मैं अपनी संवेदना अपने तक ही सीमित रखती हूँ। मेरा हृदय अब संकुचित हो गया है। उसमें सृष्टि के कण-कण के साथ सहानुभूति व्यक्त करने की शक्ति नही है)। अब हृदय अपनी ही बातों से भरपूर रहता है। पहले मैं सृष्टि की सभी वस्तुओं में अपनत्व के दर्शन करती थी। सबका सुख-दुख मेरा ही सुख-दुख होता था। परन्तु अब मैं सबसे अलग हो कर अपने ही सुख-दुख की कामना में लीन रहती हूँ। इस प्रकार मेरे जीवन-समुद्र की सरसता बालू के कणों की शुष्कता में परिणित हो गई है (अर्थात् पहले मेरा जीवन बड़ा सरस था, वह सभी को सुख और सांत्वना प्रदान करता था, किन्तु अब स्वार्थवश मैं अन्य जीवों के लिए किसी लाभ की नहीं रह गई हूँ।)

स्मित ले..............................निर्झर।

(महादेवी को अपने ईश्वराभिमुख होने के मार्ग में प्राकृतिक व्यापारों से सहायता मिलती है क्योकि प्रभु की अनुभूति प्रकृति के भीतर उन्हें होती रहती है। इन पक्तियो में उन्होने अपनी प्रभु की प्राप्ति मे प्रयत्नशील दशा का वर्णन किया है।) प्रभात होता है। मुझे एक आनन्द आता है मानो वह मुझे मुस्कान देने के लिए ही आता हो। सन्ध्या मुझे नक्षत्र और चन्द्र आदि

के दीपक दे जाती है। दिन अपनी सुनहरी आभा को सर्वत्र फैलाकर समाप्त होता है और रात्रि ओस के रूप मे मोती देकर मुसकराती हुई लगती है। झरने सदैव कल-कल की ध्वनि से प्रवाहित होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अपनी अस्पष्ट ध्वनि से मेरे प्रभु-प्राप्ति के अनन्त मार्ग मे सगीत बिछाते हुए चलते हैं (अर्थात् इस प्रकार मेरे प्रभु-प्राप्ति के मार्ग मे प्राकृतिक पदार्थों से मुझे सहायता मिलती है और मेरा मार्ग सुख एवं आनन्द से व्यतीत होता है।)

यह साँसें ............. ... . ......एकाकी पन पर।

आकाश में तारे निकलते हैं और विलीन हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि वेदना के कारण मेरी जो उत्तप्त सांसे निकलती हैं उनको आकाश गिनता है। गिनते-गिनते आकाश थक कर नक्षत्रो मे छिपने के बहाने मानो अपने नेत्र बन्द करके सो जाता है। मेरा हृदय प्रभु प्राप्ति के प्रयत्न में बिल्कुल विरक्त रहता है, खाली रहता है उसके खालीपन को वायु आकर भर देती है। वायु में सुगन्धि होतीहै। वह ही वहाँ व्याप्त हो जाती है प्रकृति मेरी प्रिय चिर-सहचरी है। प्रकृति के नाना पदार्थ मेरी बाट देख रहे हैं कि कब वे मेरे काम आवे और मैं उनकी सहायता से अपने साधन मे सफल होऊँ। किन्तु मेरा मन किसी की सहायता की ऐसी अपेक्षा नही करता। यह केवल प्रिय का सान्निध्य चाहता है। प्रिय के बिना मन अकेला रहता है और अपने अकेलेपन पर दुखी होता रहता है।

अपनी कण-कण............. .. प्यारी मे।

मैंने सृष्टि के कण-कण मे बिखरी हुई अपनी निधियों को कभी नही पहचाना है अर्थात् मैं सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का रूप देख सकती हूँ किंतु मै कभी उन्हे पहचान पाने में समर्थ नही हुई। इसका कारण मेरा संकुचित हृदय है। मैं अपने आप में ही सीमित रहती हूं। मेरे इस प्रकार के संकुचित विचार मेरे छोटेपन की न कही जा सकने वाली कहानी है। (अर्थात् मेरे अन्दर संकुचित भाव और स्वार्थ-तत्परता-जन्य छोटापन इतना अधिक वर्तमान है कि उसका बखान करते-करते बहुत समय लग जाएगा)। मै अपने हृदय को इस प्रकार का बनाकर भी ईश्वर की प्राप्ति की आकांक्षा रखती हूं। मानो मै जुगनू के प्रकाश में दिन को ढूँढने का उपहासास्पद और असम्भव कृत्य को

कर रही हूँ। यह कार्य ठीक इसी प्रकार है जैसे कि मेरा मन हीरे की प्याली मे रेत के कण इकट्ठे कर रहा हो (भाव यह है कि मेरा जीवन संकुचित विचारों के कारण पहले जैसा सरस नहीं रहा)।

विशेष—इस कविता में कवयित्री ने अपने जीवन की दो झाँकियों का वर्णन किया है। एक शैशव की सरस, अबोध और पर-दुख-कातर स्थिति है और दूसरी प्रौढता की संकुचित, शुष्क, और साधनारत स्थिति है। कुछ छन्दो में ईश्वर प्राप्ति के लिए किए गए प्रयत्नों का भी उल्लेख है। वेदना-भाव और प्रिय प्राप्ति का प्रयत्न कविता से व्यक्त होता है।

## गीत ८५

प्रसंग—अतिथि अचानक आता है चला जाता है। किन्तु एक अतिथि ऐसा है जो आकर फिर और किसी अतिथि के आने की आवश्यकता नहीं छोड़ता। वह है मृत्यु। कवयित्री ने मृत्यु को प्राणों का अन्तिम अतिथि कहा है। अतिथि स्वागत करने का पात्र होता है इसलिए कवयित्री भी मृत्यु रूपी अतिथि से डरती नहीं है वरन् उसका स्वागत करती है। वह मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहती है कि तुम मेरे यहाँ इस प्रकार से आना। कवयित्री ने अपने सुन्दर, स्पष्ट, निडर भाव मृत्यु को सम्बोधित करते हुए इस कविता के रूप में प्रस्तुत किए हैं।

शब्दार्थ—पाहुन=अतिथि। अञ्जन=अन्धकार, कालिमा। सुरभित=सुगन्धित। वारिद=बादल। श्रान्त=थका हुआ। अज्ञात लोक=आकाश। छायातन=छाया ही जिसका शरीर है, मृत्यु। निस्पन्द=गतिरहित। सस्पन्द=गतिशील। दिव=स्वर्ग। गर्वीला=घमण्डी।

प्राणों के ······························ आना बन।

व्याख्या—(कवयित्री अचानक आ जाने के कारण मृत्यु को अतिथि मानती हैं और क्योंकि मृत्यु के पश्चात् कोई अतिथि का आ सकना सम्भव नही है इस लिए वह मृत्यु को अन्तिम अतिथि मानकर कहती है) हे प्राणों के अन्तिम अतिथि! तुम मेरे पास एक बादल की तरह आना। कैसे बादल की तरह? जो कि चांदनी से धुले हुए अन्धकार के समान होता है अर्थात् बादल चाँदनी से सफेद और सघनता के कारण काले-काले होते हैं। बिजली के रूप में अपनी

मुसकराहट फैला कर बादल आते हैं। सुगन्धित वायु के पंखों द्वारा बादल आकाश में घिर आते है। (वायु ही बादलों को घेर कर ले आती है—यह भाव है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बादल भयानकता और घिर कर आने की क्रिया से युक्त होने पर भी सरसता का संचार करता है उसी प्रकार मृत्यु भयावह और कष्टप्रद होते हुए भी मेरे लिए उस प्रकार का कष्ट का अनुभव कराने वाली न हो बल्कि मृत्यु के आलिंगन में बादलों के जल जैसी सरसता हो।)

जो श्रान्त........................बेसुध जीवन!

थके हुए व्यक्ति को रात्रि में सुख और शान्ति मिलती है। उसके लिए रात्रि इस प्रकार सुखद होती है जैसे उष्णता को सहन करते रहने वाले व्यक्ति को छाया सुखद होती है और फिर रात्रि दिन भर के कार्य से थके और निद्रा के कारण भारी पलकों वाले मनुष्यों में मस्त बना देने वाली निद्रा की हाला ढुलका देती है (अर्थात् रात्रि में व्यक्ति सुखपूर्वक बेसुध होते है।) महादेवी जी मृत्यु से कहती हैं कि हे मृत्यु तुम इसी प्रकार मेरे जीवन को बेसुध तो बनाना पर रात्रि की तरह सुख से बेसुध बनाना।

अज्ञात लोक........................छायातन।

हे मृत्यु तुम छायामात्र ही शरीर धारण करने वाली हो। तुम छिप-छिप कर मेरे पास आना। तुम्हारा आना इसी प्रकार होना चाहिए जैसे किसी अज्ञात लोक से छिप-छिप कर सूर्य की किरणें आया करती हैं। जब सूर्य की किरणें निकलती हैं तो फूल खिल जाते हैं। मानो वे ही (रश्मियाँ) उन फूलों के हृदय को खुलवाती है ताकि वहां उनके पराग का पान कर सकें। इसी तरह तुम भी मेरे हृदय रूपी सुमन को खुलवाना।

कितनी........................शीतल मन।

मेरा स्वभाव सदा करुणा से द्रवित होने का और सुषमा से प्रसन्न होने का रहा है। दूसरे शब्दों में मैंने करुणा के मादक मधु को और सुषमा की सुन्दर लाली को अपने नेत्रों में समा लिया है। वहां से छानकर मैंने अपनी जीवन रूपी प्याली भर ली है। हे मृत्यु! जब तुम मेरे पास आओगी तो तुम्हें यह सब कुछ पीने को मिलेगा और उसे पीकर तुम निस्सन्देह अपने मन को शीतल कर सकोगी।

हिम से ································यह तन !

मृत्यु का हृदय तो जड़वत् निष्कम्प होता है क्योंकि यदि वह सहृदय होती तो उचित-अनुचित का विवेक भी रखती। कवयित्री कहती हैं कि वह इसलिए निस्पन्द हृदय रखती है क्योंकि हिम के कारण उसका हृदय नीला पड़कर कम्पन-रहित हो गया है। इसलिए कहती है कि हे मृत्यु ! तुम मेरे जीवन रूपी दीपक को धारण करके अपने हृदय को उष्णता से पिघला कर फिर सस्पन्द बना लेना और फिर अपने शरीर को हिम न होने देना (दीपक की उष्णता से तरलता बनी रहेगी।

कितने युग ························व्यापर-विसर्जन।

मैंने अपने जीवन में अश्रु, वेदना सौर सौन्दर्य की निधियाँ एकत्र की है। इन निधियों को इकट्ठा करते हुए कितने ही युग बीत गये। हे मृत्यु ! मेरी इन सारी निधियों को तुम कुछ एक आँसुओं के बदले में ही मोल ले लेना। अब मैं एकत्र करने और मोल देने के व्यापार का त्याग करना चाहती हूँ। (अर्थात् अब मैं भी जीवन में अधिक और कुछ नही करना चाहती।)

हैं अन्तहीन ····························सूनापन।

संगीत की एक लय होती है और उस लय में एक कम्पन होता है। जो कोई उस संगीत को सुनता है वह उसके स्वरों की लहर में अपने जीवन की थकावट को धो देता है अर्थात् अपने को थोड़ी देर के लिए भूल सा जाता है। कवयित्री मृत्यु से कहती हैं कि यह संसार भी इसी भाँति संगीत की समाप्त न होने वाली एक लय के समान है और पल-पल व्यतीत होने का समय मानो उसका कम्पन है। इस जग के संगीत की लहरों में तुम भी आत्म-विस्मृत हो जाना और संगीत की मधुरता के समान मेरे हृदय के सदैव विरही होने के कारण सूनेपन को आनन्द से भर देना।

पाहुन से ··························नीरव क्षण !

जीवन में पग-पग पर सुख और दुख की अनुभूति होती है। एक के बाद दूसरा आता-जाता रहता है। क्योंकि ये आकर थोड़े समय रह कर चले जाते है इसलिए ये अतिथि के समान है। जीवन में इस सुख और दुख के कारण ही सारा कोलाहल रहता है (अर्थात् सुख के गर्व से और दुख की वेदना से दुनिया प्रभावित होती हुई दिखलाई देती है)। इस प्रकार के कोलाहलपूर्ण जीवन

बहुत दूर होते हैं। भला इतनी दूर कैसे जाया जाना सम्भव है? और यहाँ उनकी छाया को भी मैं प्राप्त नहीं कर सकती। बस अपनी इस स्थिति पर कि प्रिय मेरे समक्ष है मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मैं छटपटाती रहती हूँ। मुझे प्रिय का इस स्थिति मे भी सामीप्य-लाभ नही होता।

वे चुपके........ .............. ........न पाऊँ!

कभी वे चुपके से मेरे हृदय मे उच्छ्वासें वन कर आ जाते हैं। उनका यह छिपना बिल्कुल अज्ञात होता है। इस प्रकार अपनी सांसों मे होने के कारण मैं उसका अनुभव तो करती हूँ किन्तु उन्हें रोक पाने में समर्थ नहीं हो पाती (तात्पर्य यह है कि सांसों को रोकना सम्भव नहीं और प्रिय सासें ही बन कर आते है इस प्रकार वे जानते हुए भी हाथ से निकल जाते है और मैं उन्हें प्राप्त नही कर पाती।)

वे स्मृति................ .....भूल न जाऊँ!

मेरे प्रियतम मुझे अनेक स्थलों पर अपने प्राप्त न होने की निष्ठुरता का परिचय देते हैं। इसके अलावा वे मुझे अपनी निष्ठुरता की सदैव ही याद दिलाते रहना चाहते है। इसके लिए वे स्मृति वन कर मेरे हृदय में खटकते रहते है। इस प्रकार उनकी स्मृति तो मुझे आती ही रहती है, साथ ही उनके प्राप्त न होने से उनकी निष्ठुरता का भी उतना ही ध्यान रहता है। ऐसा लगता है वे जान-बूझ कर इस तरह मुझे तड़पाते रहते है।

विशेष—१. इस गीत में कवयित्री की प्रिय-प्राप्ति के लिए विकल स्थिति का वर्णन है। वह नाना प्रकार से प्रिय को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं परन्तु सारे प्रयत्न विफल होते हैं। ऐसा लगता है ईश्वर जान-बूझ कर उनकी धैर्य की स्थिति को मापना चाहता है। इसमें आत्मा और परमात्मा की इस प्रकार की क्रीड़ा का चित्रण किया गया है।

२. महादेवी जी का प्रिय का सदैव विरह व्याप्त है। इस बार वे अपनी दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति करके यह दिखलाती है कि प्रिय जान-बूझ कर उन्हे विकल करता है। प्रिय का आभास ही होता है, प्राप्ति नही।

# गीत २७

प्रसंग—इस कविता में महादेवा जी ने प्रभु-वियोग से प्राप्त अपनी स्थिति का चित्रण किया है। उनका अश्रु-प्रवाह निरन्तर प्रवाहित है। यदि सच्ची और शाश्वत शान्ति कभी मिल सकती है तो वह ईश्वर की प्राप्ति से ही सम्भव है। ऐसी ही रहस्यात्मक उक्तियों से यह कविता परिपूर्ण है।

शब्दार्थ—आविल=धुंधला, विकल। पंकिल=कीचड़ वाला। फेनिल=झागों वाला। अधीर=वेचैन। नीरज=कमल। सित=सफेद। लज्जित=संकुचित-सा। मीलित=वंद-सा, अधखिला। विलसित=शोभायमान। विकसित=प्रफुल्लित।

प्रिय इन..........................अधीर !

व्याख्या—अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कवयित्री कहती है कि हे प्रियतम ! मेरे इन नेत्रों का अश्रुरूपी जल युग-युग से बिना रुकावट के अधीर हो कर प्रवाहित हो रहा है अर्थात् तुम्हारे विरह के कारण आंसू निकलते है और आँसुओं को निकलते-निकलते युग वीत गये। अश्रु-नीर है कैसा ? इसको वतलाते हुए वह कहती है कि यह अश्रु-नीर दुख के कारण मैला है और सुख के कारण भी कीचड़ जैसा कलमष युक्त होता है अर्थात् मुझे सुखों के कारण और दुखों के कारण दोनों ही प्रकार से विकलता और मन की मलिनता प्राप्त हो रही है। निरन्तर अधिक मात्रा में प्रवाहित नीर में वुलवुले और फेन आ जाते हैं। यह सुख-दुख मिश्रित मेरी आंसुओं की धारा स्वप्नो से फेन वाली है अर्थात् मैं तरह-तरह के स्वप्नों की कल्पना करती हूँ वे मानो इस जल के फेन है। ऐसा अश्रु-नीर निरन्तर ही वहुत समय से प्रवाहित हो रहा है। मैं चिर-वियोगिनी हूँ—यह भाव है।

जीवन पथ..........................तृषित तीर !

जीवन का पथ वड़ा दुर्गम है। दुर्गम स्थान पर जल का प्रवाहित होना अपेक्षाकृत कठिन होता है। किन्तु इस अश्रु-नीर ने जीवन के दुर्गम मार्ग को भी अपने प्रवाह से जल-युक्त और गीला करके उसकी शुष्कता दूर करदी है (अर्थात् जीवन की कठिन-से-कठिन परिस्थितियों को भी आँसुओं ने अपनी आर्द्रता से युक्त कर दिया है।) यह जीवन सरिता के सुख-दुखात्मक मिलन-विरह के दोनों प्यासे किनारों को शीतलता प्रदान करता है ( अर्थात् अपने

हृदय की आर्द्रता से सुख और दुख दोनों में ही शान्ति मिलती है।)

इसमें उपजा.............................मधुर पीर !

इस अश्रु रूपी नीर में हृदयरूपी कमल स्वाभाविक रूप से अपने-आप उत्पन्न हो गया है। यह श्वेत कमल की तरह है। बड़ा कोमल है और लज्जा के कारण झुका हुआ सा है तथा विरह के कारण अधखिला और मुरझाया सा हो रहा है। इसमे वेदनारूपी मधुर-सुगन्धि का वास है (अर्थात् जैसे कोमल कमल में सुगन्धि होती है वैसे ही हृदय मे मधुर पीड़ा भरी हुई है)।

इसमें न.............................मधुप-भीर !

इस हृदयरूपी कमल में पंक का चिह्न भी बाकी नहीं है (अर्थात् अब हृदय दुख और वासनाओं से युक्त हो गया है।) जिस प्रकार कमल के पत्ते पर उसकी सुकुमारता के कारण तनिक-सा भी पानी ठहर नही पाता उसी प्रकार इस हृदयरूपी कमल पर भौतिक सुख की लालसा बिल्कुल स्थान प्राप्त नही करती। इसको कमलो पर आ कर जगाने वाली भौरो की भीड भी आ कर नही जगाती अर्थात् विश्व भी अब इस हृदय से कुछ नहीं कहता।

तेरे.... .............................समीर !

कमल की स्थिरता के लिए जल, विकास के लिए सूर्य की दृष्टि और सौरभ-प्रसार के लिए समीर की आवश्यकता है। कवयित्री कहती है कि मेरे इस हृदयरूपी कमल को बिकसित करने के लिए हे प्रभु ! आप अपनी करुणा का जल देने की कृपा करे अर्थात् तुम्हारी कृपा के बिना यह हृदय-कमल मुरझा जायेगा। इस हृदय-कमल को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य की दृष्टि के समान आपकी चितवन होनी चाहिए और तेरी श्वासों की ही वायु का स्पर्श मेरे इस हृदय-कमल को मिले तभी वह अपनी सुन्दर सुगन्धि का प्रसार कर सकता है अन्यथा नही (अर्थात् मेरे हृदय को वैसा ही बनाये रखने के लिए आपकी करुणा, दया-दृष्टि और आपका सामीप्य वांछनीय है।)

विशेष—इस गीत में कवयित्री ने यह व्यक्त किया है कि यदि हृदय में सात्विक भावों का उदय हो जाये तो वह प्रभु को सरलता से प्राप्त कर सकता है। दूसरे, सात्विकता के भाव बनाये रखने के लिए ईश्वर की कृपा का होना आवश्यक है। ईश्वर जिस पर कृपा करे वही ऐसे भाव रखने मे समर्थ होता है

और फिर उस पर सांसारिक वासनाओं तथा सुख-दुखादि का प्रभाव नहीं होता।

## गीत २८

**प्रसंग**—महादेवी जी ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। इस कविता में वसन्त-रजनी की शोभा का वर्णन है। रजनी को एक स्त्री के रूप मे माना गया है। इस कविता में छायावाद की विशेपता दृष्टव्य है।

**शब्दार्थ**—शीश-फूल=एक आभूषण। वलय=कड़ा। अवगुण्ठन=घूँघट। मुक्ताहल=मोती। अभिराम=सुन्दर। किंकिणि=घुँघरू। तरंगणि=तरंगों वाली। दुकूल=दुपट्टा। अभिसार=प्रिय से मिलने के लिए नायिका का चुपके चुपके जाना। सिहरन=कम्पन।

धीरे-धीरे ....................... वसन्त-रजनी।

**व्याख्या**—वसन्त की रात्रि को एक नायिका के रूप मे चित्रित करते हुए महादेवी जी कहती है कि हे वसन्त-रजनी! तुम क्षितिज से पृथ्वी पर धीरे-धीरे उतर कर आओ। (स्त्री का रूपक बांधने के लिए कवयित्री कई बातें चुनती है। स्त्री के वेणी, शीश फूल, कड़ा और घूँघट होता है तथा जिधर भी देखती है सुन्दरता प्रसारित किया करती है।) यहाँ वसन्त-रजनी की तारागण से युक्त ही वेणी है। उसका शीश फूल नामक आभूपण चन्द्रमा ही है, जो बड़ा नवीन आभूपण है। उसकी किरण (चन्द्रमा की) ही मानो उस वसन्त-रजनी 'रमणी' का कड़ा है और सफेद बादल ही मानो घूँघट है। ऐसी वसन्त-रजनी रूपी स्त्री अपनी दृष्टि से अवश्य ही मोतियो की सुन्दरता को प्रसारित कर देती है। इसलिए कवयित्री कहती हैं कि वसन्त-रजनी, तू अपनी दृष्टि से सर्वत्र ही मुक्ताओं की-सी कान्ति फैला दे। इस प्रकार से तू पुलकती हुई यहाँ पर आ।

मर्मर की........................वसन्त-रजनी।

इसके अलावा रूपक की और अधिक योजना करते हुए वह कहती है कि तुम (वसन्त-रजनी) मर्मर की ध्वनि को, जो पत्तों से निकलती है, अपने नूपुर बना लो पुष्पों पर गुंजारते हुए जो भौरे है उनकी तुम बजने वाली करधनी बना लो और पैरों में धीरे-धीरे प्रवाहित होने वाली सरिता के प्रवाह के समान अलसायापन भर लो। इस प्रकार से सुसज्जित होकर हे वसन्त-रजनी! तुम

अपनी कोमल [illegible] तुम [illegible] आओ।

पुलकित............ ............आ वसन्त रजनी!

([illegible])

सिहर............................ ............आती रजनी!

([illegible]) इस प्रकार हे वसन्त रजनी! तुम भी अपने अन्दर एक सिहरन लिए चलती हुई आओ।

विशेष—इस कविता में कवयित्री ने प्रकृति का वर्णन किया है। वसन्त-रजनी को एक ऐसी नायिका के रूप में चित्रित किया गया है जो अभिसार करने जा रही है। प्रकृति के विविध व्यापारों को नायिका के अंगों का रूपक दिया गया है। कविता में रूपक अलंकार दृष्टव्य है। सुन्दर शब्द-योजना तथा चित्रात्मकता इस गीत का प्राण है।

## गीत २६

प्रसंग—महादेवी जी ने इस कविता में प्रकृति के सुभग और मादक पदार्थों का वर्णन किया है। प्रकृति को सुन्दरता से भरी हुई और मुस्काती हुई देख कर कवयित्री भी प्रसन्न होती हैं। उन्हें इस वातावरण से ऐसा लगता है जसे यह सब उनके प्रिय के आगमन में हो रहा हो। इसीलिए वह प्रसन्न होती हैं। फिर उन्होंने अपनी पीड़ा का चित्रण किया है और प्रिय से मिलने की इच्छा प्रकट की है।

शब्दार्थ—शेफाली=काले फूल की नेवारी। मौलश्री=एक वृक्ष। प्रवाल=मूँगा। हरसिंगार=एक पौधा जिसके पुष्प अपने आप गिरा करते हैं। इन्दीवर=कमल। वानीर=बेंत का पेड़। विहाग=गीत। उन्मन=व्याकुल।

पुलक-पुलक ......... ....... ......झर-झर।

व्याख्या—कवयित्री कहती हैं कि आज मेरे मन, तन और नयनों की स्थिति विचित्र हो रही है। उधर प्रकृति के विविध पदार्थ भी कुछ ऐसे ही भाव प्रकट करते हैं जिनसे मुझे अपने प्रिय के आगमन की सम्भावना जान पड़ती है क्योंकि मेरा हृदय बार-बार पुलकित हो रहा है, अज्ञात प्रसन्नता वहाँ निवास कर रही है, मेरा शरीर भी अचानक एक कम्पन का अनुभव कर रहा है और मेरे नेत्र भी झर-झर कर आ रहे है। आखिर इस सब का क्या कारण है? काली नेवारी के फूल बड़े संकोच और लज्जा का अनुभव करते हुए-से खिल रहे हैं। मौलश्री की डाली-डाली बड़े अलसाए हुए रूप में दिखलाई देती है। कुंजों के बीच प्रवाल (मूँगे) दिखलाई देते हैं। वहीं से चमकीले तारे भी दिखलाई देते है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे इन मूँगों और प्रकाशित तारों ने आकाश में एक चमकीली जाली बुन दी हो। पवन मन्द-मन्द गति से चल रहा है मानो वह सुगन्धि के भार के कारण शिथिल हो कर चल रहा है और ऐसा लगता है कि हवा मन्द-मन्द इसलिए चल रही है कि वह मधु के कणों को गिन-गिन कर धीरे से चलती है। हरसिंगार के पुष्प स्वतः ही नीचे गिर रहे हैं। वह गिरते हुए झर-झर की ध्वनि कर रहे हैं (यह सभी रमणीयता कवयित्री को प्रिय के आगमन की सूचक प्रतीत होती है)।

पिक की.................................दृग इन्दीवर।

कोयल मधुर स्वर मे बोल रही है। उसकी मीठी बोली एक वंशी के समान सुरीली तान छेड़ रही है। उसे सुन कर भ्रमरी भी आनन्द में मग्न हो कर नाचने लगी। बड़ा सरस लाल रंग का पाटल का पुष्प अपनी अरुणिमा चारों ओर प्रसारित कर रहा है। उसकी इस लाली के प्रसार से ऐसा लगता है मानो वह अंधकार के ऊपर अपने लाल पराग की रोली फेंक रहा है (उषा और संध्या के समय की अरुणिमा भी अंधकार के ऊपर अपनी लाल-लाल आभा फैला देती है।) फिर एक सुन्दर कल्पना करते हुए कवयित्री कहती है तालाब है, तालाब मे कमल खिले हुए है और धीरे-धीरे अंधकार आ रहा है मानो निशा रूपी नायिका ने तालाब रूपी दर्पण को अपनी गोद में ले रखा है। उस तालाब के कमल के पुष्प मानो उस निशा-नायिका के कमल के समान नेत्र हैं और वह दर्पण में अपना मुख देखकर आँखों मे अंजन लगा रही है। इस प्रकार सारी प्रकृति सुन्दर, सरस, सुखद वातावरण से युक्त होकर कवयित्री को उनके प्रिय के आगमन का आभास दे रही है अन्यथा प्रकृति क्यों इतनी मधुर बन पाती?

आँसू बन.................................संचित कर।

इन पंक्तियो में कवयित्री प्रकृति को अपने अनुसार देखती है। पुष्पो पर ओस की बूँदे पड़ी है। वह कल्पना करती हैं कि तारकगण आंसुओ का रूप धारण करके इधर आ गए है। उन्होने पुष्पों के हृदयों में अपने शयन के लिए सेज बना ली है। बेत का समूह वायु के वेग के कारण कम्पायमान हो कर शब्द कर रहा है (मानो वह भी रुक-रुक कर अपने हृदय मे निहित वेदना को एक बड़े करुण गीत के रूप मे व्यक्त कर रहा है।) निद्रा अब उन्मनी हो कर घूम रही है (आज निद्रा का साम्राज्य कम होता जा रहा है—यह भाव है)। वह अपने स्वप्नों की निधि का यथेष्ट संचय करके अब अपने घर वापिस लौट रही है।

जीवन.................................घर-घर।

यह जीवन उसी प्रकार का है जैसे जल होता है। जल का निर्माण जल के कणों से होता है। जीवन का निर्माण भी आँसुओं से होता है। जल के कणों से युक्त जैसे बादल होता है और उसमें इन्द्रधनुष दिखलाई देता है, मनुष्य

जीवन में भी इच्छा रूपी रंग-विरंगा इन्द्रधनुष दिखलाई देता रहता है। यह संसार उसी प्रकार धुँधला है जैसे जल से पूर्ण बादल धुंधले दिखलाई दिया करते है। नित्य नए-नए मेघ आते रहते हैं। कभी वह वर्षा के रूप में अपनी करुणा दिखलाते है और कभी गर्जन और कौंध के रूप में अपने मन की प्रसन्नता को व्यक्त किया करते है। ससार में भी ऐसा ही होता है। सदैव नए-नए जीवधारी आते हैं। कभी मनुष्य का हृदय दुख-जन्य करुणा से व्याप्त होता है और कभी प्रसन्नता के कारण पुलकायमान होता हुआ दिखलाई देता है। इसलिए कवयित्री अपने प्रिय प्रभु से प्रार्थना करती हैं कि हे मेरे अतिथि प्रभु! तुम मेघों के मध्य अचानक प्रकाश उत्पन्न कर देने वाली बिजली के समान मेरे जीवन मे एक अतिथि की तरह अचानक आ जाओ। मैं तुम्हारे स्वागत मे अपने पलकों के पांवड़े बिछाती हूं। तुम मेरी पलकों पर पैर रख-रख कर आ जाओ (कवयित्री को प्रिय-मिलन की बहुत इच्छा है और उसके स्वागत में वह अन्यतम सामग्री प्रस्तुत करने को उद्यत है)।

विशेष—१. कवयित्री को प्रिय-मिलन की अतीव आकांक्षा है। अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए उनके ये शब्द सभी सहृदयों के हृदय को छूने वाले है जो उन्होने अन्तिम छन्द में कहे हैं—

**तुम विद्युत बन आओ पाहुन।**
**मेरी पलकों में पग धर-धर।**

२. इस कविता में प्रकृति-चित्रण दृष्टव्य है। कवयित्री ने अपनी भावना के अनुसार प्रकृति को देखा है। पहले छदों मे प्रिय-आगमन की सूचना देने के कारण प्रकृति प्रसन्न-वदना दिखलाई देती है। अन्तिम पंक्तियों में स्वतः विषाद का अनुभव करते रहने से प्रकृति भी विषाद-ग्रस्त दिखलाई देती है।

३. इस कविता में कई अलंकारों की योजना की गई है। 'जीवन' में श्लेष अलंकार हैं। 'दर्पण सागर' में उपमा अलंकार तथा 'दृग इन्दीवर' मे रूपक दृष्टव्य है।

## गीत ३०

**प्रसंग**—इस गीत में महादेवी जी ने प्रिय-मिलन के समय अपनी विभिन्न इच्छाओं को व्यक्त किया है। यदि किसी प्रकार वह प्रिय स्वप्न में भी मिल

जाए तो वह क्या-क्या करें यह व्यक्त किया गया है। इस गीत में प्रिय-प्राप्ति की जिज्ञासा और तत्कालीन सम्भव प्रसन्नता का उल्लेख कवयित्री ने मार्मिक ढंग से किया है।

**शब्दार्थ**—पावस=वर्षा ऋतु। नीरव=शान्त। विषाद=दु:ख। संसृति=संसार। आलोक=प्रकाश। अजर=कभी बूढा न होने वाला। स्पन्दन=कम्पन।

तुम्हें बाँध........................ ......अपने में।

व्याख्या—अपने प्रियतम से कवयित्री कहती है कि यदि मैं तुम्हे स्वप्न में भी बाँध पाती तो चिरकाल से तुम्हारे अभाव में प्यासी, मैं अपनी सदैव की प्यास बुझा लेती। तुमसे मिलने का स्वप्न का समय यद्यपि बहुत ही छोटा होता परन्तु मै अपनी प्यास को इतने में ही बुझा सकने में समर्थ हो सकती थी (कवयित्री की मिलनोत्सुकता अतीव जागृत हो गई है)।

पावस-घन........................ .....अपने मैं।

वर्षा ऋतु मे बादल उमड़-घुमड़ कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते है। कवयित्री कहती है कि प्रिय के क्षण भर के मिलन के पश्चात् ही मैं भी वर्षा ऋतु के बादल की भाति अपनी प्रसन्नता का प्रसार सर्वत्र ही करती। मैं शरद की रात्रि की भाँति शान्त हो कर अपनी शान्तिमय दृष्टि से सब को शीतलता प्रदान करती। उस समय मैं सारे ससार के दु:ख को धो देती। अपने हृदय में वेदना के छोटे से आँसू कण भी इतनी शक्ति रख सकते है कि वे सारे संसार के दु:ख और पीड़ा को शान्त कर देते।

मधुर राग......... .... ...............अपने में।

यदि कवयित्री स्वप्न मे प्रिय से मिल लेती तो और क्या-क्या करती यह बतलाते हुए वह कहती है कि मैं मीठा गीत बन कर सारे विश्व को सुला देती (अर्थात् सब को मीठे राग की भाँति आनन्द प्रदान करती)। मै सुगन्धि बन कर सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हो जाती और अपने इस विरह-वेदना से जर्जर जीवन मे सारे ससार के करुण-क्रन्दन को समा लेती (अर्थात् समस्त संसार की पीड़ा को स्वयं अपने ऊपर ले कर संसार को पीड़ा और क्रन्दन-मुक्त कर देती)।

सब की सीमा.........................................अपने में।

(ईश्वर असीम है, जीव ससीम है; ईश्वर और जीव का तादात्म्य होने से जीव तद्गत हो कर असीम बन जाता है—ऐसी अभिव्यक्ति कवयित्री ने इन पंक्तियों मे की है ) जब मेरा प्रिय प्रभु से साक्षात्कार हो जाता तो मैं समुद्र के समान असीम होकर सबकी सीमा बनती (अर्थात समुद्र असीम होने के कारण विस्तार की वस्तु की सीमा का द्योतक होता है। किसी वस्तु को अधिक विस्तार वाली बतलाने के लिए समुद्र से उपमा दी जाती है—यह भाव है।) कवयित्री भी प्रिय मिलन के पश्चात् ऐसी ही असीम होती। फिर वह कहती है कि मैं प्रकाश की लहर के समान असीम होती तथा अपने नेत्रों के चंचल तारे के भीतर ही अगणित तारों से युक्त आकाश को समा लेती। (कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर की प्राप्ति पर ससीम जीव ही असीमता को प्राप्त कर लेता है।)

शाप मुझे.........................................अपने में।

मेरे जीवन मे सदैव ही विरह का दुख है मानो किसी शापवश अनिवार्य रूप से यह पीड़ा सहन करनी पड़ रही हो। किन्तु प्रिय-मिलन के पश्चात् वही शाप मुझे वरदान-सा प्रतीत होने लगता क्योंकि इस स्थिति के माध्यम से तो मुझे प्रिय की प्राप्ति होती। मेरे जीवन का दुख रूपी पतझर सुखद वसन्त मे परिवर्तित हो जाता (अर्थात् जिस प्रकार पतझर के पश्चात् सुखद वसन्त सर्वत्र आनन्द का संचार करता है उसी प्रकार मेरे जीवन में भी एक माधुर्य का संचार हो जाता है)। अपने प्रिय की प्राप्ति पर अपने प्राणों में एक ऐसा चिरस्थायी कम्पन अनुभव करती जिसके आनन्द के सामने मैं कितने ही स्वर्गों की रचना करके भी उसे कम ही पाती (अर्थात् प्रिय-मिलन का थोड़े समय का आनन्द ही अपार आनन्द प्रदान कर जाता )।

साँसे कहतीं.........................................अपने में।

प्रिय-मिलन के पश्चात् मेरी प्रत्येक साँस के साथ वही सुधि निकलती। इस तरह मेरा मिलन सदैव के लिए एक अमर कहानी बन जाता, मैं प्रत्येक क्षण अपने उसी मिलन-सुख का स्मरण करती रहती और प्रत्येक पल मुझे कभी न मिटने वाले चिन्ह के समान प्रतीत होता। कवयित्री प्रिय को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे प्रिय! यदि तुमसे मेरा मिलन हो जाता तो मैं अपने उस प्रेम-बन्धन के द्वारा सैकड़ों मुक्तियों को भी बाँध लेती (अर्थात

मुझे जो थोड़ी देर के लिए तुम्हारे सान्निध्य से आनन्द प्राप्त होता उसके सामने सैंकड़ों मुक्तियों का आनन्द तुच्छ प्रतीत होता।)

**विशेष**—इस कविता में कवयित्री ने प्रभु के सामीप्य-सुख का वर्णन किया है। कविता के अन्तिम छन्द मे प्रभु प्राप्ति के आनन्द के सामने स्वर्ग तो क्या मुक्ति का भी आनन्द कुछ नहीं—ऐसा व्यक्त किया है। बात वास्तव मे है भी ठीक। जब तुलसीदास ने केवल भगवद्भक्त के दर्शन मात्र से प्राप्त होने वाले आनन्द के सामने मुक्ति को भी तुच्छ बतला दिया तो स्वयं प्रभु की प्राप्ति के आनन्द पर सौ-सौ मुक्तियाँ न्यौछावर की जा सकती है। तुलसी ने राम-चरित-मानस में कहा है—

> तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक संग।
> तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्सग ॥

## गीत ३१

**प्रसंग**—प्रस्तुत गीत मे महादेवी जी ने ईश्वर की सर्वव्यापकता की ओर संकेत किया है। उन्हें यह भी विश्वास है कि उनके हृदय मे ईश्वर का निवास है। इस कविता में ईश्वर की आन्तरिक स्थिति को उन्होने अभिव्यक्त किया है। नाना अनुभवो से और क्रियाओ से वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि इन सबका आधार वही परमेश्वर है। इसलिए वह "कौन?" का प्रश्न करके ईश्वर की अनुभूति को अभिव्यक्त करती है।

**शब्दार्थ**—अलक्षित=चुपचाप, बिना दिखलाई दिए। निलय=घर। तिमिर पारावार=अन्धकार का समुद्र। घनसार=कपूर। नत=झुकी हुई।

**कौन तुम....................................... मेरे हृदय में।**

**व्याख्या**—कवयित्री कहती है कि मुझे अपने हृदय मे नाना प्रकार की अनुभूतियाँ प्रदान करने वाली किसी अज्ञात शक्ति का आभास होता है। पता नही वह शक्ति कौन-सी है? किसकी है? मुझे प्रभु की प्राप्ति सम्बन्धी असफलता पर सदैव पीड़ा होती रहती है। किन्तु कोई अलक्षित रूप से उस पीड़ा मे भी माधुर्य भरता रहता है। वह कौन है? मैं सदैव ईश्वर के दर्शनो के लिए लालायित रहती हूँ। मेरे नेत्र दर्शन न कर सकने के कारण सदैव प्यासे रहते है परन्तु ऐसी अपरिचित शक्ति कौन-सी है जो आँखों मे आँसुओं के

रूप में वरस कर सरसता का संचार करती है ? (प्रभु वियोग में रोना भी आनन्द और सरसता प्रदान करने वाला होता है।) मैं जव सोई हुई होती हूँ उस समय वह मेरा अपना निजी विश्रामस्थल होता है। परन्तु कोई चित्रकार उस निद्रा के शून्य-लोक में भी मधुर स्वप्नों को चित्रित कर देता है। वह ऐसा चितेरा कौन है ? (इस प्रकार कह कर कवयित्री फिर अपने हृदयस्थ इन सव कार्यो के कारणरूप परम परमेश्वर का आभास प्राप्त करके पूछती है कि, तुम मेरे हृदय मे निहित रहने वाले कौन हो ?)

अनुसरण........................मेरे हृदय में।

मेरे सांस जव वाहर निकलते है तो प्रतीत होता है कि वे किसी के पीछे-पीछे जा रहे है। ऐसा मेरे निश्वास सदैव करते हैं और फिर किसी के पद-चिन्हों को चूमते हुए-से मेरे श्वास फिर लौट-लौट कर आते है (अर्थात् किसी को ढूँढ़ते-ढूँढते हुए-से साँस पदचिन्हों पर आने वाले के समान फिर मेरे हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। भाव यह है कि पहले बाहर निकलने वाले साँस मानो प्रभु को खोज में वाहर जाते है और खोजते-खोजते उन्हें प्रभु मेरे हृदय में ही दिखलाई देता है अतः फिर लौट कर आ जाते है।) अब ऐसा कौन है जो मुझको वन्दी दनाकर उस विजय से स्वयं भी वन्द हो गया हो ? (अर्थात् मैं तो प्रभु की वन्दिनी हूं ही। प्रभु भी मेरे हृदय में निरन्तर वास करते रहने से स्वयं भी मानो बन्दी बना हुआ है)। मेरे हृदय में इस प्रकार रहने वाला वह कौन है ?

एक करुण................................हृदय में।

जीवन में मनुष्य को पद-पद पर असफलता और अभाव अनुभव करने पड़ते है। एक अभाव ऐसा हे जिसके मूल में करूणा का विशेषतः साम्राज्य है ? यह अभाव ऐसा है जो अपने में ही सदव के लिए तृप्ति प्रदान करने वाली शक्ति को सचित किए हुए है (अर्थात् प्रभु की प्राप्ति के सकरुण अभाव में ही कवयित्री को सव प्रकार की तृप्ति का अनुभव होता है। इस प्रकार का ईश्वर-विरह से युक्त एक क्षण भी उन्हे इतना प्रिय लगता है कि उसके सामने सैंकड़ो मुक्तियों के वरदानों को भी न्यौछावर करती है। इसलिए वह कहती हैं कि) इस प्रकार की वेदना को मोल ले कर मैंने किसे पा लिया है ? मुझे पता नही है कि मेरे हृदय में निवास करने वाला वास्तव में कौन है ?

गूँजता उर.................................हृदय में।

दूर से सुनाई देने वाला संगीत स्पष्टतः समझ में नही आता वैसे वह मधुर अवश्य लगता है। इसी प्रकार महादेवी जी के हृदय में दूर के संगीत के समान मधुर परन्तु अस्पष्ट प्रभु के प्रेम की वीणा बजती रहती है– ऐसा वह अनुभव करती है।

वह कहती हैं कि मुझे प्रभु की प्राप्ति के प्रयत्न में अपने को मिटाना पड़ा है। किन्तु मुझे इस प्रकार अपने को खोकर जिस प्रभु-पीड़ा की प्राप्ति हुई है वह कुछ विपरीत-सी स्थिति लगती है। पता नही वह क्या है? वह कहती है कि मुझे पता नही कि क्या मेरी विरह रूपी रात्रि मिलन के सुखद दिवस के उदय मे नहा आई है? (अर्थात् मुझे पता नहीं कि मेरा मिलन हो भी चुका है जिसके कारण अब वेदना हो रही है?) पता नही मेरे हृदय मे यह सब स्थिति उत्पन्न कर देने वाला कौन है!

तिमिर पारावार.................................हृदय में।

अन्धकार के समुद्र में यदि किसी प्रकार का कोई प्रकाश दिखलाई पड़े तो वह सुख और शान्ति प्रदान करने वाला होता है। इसी प्रकार इस संसार के दुःख-क्लेशमय जीवन में प्रभु-प्रेम का प्रकाश ही ऐसा है जो सुख और शाँति प्रदान कर सकता है। कवयित्री को ईश्वर प्रेम की एक ऐसी निश्चल प्रतिमा प्राप्त है। ईश्वर प्रेम प्राप्त होने पर उन्हे दुःख अब दु ख देने वाले नही लगते, वे भी सुखद लगते हैं। दुख रूपी ज्वाला से उन्हें अब सुख रूपी कपूर की सुगन्धि-सी प्रतीत हो रही है। उन्हें पता नही ऐसा क्यों हो रहा है? जीवन और प्रलय मे एक-सी ही ध्वनि सुनाई पड़ती हैं (अर्थात् सुख और दु.ख, मिलन और विरह एक-से ही लगते है।) इस प्रकार का आभास देने वाले के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए वह ती है कि ऐसे तुम मेरे हृदय में कौन हो?

मूक सुख.................................मेरे हृदय में।

सुख और दु.ख मुझे अपना नवीन रूप से शृंगार करते हुए-से लगते हैं। यह है कि पहले तो सुख की प्राप्ति पर सुख और दु.ख की प्राप्ति पर

दु:ख का अनुभव होता था पर अब ऐसी स्थिति आ गई है जब सुख और दु:ख अपना विशेष प्रभाव नहीं डालते। यह उनका अभिनद कृत्य है जो मुझे अपना शृंगार सा लगता है। मुझे यह स्थिति अच्छी लगती है। अब सारी स्वर्गीय सुषमा पृथ्वी पर ही दिखलाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे गर्वित स्वर्ग नतमस्तक पृथ्वी को चूम कर प्यार दे रहा हो अर्थात् स्वर्ग प्यार से आनन्द में आ कर पृथ्वी को अपनी शोभा प्रदान कर रहा है। पृथ्वी की सभी वस्तुएँ शोभाशाली लगती हैं—यह भाव है। ( सृष्टि शोभा से युक्त होने पर ऐसी लगती है जैसे प्रसन्नता के कारण पुलकायमान हो रही हो। उसका इस प्रकार का शोभा और शृंगार से युक्त होना मानो इसलिए है कि वह सृष्टि प्रलय के साथ अभिसार करने जा रही है। (कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति की सुषमा से महादेवी जी को ऐसा आभास मिलता है जैसे अब उनका प्रिय से मिलन होने ही वाला है। इसलिए बार-बार वह अपने हृदय की अनुभूति को ठीक-ठीक जानने के लिए प्रश्न करती है कि) मुझे यह सब प्रेरणा और अनुभूति देने वाले, मेरे हृदय में तुम कौन हो ?

विशेष—१. इस कविता मे कवयित्री ने ईश्वरानुभूति के पश्चात् की विशेष स्थिति का वर्णन किया है। उन्होने अपने भावों को नाना प्रश्न करके स्पष्ट किया है। उन्हे अब वह स्थिति प्राप्त हो गई है कि सुख-दु:ख एक से ही लगते है। "दु:खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषुविमतस्पृह:" वाली स्थिति प्राप्त हो जाने पर प्रभु का सामीप्य सहज है, ऐसा वह अनुभव भी करती है और अभिव्यक्त भी किया है।

२. कवयित्री ने यहाँ पर भी प्रभु-प्रेम की पीड़ा को मोक्ष से श्रेष्ठतर बतलाया है जैसा अन्यत्र भी कह चुकी है। कविता रहस्यवादी विचारों से परिपूर्ण है।

## गीत ३२

प्रसंग—महादेवी जी सदैव प्रभु के वियोग में मग्न है। उनका जीवन इसी विरह-वेदना से व्याप्त है। अपने जीवन की चिर विरहावस्था का उल्लेख

उन्होंने इस कविता मे अपने जीवन को विरह से उत्पन्न हुआ जलजात (कमल) बतला कर किया है । उनका यह जीवन-कमल उसी समय विकसित हो सकता है जब उनको उनके प्रिय की कृपापूर्ण मुस्कान के दर्शन हो जाएं । इस गीत मे अपनी वियोगावस्था का कवयित्री ने मार्मिक कथन किया है ।

शब्दार्थ—जल-जात=कमल । आवास=निवास । मधुमास=बसन्त । निरुपम=उपमारहित ।

विरह का·························का जल-जात !

व्याख्या—कवयित्री कहती है कि मेरा जीवन विरह का कमल है । कमल का जन्म कीचड़ मे होता है और तत्पश्चात् उसका निवास जल मे रहता है । वह कहती है कि मेरे जीवन रूपी कमल का जन्म भी इसी प्रकार वेदना रूपी कीच मे हुआ है । उसका निवास सदैव करुणा के जल मे रहता है । कमल के ऊपर पड़ी ओस की बूंदे दिन मे सूर्य के प्रकाश और उष्णता में समाप्त हो जाती है । रात को फिर आंसुओ के समान ओस की बूदे कमल पर पड़ जाती हैं । कवयित्री का जीवन-कमल भी इसी प्रकार का है । सुख के दिवस मे उनके अश्रु समाप्त हो जाते है । दुःख की रात्रि में कमल पर पड़ी ओस की तरह आँसू आ जाते है । इस प्रकार जीवन विरह का एक कमल है (भाव यह है कि पहले ईश्वर और जीव एक थे । उसके पश्चात् जीव ने जब जन्म लिया तो उसका ईश्वर से वियोग हो गया । वियोग होने से पीड़ा होनी स्वाभाविक थी और ईश्वर की करुणा के सहारे ही मानव जीवित रहता है । अतः जीवन कमल का जन्म वेदना मे, आवास करुणा में हुआ और वह बना हुआ विरह से है । इसलिए वह विरह का जल जात है) ।

आंसुओं का························का जल-जात !

मेरा हृदय आसुओ के कोष के समान है (अर्थात् जैसे कोष अथाह होता है । वैसे ही मेरे हृदय मे आसुओ की रचना करने के लिए पर्याप्त सामग्री है । मेरे नेत्र आँसू बनाने वाली टकसाल है अर्थात् नेत्रो में हृदय से भाव उमड़ कर आंसू बनते हैं जैसे कि टकसाल मे सिक्के गढ़े जाते है (कहने का भाव यह है कि मेरे हृदत में अनेक भाव आते रहते है और वे नेत्रों मे से आँसू बन कर ... रहते मूक ...की समाप्ति नही होती । मेरा जीवन बहने वाले जल के कणो ... और दु:ख ... के समान है । जल-कणों से निर्मित बादल बड़ा कोमल और ... है कि पहले मेरा जीवन भी क्षणिक और कोमल है ।

अश्रु से..........................का जल-जात ।

मेरा जीवन विरह का कमल है। विरह में आँसुओं का होना स्वाभाविक है। इसलिए जिस प्रकार वसन्त ऋतु में कमल अपने मधुकणों को लुटाता है, उसी प्रकार से मेरा जीवन आँसुओं को लुटाता है और वर्षा ऋतु के समय में भी मेरे आंसुओं की ही हाट लग जाती है (अर्थात् वर्षा में भी मेरे आँसू निरन्तर प्रवाहित होते रहते है।) यहाँ पीड़ा व करुणा के कारण सदैव आँसुओं की धारा बहती रहती है।

काल इसको..........................का जल-जात।

महादेवी चिर-वियोगिनी हैं। उनका विरह बहुत समय से चला आ रहा है। विरह में आँसू निकलना स्वाभाविक है। बहुत समय से चले आते हुए विरह में बहुत से आँसू निकलने स्वतः सिद्ध हैं। इसलिए वह कहती है कि समय ने मुझे पल-पल में गिरने वाले आँसुओं का हार प्रदान किया है। मेरे जीवन रूपी कमल की कथा को वायु मेरे निश्वासों के रूप में पूछता है (अर्थात् वायु कमल को हिला-डुलाकर जैसे मानो उस कमल से उसकी कहानी पूछता हो वैसे ही निश्वासों द्वारा यह वायु मेरे हृदय की कहानी पूछती है। मेरा जीवन निःसन्देह विरह का कमल है।

जो तुम्हारा ..........................का जल-जात ।

(लीला-कमल वह होता है जिसे लेकर कोई खेले। इस स्थिति में जब कमल हाथ में रहेगा तो वह हाथ में लेने वाले का मुख और उसकी मुस्कान को भी अवश्य देखेगा। इस भाव को लेकर महादेवी जी कहती है कि मेरी इच्छा है कि) मेरा जीवन रूपी कमल तुम्हारी क्रीड़ा की एक वस्तु बने। (तुम लीला-कमल की भाँति मुझे अपनाओ—यह भाव है।) उस स्थिति मे मेरा जीवन तुम्हारे मुख को मुस्कान को अवश्य देखेगा और फिर वह इस प्रकार खिल उठेगा जिस प्रकार कमल प्रातःकालीन सूर्य को विकसित होते हुए देखकर खिल उठता है। यदि आप मुझे अपना लेगे तो मेरे जीवन-कमल का विकास उपमा रहित होगा इस प्रकार मेरा जीवन विरह का एक कमल है और वह तुम्हारे दर्शन पाकर ही विकसित हो सकता है।

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री ने अपने जीवन का कमल से रूपक बाँधा है।

२. इस गीत के प्रथम छन्द में आत्मा और परमात्मा के अभेद का उल्लेख किया गया है। परमात्मा से अलग होने पर जीव को सतत विरह-वेदना का अनुभव करना पड़ता है और इसीलिए वह सदैव उस परमात्मा की प्राप्ति और सान्निध्य के लिए प्रयत्नशील रहता है।

३ गीत के अन्तिम छन्द मे लीला-कमल बनने की उत्सुकता से कवयित्री का प्रिय के प्रति उत्कट प्रेम प्रदर्शित होता है।

## गीत ३३

प्रसग—प्रस्तुत कविता एक रहस्यवादी अभिव्यक्ति है। आत्मा का परमात्मा से सदैव सम्बन्ध चला आया है। इस आत्मा ने अपने अभेद को नाना प्रकार से अभिव्यक्त किया है। इस गीत में महादेवी जी ने दो विरोधी बातों को लेकर अपने वर्णन-नैपुण्य से अपने और ईश्वर के सम्बन्ध को व्यक्त किया है। ईश्वर से चिरकाल से सम्बन्धित होने के कारण जीव की और स्थिति होती है और दृश्यमान जगत में शरीर-धारण-मात्र से दूसरी स्थिति प्रतीत होती है। इस तरह दोनों ही स्थितियाँ जीव के लिए सम्भव है। कवयित्री ने इन्ही भावों को व्यक्त किया है।

शब्दार्थ—बीन=वीणा। निस्पन्द=शान्त। स्पन्दन=कम्पन। प्रवाहिनी=प्रवाहित होने वाली, नदी। जलद=बादल। तृषित=प्यासा। प्रस्तर=पत्थर। दामिनी=बिजली। आघात=चोट। पात्र=बर्तन। मधु=शराब। मधुप=शराब पीने वाला। मधुर=अच्छी लगने वाली। विस्मृति=भूलना। अधर=ओष्ठ। स्मित=मुस्कराहट।

बीन भी………… …………प्रवाहिनी भी हूँ।

(मनुष्य का शरीर ईश्वर ने बनाया है। वह ईश्वर का है। इस शरीर में निवास करने वाली आत्मा ईश्वर का अंश है। वह भी ईश्वर की है। कवयित्री भी यहाँ अपने शरीर को प्रभु की वीणा और उसमे निवास करने वाली आत्मा को उस वीणा से उत्पन्न रागिनी कहते हुए अपने विचार व्यक्त करती हैं।)

हे प्रभु ! मैं तुम्हारी वीणा भी हूँ और उस वीणा से उत्पन्न होने वाली तथा उसी में अज्ञात रूप से सन्निहित रागिनी भी हूँ। जिस समय सृष्टि का कण-कण शान्त था उस समय मैं भी सोई हुई अवस्था में थी और जिस समय सृष्टि में किसी प्रकार का कम्पन प्रारम्भ हुआ उसी समय मुझे भी अपनी जागृति का आभास हुआ (कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि के आदिकाल से ही मेरी यह स्थिति है।)मेरा पता प्रलय तक मिल सकेगा अर्थात् सृष्टि की प्रलय की स्थिति तक मैं वर्तमान रहूँगी। यह जो नाना जीवन मैं बिता रही हूँ ये तो मानो उस प्रलय तक जाने के लिए पदचिन्ह है। मेरा इस संसार में जन्म लेना मात्र ही एक शाप है। किन्तु ईश्वर-प्रेम के बन्धन में बंध कर यह शापमय जीवन मुझे वरदान-सदृश प्रतीत होता है। इस प्रकार एक ओर तो मेरा स्थूल शरीर है, दूसरी ओर जन्म-जन्मान्तरों तक चली जाने वाली आत्मा है। (दूसरे शब्दो में यों कहा जा सकता है कि) मैं एक नदी के समान प्रवाहित होने वाली गतिमय स्थिति भी रखती हूँ और नदी के किनारों की भाँति अचल, स्थिर स्थिति भी रखती हूँ (अर्थात् जिस प्रकार नदी के किनारे भी होते हैं जो स्थिर और स्थूल होते हैं और नदी का प्रवाह भी होता है जो अपेक्षाकृत सूक्ष्म और गतिमय होता है, वैसे ही कवयित्री का स्थिर और स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म और गतिशील आत्मा है )।

नयन में........................ सुहागिनी भी हूँ !

मैं ऐसे चातक-पक्षी के समान हूँ जिसके नेत्रों में ही बादल है। व्यावहारिक रूप से चातक के पास यदि बादल हो तो वह तृषित नही रहेगा पर कवयित्री की स्थिति विशेष है। वह अपने प्रिय के लिए प्रयत्नशील हैं और प्रिय की छवि को नेत्रों मे भी समाए हुए हैं। इसी तरह वह कहती है कि मैं शलभ को अपने प्राणों में समा लेने वाले दीपक के समान हूँ (अपने प्रिय को अपने हृदय में धारण करके भी मैं दीपक की भाँति जलती रहती हूँ विरहाग्नि में—यह भाव है)। साधारणतः फूल की इच्छा रखने वाली बुलबुल को यदि फूल दे दिया जाय तो वह व्याकुल नहीं होती, पर मैं ऐसी बुलबुल हूँ जो अपने फूल (प्रिय) को अपने हृदय मे छिपा कर भी बेचैनी का अनुभव करती है। मैं शरीर की छाया के समान हूँ जो शरीर से मिली हुई होते हुए भी दूर-ही-दूर रहती है। (अर्थात् ईश्वर से मिली हुई होकर भी अज्ञानवश सामीप्य-

लाभ नहीं कर पाती। कवयित्री अन्त में कहती हैं कि) हे प्रभु ! यद्यपि मैं आपसे दूर हूँ, आपको अभी तक प्राप्त नहींकर सकी हूं परन्तु फिर भी मैं पूर्णतः सौभाग्यवती के समान हूँ (कहने का तात्पर्य यह है कि दूर रहने पर भी आपकी स्मृति के कारण मै आपके सामीप्य जैसा ही अनुभव करती रहती हूँ और इस प्रकार मुझे अपना दूर रहना भी ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे कि मैं आपके साथ ही रह रही हूँ )।

आग हूँ..............................दामिनी भी हूं।

मैं ऐसी आग हूँ जिससे ओस की बूँदें जैसी बूंद ढुलकती है (आग से हिम-बिन्दु निकलना सम्भव नही है पर कवयित्री के अन्तर में विरह की आग है और आँखों से आँसू निकलते हैं। इसलिए आग से ही इनके अश्रु-बिन्दु ढलकते है)। मै उस शून्य के समान हूँ जो पलक पाँवड़ों पर होकर आता है (अर्थात् पल-पल करके मानव जीवन शून्य होता जाता है)। मैं कठिन पत्थर से उद्भूत पुलक हूँ (अर्थात् मेरी स्थिति पत्थर के समान कठिन दुःखमय वातावरण मे हुई है)। मै उस प्रतिबिम्ब के समान हूँ जो आधार के हृदय पर ही पड रहा हो (अर्थात् मैं ब्रह्म के हृदय से उत्पन्न हुई उसकी ही परछाईं के समान हूं। इसी प्रकार मैं नील-घन और उससे उत्पन्न होने वाली बिजली भी हूँ (कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे नीले आकाश से बिजली उत्पन्न होती है वैसे ही ईश्वर से आत्मा उत्पन्न होती है। इस स्थिति में आत्मा परमात्मा का अंश होने से परमात्मा भी है और अपना पृथक् निजी अस्तित्व रखने से उससे अलग आत्मा भी है)।

नाश भी..............................चांदनी भी हूँ !

(मानव शरीर नश्वर है। कवयित्री कहती है कि नश्वर शरीर को धारण करने के कारण वह नाश को प्राप्त होती हैं और सतत अमर आत्मा को रखने के कारण वह विकास की स्थिति भी है। मैं एक ओर तो त्याग की भावनाओ से परिपूर्ण हूँ और दूसरी ओर आसक्तिपूर्ण जीवन भी व्यतीत करती हूँ। इस प्रकार त्याग का प्रकाश और आसक्ति का घोर अन्धकार दोनों को मैं अपने में समाए हुए हूँ। मैं वीणा के तार के समान,शान्त भी हूँ, उस पर

पड़ने वाली चोट के सदृश दुःखादि आघातों को सहन करने वालों भी हूँ (वीणा के तार पर चोट पड़ने से प्राप्त हुई झंकार के सदृश नाना दुःखों की अनुभूतियों का मुझे अनुभव है) वीणा की झंकार की गति के समान मेरे जीवन मे भी गति है। इस प्रकार सभी बातें मुझमें सगृहीत है। मै मदिरा पीने का पात्र, मदिरा, मद्यप और तद्‌जन्य मधुर विस्मृति भी हूं। अर्थात् मेरा शरीर मदिरा के पात्र-सदृश है, मेरे नाना भाव और कल्पनाएं उसकी मदिरा है, इनका अनुभव करने वाला मेरा हृदय मद्यप है और उस हृदयानुभूति-वश अपने को विस्मृति के अन्दर डाल देना ही मेरा नशा है। मै अधर भी हूँ और उस पर प्रसारित होने वाली मुस्कराहट भी हूँ (दूसरे शब्दों मे भाव यह है कि कवयित्री ब्रह्म का अंश होने से ब्रह्म और शरीरधारी होने से एक अलग जीव है। वह अपने लिये दोनों का ही प्रयोग कर सकती है)।

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री जी ने अपने रहस्यवादी विचार व्यक्त किये हैं। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध बतलाते हुए यह दिखलाया है कि आत्मा परमात्मा का ही अंश है। एतदर्थ वह अपने को ही ईश्वर कहती हैं। आत्मा को जब यह ज्ञात हो जाता है तो वह जीवन के दुःख और क्लेशों को भूल जाती है। उसे जीवन का शाप भी वरदान-सदृश प्रतीत होने लगता है।

२. यह कविता सुन्दर भावों से युक्त है। यहाँ अलंकारों की दृष्टि से विरोधाभास विशेष दृष्टव्य है।

## गीत ३५

प्रसग—प्रस्तुत गीत मे महादेवी जी वर्षा के समय का चित्र प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने प्रकृति का वर्णन एक नारी के रूप में किया है। विविध उपकरणो के उदाहरण देकर प्रकृति को नारी के रूप में चित्रित करके उन्होंने अपनी कुशल अभिव्यजना इस कविता मे दिखलाई है।

शब्दार्थ—रूपसि=सुन्दरी। घन-केश-पाश=घना केशों का समूह। रजतधार=चांदी जैसी धारा। सद्यस्नात=शीघ्र स्नान किया हुआ।

वक-पांतों=बगुलों की पंक्ति। अरविन्द=कमल। केकी=मोरनी। सस्मित =मुस्कराहट से युक्त। दुलारना=प्यार करना।

रूपसि तेरा ........................... केश-पाश।

व्याख्या—वर्षा ऋतु में बादल छाये रहते हैं। बादल श्यामल होते हैं। बाल भी श्यामल होते हैं। कवयित्री बादलों को स्त्री के बालों के रूप में चित्रित करती है। इसलिए वह वर्षा रूपी स्त्री से कहती है कि हे सुन्दरी, तेरे बाल बड़े घने है। वे सांवले-साँवले और कोमल हैं। तेरे बाल सुगन्धि को फैलाते हुए लहरा रहे हैं।

नभ गंगा ................................ रास।

श्यामल बादलों के साथ बादल सफेद भी होते हैं। उन्हें देखकर कवयित्री कहती है कि क्या वर्षा ऋतु रूपी स्त्री ने अपने श्यामल बालों को रात्रि के समय आकाश-गंगा की चादी के समान उजली जल-धारा मे धो दिया है जिससे वे सफेद हो गये हे। हे वर्षा रूपी रमणी! तेरे अंग जल से युक्त हैं और वे कंपित है। तेरा शरीर काँप रहा है क्योंकि तूने अभी-अभी स्नान किया है। तेरे बालो से, जो स्नान करते समय भीग गये थे पानी की बूँदे टपक रही हैं। टपकती हुई बूँदे तरह-तरह का नृत्य करती हुई-सी प्रतीत हो रही है।

सौरभ भीना ........................... विलास!

सुगन्धिमय गीला वातावरण है। फिर अन्धेरा है। कवयित्री कहती है कि मानो यह वर्षा-ऋतु रूपी सद्यस्नाता स्त्री का सुगन्धित पतला भीगा वस्त्र है जो अभी-अभी स्नान करके निकलने के कारण उसके शरीरसे लिपटा हुआ है। साथ ही यत्र-तत्र जो जुगनू टिमटिमा रहे है वे मानो इस सद्यस्नाता स्त्री के शृंगार के लिये लगाये गये फूल है जो वायु द्वारा उसके वस्त्र के चन्चल हो जाने पर झड़-झड़ कर गिर रहे है। जिधर भी वर्षा-ऋतु की बिजली के रूप मे वह दृष्टि फैलाती है उधर ही उजाला हो जाता है। कवयित्री कहती है कि हे स्त्री! तेरी दृष्टि जिधर ही जाती है उधर ही दीपक से जल उठते है।

उच्छवसित ........................... मूक प्यास!

वर्षा-ऋतु मे बगुलों की पंक्तियाँ उड़ती रहती हैं। ये बगुलों की पंक्तियाँ मानो उस वर्षा-ऋतु रूपी स्त्री के उच्छवसित हृदय के ऊपर चंचल कमलों का हार है। हे सुन्दरी ऋतु! तेरे बाहर निकलते हुए साँस जब उनका स्पर्श

करते हैं तो वही मलय-समीर का रूप धारण कर लेते हैं। मोरनियों की ध्वनि जो वर्षा-ऋतु में होती है वह मानो तुम्हारे नूपुरों की ध्वनि है जिसको सुनकर संसार के सभी व्यक्तियों की प्यास जागृत हो उठती है।

इन स्निग्ध··························है उदास।

(इन पंक्तियों में महादेवी जी इस वर्षा-ऋतु रूपी स्त्री को माता के रूप में चित्रित करते हुए कहती हैं कि) तुम अपनी चिकनी लटों से संसार रूपी शिशु के शरीर को आच्छादित कर दो। निस्सन्देह तुम्हारा हृदय संसार रूपी शिशु को गोद में लेने से पुलकित हो जायेगा (माता का, बच्चे को गोद में लेने से पुलकित होना स्वाभाविक है)। फिर झुक कर मुस्कराते हुए, अपने वात्सल्य से भरे शीतल चुम्बन से, अपने संसार रूपी शिशु के मस्तक को चूम लेना। इस प्रकार जो यह संसार तुम्हारे प्यार के अभाव में उदास है उसे तुम प्यार कर देना और मचलते हुए बालक की तरह उसे बहला देना (भाव यह है कि वर्षा की इच्छा करते हुए संसार को अपनी सुखद जल-वृष्टि से संतोष प्रदान कर देना)।

विशेष—१. प्रस्तुत कविता में महादेवी जी ने प्रकृति वर्णन किया है। प्रकृति का वर्णन एक सुन्दरी के रूप में रूपक बांधकर किया है और बड़ा सुन्दर बन पाया है।

२. इस कविता में सद्यस्नाता स्त्री के रूप को चित्रित किया गया है।

३. इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता महादेवी जी की अन्तिम छन्द में वर्णित वात्सल्य भाव की योजना है। महादेवी जी के काव्य में वात्सल्य रस का अभाव है किंतु अन्तिम छन्द की इन पंक्तियों में वात्सल्य भाव तो निस्सदेह आ ही गया है। संसार-शिशु का भाल-चुम्बन और दुलार करना स्पष्टतः वात्सल्य भाव को व्यक्त करता है। इस वर्णन को रस की दशा को प्राप्त हुआ नहीं माना जा सकता। इसलिए वात्सल्य रस नहीं, यहाँ वात्सल्य भाव ही है।

## गीत ३५

प्रसंग—आत्मा परमात्मा का अंश है—ऐसा महादेवी जी ने कई स्थलों पर व्यक्त किया है। इससे स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा में कोई

भेद नहीं। अपने इस घनिष्ट सम्बन्ध के कारण वह अपने में और प्रभु में अभेद मानती है। अपने इसी अभेद के कारण उन्हे प्रिय के परिचय की कोई आवश्यकता नहीं। वे दोनों एक ही हैं। यही भाव इस कविता में रखा गया है कि हे प्रिय प्रभु, जब मैं और तुम एक ही हैं तो फिर परिचय की क्या आवश्यकता है ?

शब्दार्थ—संसृति=संसार। विचुम्बित=चुम्बन किया हुआ, स्पर्श किया हुआ। मधुमय=मधु से युक्त। विषमय=विप से युक्त। काया=शरीर।

तुम मुझमें..............................संचय क्या !

व्याख्या—कवयित्री अपने प्रिय प्रभु से कहती हैं कि हे प्रिय ! तुम मेरे अन्तस में निवास करते हो। जब सदैव तुम मेरे हृदय में वर्तमान हो तो फिर तुम्हारे परिचय की क्या आवश्यकता है ? और क्या तुम्हारा परिचय दिया जाय ? तुम्हारी छवि सदैव मेरे नयनो मे रहती है। मेरे प्राण सदैव तुम्हारी स्मृति से युक्त रहते हैं। मेरी पलको में तुम्हारी गति अभिव्यक्त होती रहती है यद्यपि वह शान्तिपूर्वक ही होती है। मेरे छोटे से हृदय में तुम्हारी स्मृति कर-करके पुलकों का विस्तार छा जाता है। इस प्रकार तुम्हारी चंचल स्मृति से युक्त मेरा हृदय है यही सबसे बड़ा संचय अथवा धन वैभव है। फिर संसार में और किसी वस्तु का सचय करने की क्या आवश्यकता है ?

तेरा मुख..............................प्रलय क्या !

प्रसन्नतापूर्वक प्रातःकाल का सूर्य उदय होता है। वह तुम्हार मुख की शोभा का द्योतक है। रात्रि का वातावरण उतना प्रसन्न और प्रफुल्लित नही होता। रात्रि विषादमय होती है। रात्रि मे मुझे तुम्हारी परछाईं के दर्शन होते हैं। यह प्रातःकाल का अरुणोदय से युक्त वातावरण मुझमें एक नई जागृति और नई चेतना भर देता है। वह रात्रि का विषादमय वातावरण मुझ को स्वप्नों वाली नींद से मुक्त कर देता है। इस प्रकार मुझे दिन मे तरह-तरह के खेल-खेल कर रात्रि को आराम से सोने दो। मुझे यह आवश्यकता नही है कि मैं सृष्टि के उत्पन्न होने और प्रलय होने के रहस्यमय ज्ञान को समझने की कोशिश करूँ।

तेरा अधर..............................विषमय क्या !

मेरा जीवन तुम्हारे ओष्ठों का स्पर्श करने वाला प्याला है अर्थात् मेरी

उत्पत्ति तुम से ही हुई है। मेरे जीवन की प्याली में तुम्हारी ही कृपापूर्ण मुस्कराहट की हाला भरी हुई है अर्थात् मेर जीवन में मादकता केवल तुम्हारी स्मृति करके ही आती है। मेरा हृदय तुम्हारे अनुभवों की स्मृतिजन्य मादकता से युक्त हुआ मानो तुम्हारे शराव पीने का स्थान है। मैं हृदय में तरह-तरह से तुम्हारी स्मृति कर-करके तुम्हारा ही अनुभव करती रहती हूँ। फिर मुझे क्या आवश्यकता है कि तुम से यह पूछूँ कि मेरे जीवन रूपी प्याले में सुख रूपी मधु अथवा दुख रूपी विष में से तुम क्या ढाल रहे हो? (भाव यह है कि जब सभी कुछ तुम्हारा है तब फिर तुम्हारे द्वारा दिए गए सुख अथवा दुख में किन्तु व परन्तु करने की कोई आवश्यकता नहीं है)।

रोम-रोम ....... .....................लय क्या।

कवयित्री को ईश्वरानुभूति से बड़ी प्रसन्नता है इसलिए वे कहती है कि मेरे शरीर के प्रत्येक रोएँ में इन्द्र के वन के समान आनन्द व्याप्त है (जैसे नन्दन वन पुलकित (पुष्पित) होता है वैसे ही मेरा शरीर भी आनन्द से पुलकायमान है यह भाव है)। मेरे प्रत्येक सांस में सैकड़ों जीवनों का अनुभव समाया हुआ है। मेरा प्रत्येक स्वप्न मुझे अपरिचित विश्व (स्वर्ग) का आभास देने वाला है। मैं नाना स्वप्नों की स्वर्गीय कल्पना करती रहती हूँ और फिर उन्हे मिटाती भी रहती हूँ। इसलिए मुझे विशेष रूप से स्वर्ग से कोई प्रयोजन हो, यह बात नही है क्योंकि स्वर्ग तो मैं नित्य ही बनाती मिटाती रहती हू। मेरा जीवन कभी न समाप्त होने वाले उपर्युक्त क्रम से परिपूर्ण है। मुझे अब संगीत की निष्क्रिय लय से क्या प्रयोजन है?

हारूँ तो ........................विजय क्या।

यदि मैं अपने प्रियतम की प्राप्ति के प्रयत्न मे हार जाऊंगी तो मैं अपनापन नष्ट कर दूंगी। मैं स्वयं नष्ट हो जाऊंगी और इस संसार से अलग होकर प्रियतम के समीप जाकर उसी से तादात्मय स्थापित कर लूंगी और यदि मैं जीत जाऊंगी तो तुम्हारा बन्धन बनूंगी (अर्थात् तुम्हारी प्राप्ति के प्रयत्न में सफल होकर मैं तुम्हें बांध लूंगी)। मैं सीपी के समान अपने छोटे अस्तित्वमय जीवन में ही असीम समुद्र के समान अनन्त परमेश्वर को समा लूंगी। हे प्रिय! इस स्थिति में मेरे लिए हार और जीत मे कोई विशेष

अन्तर नहीं है। (मेरे लिए तुम्हारी प्राप्ति के प्रयत्न में हार और जीत समान हैं—यह भाव है।)

चित्रत तू.........................अभिनव क्या !

प्रियतम से अपना अटूट सम्बन्ध बतलाते हुए कवयित्री कहती हैं कि हे प्रिय यदि आप एक चित्र के समान हैं तो मैं उस चित्र को बनाने वाली रेखाओं का क्रम हूं और यदि आप एक बहुत मीठे गीत हैं तो मैं उस गीत की गेयता को पूर्णता प्रदान करने वाला स्वरों का मेल हूँ। यदि आप असीम हैं तो मैं भी सीमा का भ्रम मात्र ही हूँ। वास्तव में मैं भी असीम हूं क्योंकि मेरा जन्म तुम असीम से ही हुआ है अतः मुझ में भी वही गुण वर्तमान है। तुम से उसी भांति मिली हुई हूं जैसे शरीर से छाया देखने में अलग, पर वास्तव मे अभिन्न होती है। मेरा तुम्हारा प्रेयसी और प्रियतम का सम्बन्ध है इसलिए हमें अपने प्रेम के सम्बन्ध में अभिनय करके दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरा और तुम्हारा तो स्वाभाविक, चिर अविच्छिन्न अटूट सम्बन्ध है।

विशेष—इस कविता में कवयित्री ने आत्मा और परमात्मा के सदैव के अभेद को व्यक्त किया है। आत्मा परमात्मा का अंश होने से उन्हीं गुणों से पूर्ण है। परमात्मा का हृदय मे सदैव निवास रहने से परमात्मा से परिचय की क्या आवश्यकता है ?

## गीत ३६

प्रसंग—प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने एक रूपक बांधा है। वह अपने जीवन को दीपक के रूप में देखती है। दीपक जिस प्रकार जलता है और अपने आगन्तुक की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार कवयित्री अपने जीवन-दीप को अपने प्रिय की प्रतीक्षा मे जला रही हैं।

शब्दार्थ—आलोकित=प्रकाशित। विपुल=बहुत अधिक। अपरिमित=बहुत अधिक मात्रा में। द्रुततर=शीघ्र। स्मित=मुस्कान।

मधुर-मधुर.........................आलोकित कर।

व्याख्या—कवयित्री अपने जीवन रूपी दीपक को सम्बोधित करते हुए

कहती हैं कि हे मेरे जीवन-दीप ! तू मधुर-मधुर रीति से जलता रह। जिस प्रकार दीपक धीरे-धीरे जल कर प्रकाश फैलाता रहता है वैसे ही तू भी युगों तक प्रति-दिन, प्रति-क्षण और प्रत्येक-पल जलता ही रह और प्रियतम के पथ को प्रकाश से युक्त करता रह (अर्थात् कवयित्री की कामना है कि उसका जीवन प्रभु के लिए ही सदैव प्रयत्न में लगा रहे)।

सौरभ............................गल-गल !

कवयित्री अपने जीवन रूपी दीपक से कहती हैं कि हे दीप ! तुम बहुत अधिक मात्रा में धूप बनकर सर्वत्र सुगन्धि फैला दो। मेरे कोमल शरीर ! तुम मोम की भाँति पिघलकर घुल जाओ और उससे प्रकाश का बहुत अधिक समूह दिखलाई देने लगे। इस भाँति जीवन का एक-एक अणु गल-गल कर विश्व को प्रकाशित करता चला जाये।

पुलक-पुलक............................तुम में मिल।

हे मेरे दीपक ! तुम प्रसन्नता के साथ पुलकायमान हो कर जलते रहो। संसार की जितनी भी शीतल, कोमल और नूतन वस्तुएँ हैं वे सब तुझसे उस ज्वाला के कण माँग रही है जो तेरे अन्दर प्रज्ज्वलित हो रही है (भाव यह है कि जीवन में विरहाग्नि के ताप को देखकर अन्य व्यक्ति भी ऐसी याचना करते हैं, विश्वरूपी शलभ रुदन के साथ सिर पीट कर यह दुःख प्रकट करता है कि मैं इस दीपक में मिल कर क्यों न जल सका (अर्थात् संसार के व्यक्ति भी कवयित्री के जीवन-दीप के साथ अपनी समाप्ति की इच्छा करते हैं।)

सिहर-सिहर.........................हे बादल !

हे मेरे दीपक ! तुम काँप-काँप कर जलते रहो। यदि वेदना के कारण तुम सिहर-सिहर कर जलते हो तो तुम्हारे लिए यह कोई बहुत नई बात नहीं है। आकाश मे बिना स्नेह (तैल) के ही अगणित नक्षत्रों के रूप में दीपकों का प्रकाश दिखलाई देता है। जल से युक्त समुद्र भी बड़वानल के द्वारा भीतर ही भीतर जलता रहता है। बादलों के समूह में भी जलने वाली बिजली सदैव वर्तमान रहती है अतः तुम भी इन सबको देख-देख कर काँपते-काँपते जलते रहो।

विहँस विहँस.............................की हल-चल !

हे मेरे दीपक ! तुम हँस-हँस कर जलते रहो। तुम्हारे अन्दर जो विरहाग्नि है वह कोई निराली नहीं है। पेड़ के वे अंग भी, जो बिल्कुल हरे और कोमल होते है, अपने अन्दर अग्नि को धारण किये हुए है तथा पृथ्वी जैसे जड़ पदार्थ के भीतर भी तापों की हल-चल समाई हुई है (अर्थात् पृथ्वी के भीतर भी अग्नि भरी हुई है)। इसलिए तुम को (जीवन दीप को) भी विरहाग्नि से दुखित नहीं होना चाहिए वरन् यह देख कर कि ज्वाला का तो सर्वत्र ही निवास है प्रसन्न हो कर जलना चाहिए।

बिखर-बिखर.............................से चञ्चल !

हे दीपक ! तुम अपने प्रकाश को बिखेरते हुए सर्वत्र ही अपनी आभा फैलाओ। जिस प्रकार वायु से दीपक की लौ बुझ जाती है वैसे ही मेरे निश्वासों से (जीवन-दीप) बुझ जायेगा ऐसा तुम मत सोचो। मैं अपने कोमल चंचल पलक रूपी वस्त्र की ओट किये हुए हूँ और इससे अब तुम्हें बुझने का भय त्याग कर सर्वत्र प्रकाश फैलाना चाहिए।

सहज-सहज.............................आंसू-जल !

हे मेरे दीप ! तुम सहज-स्वभाव से धीरे-धीरे जलते रहो। किसी चीज की सीमा ही उसके छोटेपन का द्योतक है। किन्तु जीवन-दीप तो अनादि है। उसे अपने समाप्त होने की बात नहीं सोचनी चाहिए। जिस प्रकार दीपक दीर्घ समय तक तभी जल सकता है जब उसमें तेल हो, उसी प्रकार कवयित्री कहती है कि मैं भी अपने नेत्रों के कोरों में विरह के कारण निरन्तर अक्षय वारि-धारा रूपी स्नेह रखती हूँ जिसके फलस्वरूप जीवन-दीप अनादि काल तक जलता रह सकेगा।

सजल-सजल.............................करता चल !

जीवन-दीप स्नेह से परिपूर्ण है। इसलिए हे दीपक, तुम सजल हो कर सदैव जलते रहो। अन्धकार असीम है किन्तु तेरा प्रकाश भी सदैव रहने वाला है। अतः तुम अन्धकार के साथ बराबर सदैव ही अपने प्रकाश फैलाने के खेल को खेल सकते हो। तुम अन्धकार के अणु अणु में व्याप्त हो जाओ और बिजली की चमक के

चित्रों को अंकित करते चलो।

सरल-सरल..............................आलोलित कर !

हे मेरे जीवन-दीप, तुम सरल रीति से जलते रहो। जितना जल जलकर तुम अपने-आप को नष्ट करते जाओगे उतना ही वह छलनामय प्रभु तुम्हारे समीप आता चला जायेगा। इस प्रकार अथक प्रतीक्षा करने पर तुम्हारा उस छलनामय प्रिय प्रभु से साक्षात्कार होगा। उस समय मिलन का अवसर प्राप्त करके तुम उसकी कान्ति से घुल-मिल कर एकाकार हो जाना (जीव ईश्वर से मिल कर उसके साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है)। इस प्रकार हे मेरे जीवन-दीप ! तुम धीमी-धीमी गति से जलते रहो और प्रतीक्षा करते हुए अपने अभीष्ट प्रिय-प्रभु के पथ को आलोकित करते रहो।

विशेष—इस कविता में महादेवी जी ने दीपक का रूपक बांधकर अपने जीवन को प्रभु प्रतीक्षा के निमित्त स्थिर रखने की बात कही है। कहीं-कहीं जीव की उत्पत्ति और लय आदि का कथन होने के कारण दार्शनिक तथ्य भी देखने को मिलते हैं।

## गीत ३७

प्रसंग—इस कविता में महादेवी जी ने अपने विषय में प्रभु से प्राप्त वेदना का वर्णन करते हुए प्रिय को उसका अनुभव करने की प्रार्थना की है जिससे उसे भी इस दुःख का अनुभव हो सके। इसके साथ केवल अपने दुःख को ही नहीं रोतीं, संसार की विविध वस्तुओं की ओर संकेत करके उन्होंने संसार की विविधता और परवशता का वर्णन किया है और प्रभु को उनकी ओर कृपा करने के लिए प्रेरित किया है।

शब्दार्थ—आलोक=उजाला। तिमिर=अन्धकार। संसृति=संसार। नूतन=नया।

मेरे हँसते..............................कलियाँ देखो !

व्याख्या—कवयित्री अपने प्रिय प्रभु से कहती हैं कि हे प्रिय ! आप केवल मुझे देख कर ही संसार की स्थिति को इस तरह की न समझो। यदि मैं किसी समय प्रसन्न हूँ तो आप केवल मेरी प्रसन्नता ही न देखें

को वह संदेशवाहक बनाना चाहती हैं वे स्वतः कार्यव्यस्त हैं और संदेश पहुँचाए जाने की उनसे संभावना नहीं की जा सकती। तरह-तरह की कल्पना करके यही भाव इस कविता में व्यक्त किया गया है।

शब्दार्थ—सित=सफेद। मसि=स्याही। इंगित=इशारे। प्रवाल=मूँगा। अवगुण्ठन=घूँघट, परदा। मनुहार=विनय।

कैसे सन्देश······················लिख जाती!

व्याख्या—महादेवी जी अपने प्रिय से कहती है कि हे प्रिय! तुम्हारे पास मैं सदेश भेजने में समर्थ नहीं हो सकी। संदेश भेजने के लिए मेरे पास नेत्रों के जल की सफेद, कभी समाप्त न हो सकने वाली स्याही है। मेरे दोनों नेत्र स्याही से भरी हुई दो प्यालियाँ हैं। व्यतीत होने वाले अनेक पक्ष के पृष्ठ हैं जिन पर मैं सुधि की कलम की सहायता से श्वासों के अक्षर लिख सकती थी। किन्तु जिस समय मैं लिखने का प्रयत्न करती थी उसी समय आपकी स्मृति से बेसुध हो जाती थी और लिखना कुछ चाहती थी पर बेसुधी की दशा में कुछ-का-कुछ लिख जाती थी (अतः किसी प्रकार का संदेश आपके पास भेजा ही कैसे जा सकता था जब कि वह लिखा ही न गया—यह भाव है)।

छायापथ में························दे आती!

(कहने को तो) छाया पथ (आकाश गंगा) में छाया की भाँति चंचल न जाने कौन-कौन प्रतिपल आते जाते दिखाई देते हैं, उनके संकेत बड़े भ्रमपूर्ण होते हैं। कभी तो वे मुझे बड़े रहस्य से भरे हुए लगते हैं और फिर कभी परिचित से लगते हैं। इस प्रकार उनकी अनिश्चित स्थिति होती है। मुझे वह चिर-परिचित विश्वास करने योग्य दूत नहीं मिलता जिससे मैं अपने हृदय की सम्पूर्ण वात कह सकूं!

अज्ञात पुलिन······················कर जाती!

उषा रूपी सुन्दरी अपनी प्रवाल के समान लाल रंग की तरणी में (उषा कालीन लालिमा से तात्पर्य है) बहुत उजली किरणों को भरती है (उषा के पश्चात् प्रकाश की दशा की ओर संकेत है)। ऐसी अपनी तरणी को यह अन्ध-

कार की सरिता के नीलम के समान कूलों पर नित्य ले जाती है। नौका-संचरण के बाद वह उषा-सुन्दरी मुस्कराती है। मरी करुण कहानी पर वह संवेदना प्रकट करती-सी प्रतीत नहीं होती वरन् अपनी मुस्कान के साथ विपरीत स्थिति प्रस्तुत कर जाती है। भला उसे में अपना सन्देशवाहक कैसे बना सकती हूँ।

सज केसर पट..........................छलकाती !

सन्ध्या का किसी सुन्दरी के रूप में वर्णन करते हुए कवयित्री कहती हैं कि सन्ध्या रूपी स्त्री केसर के समान पीले रंग के वस्त्रों से सजी हुई होती है, तारे रूपी बिन्दी लगाये होती है नेत्रों में अंधकार रूपी अंजन लगाये होती है, अपने कोमल पैरों में लालिमा रूपी मेंहदी लगाए होती है। इस रूप के साथ वह अपने रूप की मादक मदिरा से गगरी भर कर आती है। वह बड़े अनुराग और सुहाग से भरी हुई प्रतीत होती है और इस प्रकार मेरे विषाद में वह आनन्द का प्रसार कर जाती है फिर उसके द्वारा संदेश कैसे भेजा जा सकता है ?

डाले नव..........................धो जाती !

रात्रि रूपी अभिसारिका नए बादलों का घूँघट डाले हुए है। तारे ही उसके नेत्र हैं जिनमें उसकी करुण चितवन भरी है। अपनी पदध्वनि से सपनों को जगाती हुई, अपने श्वासों से शान्त अंधकार का प्रसार करती हुई वह आती है। रात्रि के समय की ओस ही उस अभिसारिका के, निराशा के कारण निकले हुए आँसू हैं। इस प्रकार वह अपने इस अभिसार के आँसुओं से मेरी मनुहारों को धो डालती है (कहने का तात्पर्य यह है कि रात्रि भी मेरा सन्देश तुम्हारे पास तक पहुँचाने में समर्थ नहीं है)।

विशेष—प्रस्तुत कविता में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। यहां कल्पना के सहारे प्रकृति के बिभिन्न उपादानों का मानवीकरण किया गया है। सन्ध्या, उषा, निशि आदि का सुन्दर रूपक बांधा गया है। कविता सुन्दर भावों से युक्त है और कवयित्री की निजी अभिव्यञ्जना की विशेषता को स्पष्ट करती है।

विशेष—इस कविता में महादेवी जी ने अद्वैतवाद का दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। माया ईश्वर की प्राप्ति में बाधक है। माया के नष्ट होने पर जीव और ब्रह्म का तादात्म्य हो जाता है। माया के नष्ट होने पर सभी सांसारिक बन्धन तुच्छ और अवास्तविक प्रतीत होने लगते है।

कविता रहस्यवादी भावों से युक्त है।

## गीत ४०

प्रसंग—मानव-जीवन क्षणिक है। कवयित्री ने भी जीवन की इस क्षणिकता को समझा है। इस कविता में उन्होंने नाना प्रकार से जीवन की क्षणिकता का वर्णन किया है। साथ ही विविध पदार्थों के उदाहरण दे कर प्रभु से प्रश्न किया है कि क्या मेरा जीवन भी उसी प्रकार नश्वर और क्षणिक है।

शब्दार्थ—कमल दल=कमल के पत्ते। चितेरे=चित्रकार, ईश्वर। तड़ित=बिजली। रेणु=धूल। अवसाद=दुःख। लास=नृत्य।

कमल दल..............................रंग मेरे ?

व्याख्या—कवयित्री ईश्वर से प्रश्न करती है कि हे चित्रकार ! क्या मैं कमल के पत्तों पर किरणों के द्वारा बनाये गए चित्रों के समान क्षणिक और नश्वर हूं ! तुमने मेरे हृदय को बादलों की प्यालियों में चाँदनी का सार भर कर इन्द्रधनुष की कूची ले कर प्यार से रग कर चित्रित किया है। क्या मेरे ऐसे रंग अर्थात् ऐसा जीवन काल के छोटे-से आँसुओ से धुल जाएगा ? (कहने का तात्पर्य यह है कि कवयित्री के जीवन को काल समाप्त तो नहीं कर देगा ऐसी वह आशका प्रकट करती है)।

तड़ित सुधि..............................साज मेरे।

मेरे हृदय के चित्र में विविध वस्तुओं का संयोग है। उसकी स्मृति मे बिजली जैसी तेजी है। वेदना में दुःख के कारण आँसू निकलने से पावस ऋतु को रात्रि की स्थिति समाई हुई है। उसके सपनो में तुमने वसन्त के प्रातःकाल के वातावरण के सदृश मादकता और आनन्द भर दिया है। मेरी यह साज-सज्जा क्या शिरीष के फल की तरह शोभा फैला कर समाप्त हो जायगी ?

है युगों ........................................चिन्ह मेरे !

मेरा इस देश से चिरकाल से परिचय है। मैं संसार के आवागमन की इस राह से सदैव से परिचित हूँ। मेरी चाह ईश्वर को प्राप्त करने की है। उस चाह में एक ऐसी सुगन्धि है जिससे यह सारा विश्व सुवासित हो गया है। जग की सभी वस्तुएं नश्वर हैं। क्या नाश के निश्वास से मेरे ये चिन्ह, जो मैंने संसार में आ कर छोड़े हैं, मिल सकेंगे ?

नाच उठते ........................................प्राण मेरे !

(कवयित्री कहती है कि मेरी साधना युग-युग की है इसलिए निमिष और पल मेरी पद-ध्वनि सुनते ही कांप उठते हैं क्योंकि मेरी लम्बी साधना में उन का क्या महत्व है ? मैंने अपने नेत्रों से असीमता को नाप लिया है (अर्थात् मैंने अपने नेत्रों में असीम प्रभु को समा लिया है )। क्या अब मेरे प्राण मृत्यु के हृदय में समा सकेंगे ? क्या मृत्यु मुझे नष्ट करने में समर्थ हो सकेगी।

आंक दी ........................................उपहार मेरे !

कवयित्री स्वत: ईश्वर प्रेम के कारण वेदना और मिलन की प्यास से व्याप्त हैं। संसार भी ईश्वरोन्मुख हो कर ऐसा ही चाहता है। कवयित्री अपने प्रिय प्रभु से कहती है कि, आपने इस सारे संसार में मेरी अमिट प्रिय-प्राप्ति की इच्छा को क्यों अंकित कर दिया है ? कभी तो सबको मेरे जैसा वेदना में आँसू बहाने का दु:ख अनुभव करना पड़ता है और कभी हर्ष और प्रसन्नता से पुलक और कम्पन का अनुभव करना पड़ता है। क्या मेरे मिटने पर जग को उपहार रूप दी गई ये उपर्युक्त बातें भी समाप्त हो जायेंगी ?

विशेष—यह कविता रहस्यवादी भावों से युक्त है। मानव क्षण भंगुर और नश्वर है। प्रभु प्राप्ति में लगे रहने पर वेदना, हर्ष और स्वप्नमय पुलक का अनुभव होता है। अन्त मे सब नष्ट होते हैं। मानव के नष्ट होने पर भी उसके पद-चिन्हों पर चलने वाले संसार मे भी रहते हैं।

## गीत ४१

प्रसंग—इस कविता में कवयित्री ने प्रकृति के विविध पदार्थों को अति

प्रसन्न पाया है। प्रकृति की प्रसन्नता से कवयित्री को ऐसा अनुभव होता है मानो ये सब इसीलिए प्रसन्न हैं कि अब प्रिय का आगमन निकट है। ऐसा अनुभव करने से उनकी सारी वेदना दूर हो कर उन्हें हर्ष और उल्लास की स्थिति की प्राप्ति हो रही है।

शब्दार्थ—चल = चंचल। स्वर्णपाश = सोने का पाश। कनक रजत = सोना, चांदी। नूपुर = विछुए। परिमल = सुगन्धि। भ्रान्त = भूला-भटका। स्पन्दन = कम्पन।

मुस्काता..............................मधु प्याले हैं !

व्याख्या—आकाश की प्रसन्नता को देख कर कवयित्री कहती है कि हे सखि ! आसमान प्रसन्नता के साथ मुस्करा रहा है। वह कुछ ऐसा संकेत-सा करता है कि अब प्रियतम आने वाले हैं। आकाश में बिजली की चंचल, सोने की सी रस्सी में बंध कर वर्षा के रूप में रोते रहने वाला बादल हस रहा है। समुद्र अपने कोमल हृदय की वाड़व रूपी ज्वाला को गा-गा कर शान्त कर रहा है। दिन रात्रि को और रात्रि दिन को सोने और चाँदी के मधु से भरे हुए प्याले दे रही है (इससे तात्पर्य यह है कि दिन अपनी सुनहरी आभा के साथ समाप्त हो कर रात्रि को आने देता है और रात्रि अपनी चांदी जैसी उज्ज्वल आभा के साथ दिन का सानन्द स्वागत करती है। यह आनन्दमय वातावरण कवयित्री को प्रिय आगमन का आभास देता है)।

मोती..............................मतवाले हैं।

तारक परियाँ छिप-छिप कर नाच रही हैं। रात्रि में जो ओस गिर रही है वह मानो इन तारक परियों के नूपुरों के मोती हैं जो नृत्य करते समय गिर गए हैं। वे इतस्ततः बिखर रहे है। ओस की बूँदों पर मलय-समीर सुगन्धि की अंजलि भर कर आ-जा रहा है। ऐसी स्थिति में जीवन के क्षण विस्मित हुए और वातावरण की शोभा से मतवाले हो कर दिशा भूले हुए पथिक की भाँति रह-रह कर आ-जा रहे हैं। यह वातावरण कवयित्री को प्रिय आगमन की सूचना देता है।

सघन वेदना..............................पहरे वाले हैं !

बादलों के सघन आच्छादन में जैसे बिजली सुनहरी कान्ति भर

देती है वैसे ही बहुत अधिक वेदना के आच्छादन में स्मृति की बिजली सुनहरी कान्ति भर देती है (कहने का तात्पर्य यह है कि प्रिय की सुधि से वेदना भी आनन्द से भर जाती है)। मेरी निश्वासें इन भीगे अधरों पर स्मित का इन्द्र-धनुष बना रही हैं। अब तक आँखों से आंसू निकलते रहते थे परन्तु अब आँखों से आँसू भी नहीं निकल रहे। उसके स्थान पर आँखों में प्रिय मिलन के स्वप्न लगातार उसी तरह वर्तमान हैं जैसे कोई पहरेदार वर्तमान रहता है।

नयन श्रवणमय·························छाले हैं।

इस वातावरण मे कवयित्री के नेत्रों और श्रवणों की एक-सी हालत हो रही है। नेत्र सुनने के लिए भी इतने ही व्यग्र हैं जितने प्रिय को देखने के लिए और श्रवण प्रिय को देखने के लिए भी इतने ही व्यग्र हैं जितने उनकी बात सुनने के लिए। यह एक विचित्र उलझन की स्थिति हो रही है। हे सखि! शरीर के रोम-रोम में एक नया कम्पन हो रहा है। और अब तक जितने भी प्राणों के दुखमय अनुभव रूप आते थे वे सब पुलकों से भर कर पुष्पों की तरह सरस और आनन्दप्रद हो गये। इसलिए मैं यह कह सकती हूँ कि ये सब बातें यह व्यक्त करती है कि अब मेरे प्रियतम आने ही वाले हैं।

विशेष—१. कविता में प्रिय समागम के समय की विचित्र स्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है। अन्तिम छन्द की 'नयन श्रवणमय' वाली बात अन्य कवियों द्वारा भी व्यक्त की गई है—

गिरा हो जाती है सनयन
नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन
और मन करता बात श्रवन—पन्त

२. इस कविता में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। सर्वत्र ही आत्मा की, प्रिय-मिलन की सम्भावना करके, सभी वस्तुओं में उसकी छाया देखने की स्थिति का वर्णन है।

## गीत ४२

प्रसग—महादेवी जी का प्रिय की पीर को अपनाने का निजी दृष्टिकोण है। वह सदैव प्रिय-विरह से व्याप्त रहना चाहती है। उन्हें यही प्रिय है कि वह अपने प्रिय के लिए निरन्तर जलती मरती रहें। इसके साथ ही वह कामना करती है कि प्रिय सदैव सुखी और चिरन्तन रहे। ये ही भाव इस कविता में रखे गये है।

शब्दार्थ—आभा=कान्ति, चमक। मुक्तोहल=मोती। दंशन=काटना। आवर्त्त=भंवर, घेरा। परिमलमय=सुगन्धि से युक्त।

झरते नित..........................कंकण मेरे हों !

व्याख्या—कवयित्री प्रिय वेदना में अपने नेत्रों से निरन्तर आँसुओं के प्रवाहित होने के लिए कामना करती है। प्रिय का स्वरूप ऐसा है जैसे कि युग युग से उजले रूप में जलती हुई मोतियों की कान्ति वाली तारक माला हो। उसके साथ मेरा स्वरूप ऐसा है जैसे चचल बिजली का थोड़ी-सी आभा वाला कंकण हो। एक ओर प्रिय तारक माला के प्रकाश के समान असीम और श्रेष्ठ तथा चिरन्तन है। दूसरी ओर बिजली की तरह चंचल और थोड़े विस्तार वाला मेरा जीवन है।

ले-ले..................................घन मेरे हो !

कवयित्री प्रिय के स्वरूप की बात कहती है कि तरल रजत और कंचन जैसी कान्ति का प्रसार करने वाले चन्द्र और सूर्य से विश्वरूपी आंगन सदैव लिपा रहता है। रात्रि और दिन मे यह आभा फैलती रहती है। ऐसी शोभा से युक्त आकाश प्रिय का है। इसके विपरीत कवयित्री अपने लिए यह इच्छा प्रकट करती है कि मेरा स्वरूप ऐसा हो जैसे कि पल-पल मे मिटने वाले और फिर बन कर आने वाले बादल होते हैं।

पद्मराग ..........................तृण मेरे हों !

ईश्वर की स्थिति उस नन्दन वन के समान है जिसमें पद्मराग नामक बहुमूल्य पत्थर की कलियाँ विकसित होती है और नीलम के से रंग वाले भ्रमर गुंजार करते रहते है। वहाँ पर सदैव सुगन्धि ही रहती है। मेरी स्थिति उस तिनके के समान होनी चाहिए जो वेदना-जन्य अश्रु के भारतुल्य ओस की बूँद से दबकर झुका रहता है।

तम-सा..........................स्पन्दन मेरे हों !

ईश्वर की स्थिति बतलाते हुए कवयित्री कहती हैं कि वह अन्धकार के समान शान्त और आकाश के समान असीम विस्तार वाले है। वह हास और रुदन से दूर हैं। उन्हें हास और रुदन का परिचय नहीं है अर्थात् ईश्वर को सुख-दुख व्याप्त नहीं होते। ऐसी शून्यता ईश्वर की है। परन्तु मेरा जीवन ऐसा ही होना चाहिए जिसमें सुख और दुखों का कम्पन हो (कवयित्री को एकसी स्थिति अभीष्ट नही है—यह भाव है)।

जिसमें कसक..........................बन्धन मेरे हों !

कवयित्री को दिव्य निर्वाण सुख की अभिलाषा नही है। निर्वाण के सुख में न तो पीड़ा ही है और न सुधि आने पर जो हृदय काटने के समान अनुभव होता है वह ही है। ऐसा निर्वाण और मुक्ति का सुख उन्हें नहीं चाहिए। उन्हें तो जीवन को सैकड़ों प्रकार से आबद्ध रखने वाले सुख दुखात्मक बन्धन ही प्रिय हैं।

बुद बुद..........................क्षण मेरे हों !

ईश्वर संसार की सृष्टि और उसका विनाश करने वाले हैं। उनके सृष्टि-रचना-चातुर्य के कारण बुद-बुद में असीम आवर्त्त समाये हुए है। सृष्टि के कण-कण में जीवन को परिवर्तित करने की शक्ति निहित रहती है। वह सदैव सृष्टि और प्रलय करते रहते हैं। कवयित्री कहती हैं कि उनका यह स्वरूप उन्हीं को अभीष्ट हो। मैं तो अपने लिए उन क्षणों की स्थिति चाहती हूँ जो बनते और मिटते रहते हैं।

सस्मित..........................निर्मम मेरे हों।

इन पंक्तियों में कवयित्री कहती है कि संसार अपनी सारी विशेषताओं सहित प्रिय का ही है और उनका ही रहे, मुझे इसकी कोई कामना नहीं है। मैं तो केवल प्रिय को चाहती हूँ। सस्मित, पुलकित और सदैव सुगन्धि से युक्त इन्द्रधनुप के समान विविवता से भरा हुआ सम्पूर्ण विश्व तथा इस विश्व का कण-कण प्रिय का है। मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो यही चाहती हूँ कि वे निष्ठुर प्रियतम क्षण-भर के लिए मुझे प्राप्त अवश्य हो जायें।

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री ने प्रभुकी प्रभुता और अपनी लघुता को व्यक्त किया है। वह प्रभु की प्राप्ति के सामने सभी सांसारिक वस्तुओं और वैभवों को त्याज्य मानती हैं।

२. इस कविता में उपमा अलंकार का प्रयोग बहुलता के साथ किया गया है।

## गीत ४३

प्रसंग—इस गीत में कवयित्री अपने प्राणो से कहती हैं कि प्रिय का नाम ही मन से अधिक अभीष्ट और श्रेयस्कर है। प्रिय के विरह की वेदना को ही सुखद अनुभव करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रभु से विमुख है उसका जीवन वास्तव में जीवन नही है वह तो प्रभु का उपहास है।

शब्दार्थ—प्राणपिक=प्राण रूपी कोयल। पावस=वर्षा। विभा=चमक, कान्ति। चल=चंचल। बालुका=रेत, सिकता।

प्राण पिक........................ प्रात रे कह !

व्याख्या—हे मेरी प्राण रूपी कोयल ! तू प्रिय के नाम की ही कूक लगा। मैं अपने असीम प्रिय में समा कर स्वतः मिट गई हूँ। मेरा निस्सीम प्रिय भी मेरे ऊपर ऐसा कृपा करने वाला हुआ कि वह मेरे छोटे से हृदय में बंध गया (अर्थात् प्रिय का निवास मेरे हृदय में हो गया यह उनकी कृपा के कारण ही हुआ है)। अब तक मैं प्रिय के विरह में दुखी होती रही हूँ। किन्तु अब यह विरह रात्रि समाप्त हो रही है और इस विरह की रात्रि को ही तू चिर मिलन का प्रातःकाल समझ ले (ईश्वर का सामीप्य निकट है—यह भाव है)।

दुख अतिथि..........................मास रे कह !

हे हठीले मन ! मेरे नेत्रों से जो आँसू निकल रहे हैं उन्हें तू दुःख के क्रन्दन से उद्भूत मत समझ। बात यह है कि दुःख रूपी अतिथि का पद-प्रक्षालन करके विश्व को सिक्त करने वाला यह निर्मल जल है। जिस प्रकार पावस ऋतु संसार को सजल बना कर उपकार करती है उसी प्रकार मेरे अश्रु भी उपकारार्थ सहानुभूति से उद्भूत हुए प्रवाहित हो रहे हैं (जग के प्रति कव-

यित्री को सहानुभूति है—यह भाव है)।

ले गया·· ························उत्पात रे कह !

प्रिय विरह में अपनी स्थिति बतलाते हुए कवयित्री कहती हैं कि मुझे नींद नहीं आती मानो दिन अपने साथ ही किसी प्रकार का लोभ दिला कर निद्रा को ले गया है। अब वह नींद स्वप्न बन-बन कर मेरे नेत्रों के आगे आ रही है। इस तरह रात्रि में मुझे नींद नहीं आती वरन् इसे मेरी जाग्रत अवस्था ही समझना चाहिए।

एक प्रिय······ ···················उपहार रे कह !

रात्रि और दिवस के बारे में कवयित्री कहती हैं कि रात्रि मेरे प्रिय के नेत्रों की कालिमा के समान है। दिन मेरे प्रिय की मुस्कान की कान्ति के समान है। इस तरह यह रात्रि और दिन नहीं हैं वरन् नेत्र और स्मृति के रूप में दी गई प्रिय की भेंट हैं।

श्वास से························वरदान रे कह !

मेरे प्रत्येक श्वास से मेरा कम्पन प्रकट हो रहा है। मेरे नेत्रों से जो आँसू निकलते हैं वह मानो मेरा हृदय ही द्रवित हो कर रिस रहा है। प्रिय ने मुझे जो कुछ दिया है वह मेरे लिए अन्यत्र अप्राप्य था इसलिए उसके दिए हुए को मैं दान नही अपितु वरदान मानती हूँ। वह ऐसे वरदान देने वाले हैं जिससे मुझे निर्वाण की प्राप्ति होनी सम्भव है।

चल क्षणों························उपहास रे कह।

जीवन क्या है? इसे बतलाते हुए कवयित्री कहती हैं कि यह जीवन चंचल क्षणों का थोड़ी देर के लिए किया गया संचय है। जीवन की स्थिरता इतने समय की बात से ही जानी जा सकती है जितने समय की बूँद बालू में गिर कर स्थिर रह सकती है। इस प्रकार के जीवन को, जो प्रभु विमुख है, और केवल क्षण-क्षण करके इकट्ठा किया हुआ मान लिया गया है, वास्तव में जीवन नहीं कहना चाहिए। यह तो प्रिय का निष्ठुर उपहास मात्र है (प्रभु प्राप्ति में व्यस्त जीवन ही वास्तव में जीवन है—यह भाव है।)

विशेष—१. इस कविता में कवयित्री ने अपनी निश्चित धारणा से अपने मन को समझाया है। ईश्वर के बिना जीवन में और कुछ सार नहीं

है। जो लोग ऐसा नहीं समझते यह समझना चाहिए कि उन पर ईश्वर की कृपा नही है।

२. इस कविता में जीवन की क्षणिकता और अस्थिरता को 'वालुका से बिन्दु परिचय' का उदाहरण देकर समझाया जाना बहुत उपयुक्त लगता है।

## गीत ४४

प्रसग—यह गीत वर्षा ऋतु को देख कर कवयित्री के दर्द भरे दिल से निकला है। मेघ को देखने पर विरही, विरहणियों की विरह दशा बहुत उद्दीप्त हो जाती है। महादेवी जी मेघ को देख कर यह आशा करती है कि शायद यह मेघ उनके लिए कुछ सुखद संदेश लाया है। बाद मे भाव-विभोर हो कर उनकी आँखों से आँसू निकलने लगते है—यही भाव इस कविता में रखा गया है।

शब्दार्थ—नत=झुका हुआ। निस्पन्द=शान्त। परिमल=सुगन्धि। छिन्न=टूटे हुए।

लाए कौन······—·························सावन !

व्याख्या—कवयित्री घिर कर आए हुए नवीन बादलों को देख कर कहती हैं कि ये बादल कौन-सा संदेश लाये है। जो आकाश अब से पहले बहुत ऊँचा उठा हुआ था मानो वह गर्व से अपना सिर उठा रहा हो अब वह आकाश बादलों के घिर कर नीचे हो आने पर झुकता हुआ-सा लगता है। अब तक आकाश के हृदय में किसी प्रकार का कम्पन नहीं हो रहा था। अब उसका हृदय बहुत अधिक पुलकायमान हो रहा है और ये जो बादल बरस रहे है वह मानो उसका पुलकित हृदय ही उमड़ रहा है।

चौंकी·······································कंकण !

रजनी जो निद्रा के कारण अलसाई हुई पड़ी थी बादलों की ध्वनि सुन कर चौंक पड़ी। उसके सांवले, पुलक से भरे हुए काँपते हाथ में विद्युत रूपी कंकण दमक उठे (रात्रि में बिजली चमकने से तात्पर्य है)।

दिशि का..........................................के कण !

सर्वत्र सुगन्धि फैल रही है मानो दिशा रूपी नायिका का विस्तृत चंचल अंचल सुगन्धि से व्याप्त हो गया हो। रात्रि में जो जुगनू चमकते हुए दिखलाई देते हैं वे मानो दिशा-नायिका के हार के टूट जाने से मोती बिखर गये हैं जो छोटे-छोटे और कान्ति से युक्त हैं।

जड़ जग..........................................वन-वन।

जड़ जग जो अब तक शान्त था अब कम्पायमान हो गया है। जो निश्चल पदार्थ थे सभी चंचल हो गए है। पृथ्वी के हृदय में जो संचित विचार (बीज) थे वे अब जल स्पर्श से कोमल-कोमल अंकुरों के रूप में फूट पड़े है।

रोया..........................................नर्तन।

मेघ मालाओं को देख कर चातक रोने लगा क्योंकि अब वह अपने प्रिय मेघ से मिलने के समय पिछली कष्टपूर्ण स्मृतियों का स्मरण कर रहा है। कोयल सकुचाने लगी क्योकि वर्षा में उसका गाना कैसे हो सकेगा! मयूरों ने मस्त होकर इसी प्रकार नाचना शुरू कर दिया जैसे वर्षा की झड़ी लगती थी। मानो वह उन्हीं वर्षा की झड़ियों को अब नाच के रूप में दुहरा रहे हों।

सुख...... .. ..................विस्मित लोचन !

कवयित्री का छोटा-सा हृदय सुख और दुख से परिपूर्ण हो गया। प्रकृति का वर्षाकालीन दृश्य निस्सदेह मनोरंजक लगता है किन्तु विरह में यह और भी अधिक कष्टप्रद होता है इसलिए वह उससे सुखी होकर भी विरह से दुखी हैं। जिस प्रकार मोती के समान उजली जल की बूंदें होती हैं उसी प्रकार उनके नेत्रों में भी विस्मित होकर आसुओं की बूंदे उजले मोतियों के समान व्याप्त हो गईं (वर्षा को देख कर उनकी विरह दशा बहुत बढ़ गई और एतदर्थ वह रोने लगी—यह भाव है)।

विशेष—कवयित्री ने यहाँ पर प्रकृति का वर्षा ऋतु में सुन्दर रूप चित्रित किया है। मेघ को देखकर चित्तवृत्ति और ही हो जाती है। इसी भाव से सम्बन्धित मेघदूत की निम्न पंक्ति दृष्टव्य है—

मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः,
कन्ठाश्लेष प्रणयिनी जने किं पुनर्दूर संस्थे।

अर्थात् मेघ को देख कर सुखी मनुष्य का हृदय भी चंचल हो उठता

है; जब प्रेयसी के गले से लिपटने का उत्सुक प्रेमी उससे दूर हो तब वही जाने उस पर क्या बीतती है।

## गीत ४५

**प्रसंग**—इस कविता में महादेवी जी अपने विचार ईश्वर के प्रति रख कर कहती है कि अब मुझे ईश्वर का अनुभव होने लगा है। बहुत दिन से प्रयत्न करने के पश्चात् अब सर्वत्र ईश्वर प्राप्ति की स्थिति सुलभ प्रतीत होती है। सृष्टि के प्रत्येक तत्व और प्रत्येक स्थिति में उन्हें ईश्वर की छवि के ही दर्शन करने की कामना है।

**शब्दार्थ**—सोते=मोह निद्रा में सोये हुए। लोरी गाते=चैतन्य बनाते, ज्ञान देते हुए। नभ मन्दिर=आकाश रूपी मन्दिर। मणि-दीपक=मणि के समान चमकीले तारे। शूल=दुख, कष्ट। मोती=आँसू। दर्पण=शीशा। मुकुर=शीशा।

तुम सो ........................................विछाऊँ !

**व्याख्या**—महादेवी जी अपने प्रिय प्रभु से कहती हैं कि हे प्रभु, अब तुम सो जाओ और मैं गा-गाकर तुम्हारे सोने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करूँ। मुझे अब तक मोह निद्रा मे सोते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया और मेरी मोह निद्रा को और भी अधिक बढाने के लिए तुमने अपने सृष्टि की माया का सगीत सुना दिया। अब आपकी बारी है। मुझे तो आपकी कृपा से आपका स्नेह प्राप्त हो गया। अब आप मेरी आंखों मे आकर सो जाओ। मैं अपनी पलको में आपके लिए स्वप्नों की सेज बिछाती हूँ।

प्रिय ! .............................. प्राण जलाऊँ !

हे प्रिय ! मै अपने प्राणो को इस प्रकार जलाऊँगी कि उसका कण-कण बिजली जैसी चमक से युक्त होगा। उसके साथ तेरे आकाश रूपी मन्दिर के नक्षत्र रूपी मणिदीप ऐसे है जो बुझ-बुझ जाते है (प्राणों के दीप चिर-प्रकाशवान रहेगे—यह भाव है)।

क्यों.....................................रो फैलाऊँ।

आप जीवन के कांटो मे होकर क्यों आया करते है ? आपको प्रतिक्षण जीवन के कण्टकाकीर्ण मार्ग से आते हुए देख कर मै मोतियों को गला कर

आपके रास्ते में विछा दूँ। आप बड़े सुकुमार हैं आप उन गले मोतियों (आंसुओं) पर होकर ही इधर आइए।

पथ को············ ·············आज बसाऊँ!

हे प्रिय! आप मेरे पास आकर मुझे वेदना देकर चले गये हैं। आपकेआने के मार्ग की धूल में आपके आने के पदचिन्ह अंकित हैं अर्थात् मैं आपकी स्मृति से पूर्ण हूँ। अब मैं इसे अपनी आँखों में अंजन वना कर क्यों न लगा लूँ?

जल सौरभ·················· ··········जल सिचवाऊं!

हे प्रिय! मेरा हृदय जल कर सुगन्धि फैलाता है। हृदय मेरा आर्द्र हो चला है। उधर मेरे हृदय मे आपकी स्मृति भी वर्तमान है। इसलिए जलते हुए हृदय में आपकी स्मृति भी जलती है। इसलिए मैं अपने नेत्रों में आसुओं के पानी को एकत्र करके आपकी स्मृति को जलने से वचाऊँ (स्मृति सजग रखने का भाव है)।

इन फूलों··· · ··· · ········· ·····दे जाऊँ!

हे प्रभु! तुम्हारी माला की कलियाँ आगे चल कर फूल वन जाती है। अर्थात् आपकी स्मृति आपकी प्राप्ति को सम्भव करा देती है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि विरह व्यथा के काँटे उत्पन्न हों क्योंकि पुष्प काँटों में ही पैदा होता है। अतः मैं चाहती हूं कि ससार को वेदना रूपी काँटे प्रदान कर दूँ ताकि सभी को वेदना के द्वारा प्रिय की प्राप्ति के पुष्प के दर्शन हो सकें।

अपनी···························सुकुर वनाऊँ।

दर्पण में सभी कुछ दिखलाई देता है। कवयित्री कहती है कि हे प्रभु! आप अपने असीम स्वरूप को मेरे हृदय के छोटे से दर्पण में देख सकते हैं अर्थात् मैंने असीम को अपने हृदय में वैठा रखा है। इसलिए मेरा विचार है कि मै प्रत्येक पल को एक दर्पण का रूप दे दूँ ताकि प्रत्येक पल में आपकी असीमता मुझे दृष्टिगतहोती रहे (चिर-सामीप्य लाभ की कामना है)।

हँसने में························सिखलाऊँ!

हे प्रभु! जिस समय कोई हँसता है अर्थात् सुख और आनन्द से युक्त

तुम्हारे कष्ट दूर हो गये है अतः तुम भी प्रसन्न होकर खिलते रहो।

विशेष—१. इन कविता में कवयित्री ने केवल अपनी ही बात न कह कर मानव मात्र को संदेश दिया है। उन्होंने गौतम बुद्ध और श्रीकृष्ण के उदाहरण दिये हैं। बुद्ध की करुणा और कृष्ण के प्रेम का अमर संदेश आज भी नव जीवन प्रदान करने वाला सिद्ध होना चाहिए।

२. इस गीत में मानव को उद्बोधित किया गया है। कवयित्री का परामर्श है कि उसे अपने जीवन के कष्टों की चिन्ता नही करनी चाहिए। पुष्प भी तो गुलाब के काँटों मे रह कर अपनी सुगन्धि का विस्तार करता है। इस गीत का भाव साम्य रखने वाली निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है।

जितने कष्ठ कण्टकों में हो जिसका जीवन सुमन खिला।
गौरव गंध उसे हो उतना अत्र तत्र सर्वत्र मिला॥

## गीत ४८

प्रसंग—इस गीत में कवयित्री ने अपने जीवन में लौकिक जग मे स्थूल रूप से दृष्टिगोचर होने वाली पूजा और अर्चना की विधि को महत्त्व न दे कर अपने जीवन को ही एकमात्र उपासना रूप मे व्यक्त किया है। यदि इस प्रकार का जीवन बन सकता है तो फिर पूजा और अर्चना की क्या आवश्यकता है? ऐसे ही भाव इस गीत में रखे गये है।

शब्दार्थ—लघुतम=छोटा-सा। अभिनन्दन=स्वागत। अक्षत=पूजा के लिए चावल। उत्पल=कमल।

व्याख्या—पूजा और अर्चना का निपध करते हुए महादेवी जी कहती हैं कि मुझे पूजा और अर्चना की क्या आवश्यकता है? मेरा जीवन उस असीम प्रभु के सुन्दर मन्दिर के समान है (अर्थात् मैं अपने लघु जीवन में ईश्वर को समाए हुए हूँ) मै अपने स्वासों से ईश्वर का सदैव स्वागत करती रहती हूँ। उनके पैरों की धूल धोने के लिए मेरे नेत्रों में सदैव आँसू आए रहते हैं। मेरे शरीर के रोम ही उस प्रभु की पूजा के लिए चावल हैं और मेरी पीड़ा ही पूजार्थ शीतल चन्दन है। मेरा यह मन रूपी दीपक प्रभु-स्नेह रूपी तेल के

द्वारा झिलमिल-झिलमिल करके प्रत्येक क्षण जलता रहता है। मेरे नेत्रों की पुतली उस प्रकार खिली रहती है जैसे नए कमल के खिले हुए पुष्प होते हैं। (अतः वह पुतली ही मानों पूजा के लिए प्रस्तुत पुष्प है) मेरे हृदय में प्रत्येक क्षण कम्पन सा होता रहता है। वह कम्पन ही मानो ईश्वर की पूजा के लिए प्रयोग में लाई गई धूप है जो इतस्ततः प्रसारित हो रही है। जैसे ईश्वर पूजा में कोई ईश्वर का नाम जपता है और फिर माधुर्य के लिए किसी वाद्य विशेष की ताल दी जाती है वैसे ही मेरे अधर प्रिय-प्रिय का जाप करते हैं और मेरी पलकें मानो नाचती हुई उस अधरों के प्रिय-प्रिय, जाप के साथ ताल देती है। जब मेरा जीवन ही इस प्रकार साधनामय बना हुआ है तब मुझे फिर और किसी बाह्य पूजा की क्या आवश्यकता ?

विशेष—इस कविता में कवयित्री ने अपने शरीर को ही ईश्वर सेवा में लीन दिखलाया है। उनके विभिन्न शारीरिक अंग ईश्वर के स्वागत और उन्हें प्रसन्न करने की क्रिया में स्वभावतः लीन है। अतः उन्हें अन्य पूजा की विधि की—कोई आवश्यकता नहीं। गीत के भाव सुन्दर और सरल हैं।

## गीत ४६

प्रसंग—कवयित्री ने नाना भांति से अपने साधनात्मक जीवन की अभिव्यक्ति की है। जीवन की नाना प्राकृतिक वस्तुओं से उन्होंने उसकी समता भी दिखलाई है। इस कविता में महादेवी जी अपने जीवन को सान्ध्य-गगन बतलाती हुई अपने विचार अभिव्यक्त करती है।

शब्दार्थ—अरुण=लाल, सन्ध्याकालीन लालिमा। वीतराग=उदासीन मूक=शान्त। चितवन=देखना। मिस=बहाने से। ध्रुव=अटल। पाहुन=अतिथि।

प्रिय सांध्य ........................रंगीले घन।

व्याख्या—अपने प्रिय को सम्बोधित करते हुए महादेवी जी कहती हैं कि हे प्रिय ! मेरा जीवन इस प्रकार का है जैसा संध्या के समय गगन होता है। संध्या के समय क्षितिज की ओर धुंध और अन्धकार फैल जाता है। मेरे जीवन मे भी उसी प्रकार वैराग्य की भावना व्याप्त हो रही है। संध्या

राग भीनी ........................... हठीले ।

व्याख्या—महादेवी जी सन्ध्या को सजनि के रूप में सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सजनि, तू राग (लाल रंग, प्रेम) से भीगी हुई है। तेरे निश्वास भी तरह-तरह के रंगों वाले है (संध्याकालीन सब प्रकार के लालिमामय वातावरण से तात्पर्य है)। तुम्हारे नेत्रों में क्या नवीन मादकता है? तुम्हारे नेत्रों को देखकर पक्षियों को अपने घोसलों की सुधि आ जाती है और वह उनके शब्द करने से अभिव्यक्त होती है जो कि वे लौटते समय कर रहे हैं। तुम्हारी गुलाबी रंग की दृष्टि से जो प्रेममयी प्रतीत होती है, स्वभावतः बड़े हठी खग गण अपनी हठ छोड़कर झूमते हुए अपने घरों को जा रहे है।

छोड़ किस ........................... कर सजीले !

संध्या होने पर रात्रि आती है। कवयित्री कहती हैं न जाने पाताल के किस पुर को छोड़ कर रात्रि आ जाती है। ऐसा लगता है कि वह अपने राग (लाली, प्रेम) से बेसुध, लज्जित और चंचल नेत्रों में सपने भर कर लाई है। और वह आकाश मे नक्षत्र रूपी पुष्पों को ओस रूपी आँसुओं से भिगो कर अपने साथ लाई है।

आज इन ........................... अरुण पीले ।

सन्ध्या के आगमन का वातावरण तन्द्रा से पूर्ण है। इस तन्द्रिल वातावरण में सन्ध्या की सुनहरी जुल्फें रात्रि के काले बालों में उलझ रही हैं। तुम्हारी जो चूनरी अब तक लाल और पीली थी अब रात्रि के आ जाने से ऐसा लगता है। जैसे उस चूनरी में नील वर्ण का पराग भरता जा रहा हो (रात्रि की कालिमा अब सन्ध्याकालीन अरुणिमा और पीलिमा को आच्छादित कर रही है—भाव यह है)।

रेख सी ........................... तरीले

सन्ध्या के समय अन्धकार की एक छोटी-सी लहरी व्याप्त थी। परन्तु अब तुम्हारे (सन्ध्या के) के चरणों को छू कर असीम समुद्र की भांति विस्तार पा गई है और बहुत ही सघन होती चली गई है तेरे गीत बादलों की कोमल नाव लेकर क्षितिज के पार चले जा रहे हैं (अर्थात् तेरा विस्तार बहुत अधिक है)।

कौन.........................अधर गीले !

(सन्ध्या के इस वातावरण पर कवयित्री कल्पना करती हैं कि ऐसा लगता है कि) तुम्हें किसी छायालोक की मधुर स्मृति आ रही है। तुम अपने प्रिय की स्मृति करके उनके दर्शन का अनुभव करती-सी प्रतीत होती हो। स्मृति के उस संसार का ध्यान करके तुम्हारी पलकें पुलकित होकर काँपने लगती हैं और प्रिय स्मृति से आनन्दित होते हुए तुम्हारे अधरों को आँसुओं से गीला बनाये देती हैं।

विशेष—इस गीत में कवियत्री ने सन्ध्या का सुन्दर कल्पना से रंजित वर्णन किया है। प्रकृति के विविध पदार्थों अर्थात् सन्ध्या, रजनी आदि का मानवीकरण किया गया है।

## गीत ५१

प्रसंग—महादेवी जी सतत साधनारत हैं। अपनी साधना की अभिव्यक्ति उन्होंने विविध रूपों में की है। इस कविता में अपने आपको साधनामय बनाकर वह अपनी, प्रिय से साक्षात्कार प्राप्त करने की, अभिलाषा को व्यक्त करती हैं।

शब्दार्थ—प्रतिमा=मूर्ति। अर्चना=पूजा। शूल=कांटे, दुख। क्षार=खारी। करुणा-स्नात=करुणा से नहाया हुआ। लोल=चंचल। कुन्तल=बाल।

शून्य..............................मेरा पुजारी।

व्याख्या—हे प्रिय ! आज मैं यह कामना करती हूँ कि मैं किसी शून्य मन्दिर में आपकी प्रतिमा का रूप धारण कर लूँ। प्रतिमा की पूजा होती है। उसके अर्चन के लिए मेरे शूल (दुख) होंगे। मेरे नेत्रों का खारी पानी पूजार्थ अर्घ्य होगा। पूजा करने के लिए जिस पुजारी की आवश्यकता होगी वह मेरा दुख रूपी पुजारी होगा जो कि करुणा के जल से स्नान करके पवित्र और उज्ज्वल हो गया होगा।

नूपुरों..................................भिखारी !

मेरे मूक नूपुर वहाँ पर नृत्य करेंगे। उससे सारा शान्त संसार ध्वनि से

परिपूर्ण हो जायेगा। सारे संसार के ध्वनित हो जाने पर यह अथाह आकाश भी पृथ्वी पर उतर कर आयेगा और मेरे कम्पनों की भिक्षा माँगेगा।

लोल ..................................आज सारी।

शून्य मन्दिर की प्रतिमा का अवलोकन करने के लिए मैं अपने नेत्रों की चंचलता को त्याग कर स्थिर गति से टकटकी लगाकर देखूंगी। मेरी दत्त-चित्तता इतनी अधिक होगी कि मेरा एक बाल भी उस समय चलायमान नहीं होगा। मेरे शरीर की गति उसे देख कर पूरी तरह से मोहित अथवा प्रसन्न हो जाएगी। मेरे शरीर के रोएँ-रोएँ में वह प्रसन्नता स्थिर होकर समा जाएगी।

राग मद......................... गाथा तुम्हारी!

मुझे सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति तथा सांसारिक यश और वैभव का अहंकार अब नही रहेगा। मेरे मन में जो तरह-तरह की इच्छाएँ पैदा होती रहती हैं। वे भी न रहेंगी। मेरी चितवन अब तक शून्य थी। मुझे किसी की प्राप्ति नहीं हो सकी। किन्तु अब मेरी चितवन में तुम्हारी कहानी मूक होकर स्थिर रहेगी।

विशेष—इस कविता में कवयित्री ने अपनी आन्तरिक साधना पर बल दिया है। अगर जीवन इस प्रकार की साधना का अभ्यस्त हो जाय तो उसे विविध साधना पद्धतियों की कोई आवश्यकता न रह जायेगी। सांसारिक लिप्सा और एष्णाओं के त्याग से ही इस प्रकार के साधना मार्ग में सफलता मिल सकती है।

## गीत ५२

प्रसग—इस गीत में कवयित्री ने यह अभिव्यक्त किया है कि साधना मार्ग कोई सरल कार्य नही है। अश्रु और वेदना को जो सहन करता हुआ जो इस पथ पर अग्रसर होता रहता है उसे ही मिलन सुख की प्राप्ति होती है। दूसरे शब्दों में विकास आने से पहले अपनी गोदी में नाश को लिए हुए होता है। विकास तभी सम्भव है जब मनुष्य अपने आपको दुख की स्थिति से पार कर ले।

शब्दार्थ—स्वप्न-सा=स्वप्न की तरह। सुर चाप=इन्द्र धनुष। निस्पंद

=शान्त । अमा=अमावस्या। मधुमास=वसन्त । रवि करों=सूर्य की किरणों। सीकर=विन्दु, कण।

अश्रु मेरे..........................हास आया।

व्याख्या—कवयित्री कहती हैं कि जिस समय मेरा प्रिय मेरे पास मेरे आँसुओं को माँगने के लिए आया अर्थात् विरह-व्यथा से दुखित करने आया उस समय वह स्वप्न के समान हँसता हुआ-सा मेरे पास आया। जिस प्रकार दिन की हँसी (प्रकाश) से शून्य आकाश में इन्द्र धनुष की-सी शोभा अंकित हो जाती है उसी प्रकार मेरे अन्दर भी नाना भावों और अनुभवों की सृष्टि हुई है। सूर्य की रश्मियों से जो अब तक शान्त अंधकार छाया हुआ होता है वह सिहर कर प्रकाश के रूप मे पुलकित हो जाता है उसी प्रकार मेरा अज्ञानान्धकार भी प्रिय प्रकाश से पुलकित हो कर दूर हो गया है और ज्ञान की स्थिति उत्पन्न हो गई है। जिस तरह अमावस्या के पश्चात् हँसती हुई चांदनी आती है वैसे ही अज्ञान में पड़े रहने के पश्चात् अब ईश्वर की अनुभूति का प्रकाश आ गया।

वेदना का..........................मधुमास आया।

वेदना अग्निकणो के समान उत्तप्त है। जब ऐसी वेदना मेरे मोम के समान कोमल हृदय में समा गई अर्थात् वेदना से जब हृदय द्रवित हो गया उस समय मुझे ससार ने जीवन का अमृत रस मृत्यु की अँजलि में भर कर दिया (अर्थात् वेदना के ग्रहण करने से अमृतमय जीवन भी मृत्यु के सन्निकट ही आता गया) जिस प्रकार पतझड़ के पश्चात् वसन्त आता है और ओस की बूँदों को मांगता है उसी प्रकार कवयित्री को वेदना के समाप्त होने पर सुखद, मादक और आनन्दमय नवजीवन प्राप्त होगा।

अमर सुरभित..........................विकास आया।

संसार के सभी पदार्थ नश्वर हैं। पुष्प कभी न मिटने वाली अपनी सुगंधित सांस दुनिया को दे कर स्वयं झड़ कर नष्ट हो गए। सूर्य अपनी किरणों से जल को खींचता है। सूर्य की किरणों में जल के कण होते हैं और फिर वे बादलों में साकार हो कर व्याप्त रहते हैं। उनके नाश के पश्चात् फिर विकास आता है (पुष्पों के नाश से फिर नवीन पुष्प और जल के सूखने से फिर नया जल जिस प्रकार आता रहता है उसी प्रकार सृष्टि का क्रम है। पहले नाश

होता है और वह नाश ही बिकास का जन्म देने वाला होता है)।

**बिशेष**—१. यह एक रहस्यवादी गीत है। रहस्यवाद के आधार पर इस कविता मे महादेवी जी ने स्वप्न-मिलन की स्थिति की कल्पना की है। प्रिय की वेदना का प्रभाव सदैव हृदय को द्रवित करता रहता है।

२. कवयित्री ने यहां पर सृष्टि क्रम को दो ही पक्तियों में समझा दिया है। पहले नाश होता है तभी विकास होता है। नाश की गोदी में ही विकास पनपता है :

अक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया।

## गीत ५३

**प्रसंग**—इस कविता में कवयित्री अपने प्रिय से मिलने की इच्छा करती है। वह अपने प्रिय की प्रतीक्षा में नाना भांति से शृंगार करती हैं। शृंगार के लिए प्रकृति के उपकरणों की सहायता लेती है। जब उनको प्रिय की प्राप्ति नही होती तो असफल अभिसारिका की भांति व्यथित होती हैं।

**शब्दार्थ**—तिमिर-केश=अन्धकार के समान बाल। अवगुण्ठन=घूंघट। जावक=महावर। मनुहार=विनती। कण्टकित=पुलकित। वान=सवारी, रथ। अभिसार=प्रिय से मिलने के लिए चुपके-चुपके जाना।

क्यों वह..............................शृंगार नहीं!

**व्याख्या**—महादेवी जी कहती है कि वह मेरा प्रिय इस पार मेरे समीप क्यो नही आता? मैंने अपने प्रिय को रिझाने के लिए पर्याप्त शृंगार किया है परन्तु वह फिर भी मुझसे दूर है। मैने चन्द्रमा के दर्पण में देख-देख कर अपने अन्धकार के समान काले बालों को सुलझाया है। मैने तारागण रूपी पारिजात के पुष्पों को और अधिक शोभा के लिए उनमें गूँथा है। मैने अपने मुख पर किरण रूपी घूँघट को धारण किया है। इस प्रकार मैने बडा सुन्दर नूतन शृंगार करके अपने प्रिय को रिझाने की कोशिश की है, परन्तु मेरा नवीन शृंगार पता नही क्यों मेरे प्रिय को नही रिझा पाया (अन्यथा वह मेरे पास आ जाते)।

स्मित से..........................मनुहार नहीं !

मेरे ओठ विरह-दुख के कारण फीके पड़ गये थे। मैंने इनको अपनी स्मित रूपा लाली से लाल कर दिया है। अपनी गति रूपी महावर से अपने चरणों को मैंने लाल बना दिया है। अपनी गीली पलकों में मैंने स्वप्नों का अंजन लगा लिया है। अपनी माँग में मैंने अश्रु रूपी माला धारण करके उसको सजा दिया है। क्या मैं इस रूप सज्जा के साथ कम्पन के बहाने से पल-पल में युग-युग से अपनी विनती उनकी सेवा में नहीं भेज रही ? परन्तु वह प्रिय फिर भी इधर क्यों नही आता है ?

मैं आज..........................भार नहीं !

(कवयित्री ने अपने प्रिय का प्रेम प्राप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण भी निर्मित कर रखा है। इसीलिए वह कहती हैं कि) मैं आज चातक को चुप कर आई हूँ। मैंने कोयल को भी सुला दिया है। मौलश्री और हरसिंगार के फूल यद्यपि रोमांचित हो रहे हैं परन्तु वे भी अपने श्वासों को ऐसे रोके हुए है जैसे कि उनके श्वास शिथिल हो गये हों अर्थात् बिल्कुल शान्त हैं। इस शान्त पृथ्वी पर समीर भी चुपचाप सोया हुआ है। अब मनुष्यों के मन में स्मृतियों का भी कोमल भार नहीं है (कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वत्र सब प्रकार शान्तिमय वातावरण है ऐसे में प्रिय आने चाहिए)।

रूँधे हैं..........................तार नहीं !

सारी दिशाएँ रूँधी हुई-सी लगती हैं। आकाश में कोमल बादल छाए हुए हैं। वे सफेद पाटल के समूह के समान प्रतीत होते हैं। इन बादलों ने बीच मे रुकावट पैदा करदी है। उस ओर मेरे प्रिय की प्रकाश रूपी सवारी रुकी हुई है जिस पर बैठकर कि वह इधर आ सकते। इस ओर मेरे प्राणों ने शोर मचा रखा है। मेरा शोर भी प्रिय तक नहीं पहुँच सकता जिससे कि इसे सुनकर वे जल्दी आ जाते। आज मुझे बेसुध निद्रा व्याप रही है। मैं नित्य-प्रति अपने श्वास और उच्छवासों के तारों से बुनने की-सी क्रिया का-सा कार्य करती रहती पर आज मेरे श्वासो की गति भी विचित्र हो गई है।

दिन-रात..........................अभिसार नहीं ?

कवयित्री कहती हैं कि दिन और रात्रि रूपी पथिक मुझे मनाने आये

परन्तु थक कर चले गए। क्षण भी मुझे मना न सके और हार मानकर चले गये अर्थात् दिन-रात और क्षणों के व्यतीत होने की मैंने परवाह नहीं की। मेरा सम्बल केवल प्रिय की मधुर स्मृति है और विरह का मार्ग बहुत बड़ा और सूना है। अर्थात् इस विरह के मार्ग में कोई आपत्ति नही है इस पर अग्रसर हुआ जा सकता है। परन्तु वह कौन है जो इतने पर भी यह कहता है कि मेरा अभिसार सूना नहीं है ? वहाँ प्रिय आसानी से क्यों नहीं आ सकते ? (कहने का तात्पर्य यह है कि कवयित्री का वातावरण बिल्कुल उपयुक्त है और प्रिय वहां स्वच्छन्दतापूर्वक आ सकते हैं। फिर भी जब नहीं आते तो महादेवी जी व्यथित होती हैं और कहती हैं कि वह प्रिय इस उपयुक्त और अनुकूल परिस्थिति में भी मेरे पास क्यों नही आता) ?

विशेष—कवयित्री की मिलन की इच्छा अत्यन्त प्रबल है। वह अपने प्रिय को प्रसन्न करने के लिए इसीलिए शृंगारमय वातावरण की सृष्टि करती हैं। अपनी मिलनेच्छा की उपमा रूपक आदि अलंकारों से सजाकर कल्पना के सहारे बड़े सरस ढंग ने उन्होंने प्रस्तुत किया है।

## गीत ५४

प्रसंग—कवयित्री अपने साधना मार्ग पर आरूढ़ हैं। वह प्रिय से परिचय प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा रखती हैं। प्रिय से परिचय होने पर उन्हें सबकुछ प्रिय लगता है। प्रिय के प्रयत्न में चाहे कष्ट हों परन्तु फिर भी उसमें एक विचित्र आनन्द आता है जिसे वह बहुत पसन्द करती हैं। ऐसे ही भाव इस गीत में रखे गये हैं।

शब्दार्थ—तम-सिन्धु=अन्धकार का समुद्र। आलोक=प्रकाश। तूल=रूई। पूत=पवित्र। निर्वन्ध=स्वच्छन्द, बन्धनहीन।

क्यों मुझे..............................रूप-अंकन ?

व्याख्या—कवयित्रा कहती है कि मुझे अपने वन्धन प्रिय क्यों न हों ? मेरे लिए ही कोई नई बात नहीं है। अंधकाररूपी सिन्धु का सतरंगी प्रकाश किनारा है अर्थात् अन्धकार प्रकाश से बंधा हुआ है। धूलि से युक्त बादलों से

विजली का अंक मलिन है अर्थात् विजली बादल से बंधी है (मेरी स्मृतिरूपा पटल पर वह अपने रूप को स्वयं ही अंकित कर रहा है। मुझे प्रिय के रूप का सदैव स्मरण रहता है फिर मैं किसी प्रकार के बन्धनों से क्यों मुख मोड़ूँ यह भाव है)।

चांदनी.................................स्पन्दन !

मेरी चाँदनी अमा से मिलकर उसका अभिषेक कर रही है ( अर्थात् जिस प्रकार अमावस्या के पश्चात् चांदनी का प्रकाश होता है इसी प्रकार मेरा अज्ञानान्धकार दूर होकर ज्ञान का प्रकाश हो रहा है)। मुझ एक नवीन जागृति की प्राप्ति हो रही है। इस जागृति के द्वारा मेरे मृत्यु और जीवन रूपी दोनों किनारे मिलकर एक हो रहे हैं अर्थात् मुझे मृत्यु और जीवन एक से लग रहे हैं। मेरे हृदय में आज एक कम्पन हो रहा है। यह कम्पन प्रिय के कारण ही है। अतः यह प्रिय का दूत है और प्राणों को उनका संदेश देने के लिए आ रहा है।

सजनि मैंने.................................चन्दन !

हे सजनि ! मैंने अपने सोने के पिंजड़े के समान हृदय में प्रलय की वायु के समान विरह दुःख रूपी पक्षी पाला है। आज मैंने एकत्रित हुए अंधकार को प्रकाश बना डाला है अर्थात् मेरे हृदय में जो विरह का अंधकार था वह मिलन के प्रकाश के रूप में बदल रहा है। मेरा हृदय रूई के समान कोमल है और विरह अग्नि के समान जला देने वाला है। परन्तु वह विरह अब हृदय में चन्दन के समान शीतलता प्रदान करने वाला हो रहा है।

आज विस्मृति..........................अञ्जन !

आज विस्मृति के मार्ग में मुझे निधि के समान प्रिय के पद-चिन्ह मिले हैं। मेरे जीवन में जो विफलता होती रही है अब इस वेदना ने जीवन के सभी असफल स्वप्नो को लौटा दिया है (अर्थात् वेदना मे मिलन के आनन्द की निकटता समझकर सभी इच्छाएँ पूरी होती हुई प्रतीत होती हैं)। अब तक की चिर प्रतीक्षा मेरे नेत्रों में घुल कर अंजन के समान बन गई है)। अर्थात् वेदना के कारण अब नेत्रों को नव प्रकाश की ज्योति मिल रही है)।

आज मेरा.............................स्पन्दन!

आज मेरा खोज रूपी पक्षी गाता हुआ विश्राम लेने के लिए अपने घोंसले में जा रहा है (अर्थात् अब मैं प्रिय की खोज में व्यस्त नही हूँ)। सुख आँसुओं से यह कह रहा है कि सदैव से तू मेरा प्यारा है (अर्थात् आँसुओं में सुख की प्राप्ति हो रही है)। बीते हुए समय में मैंने बड़ी व्याकुलता के साथ जो सांस लिए थे आज वे ही मेरे हृदय में प्रसन्नता प्रदान करके एक कम्पन भर रहे है।

बीन.............................बेड़ियां गिन!

जिस प्रकार तार की आकाश मे विचरण करने वाली झंकार वीणा में बन्द होती है, धूल के मैले से दीपक में अंधकार को दूर करने वाला प्रकाश बन्दी होता है उसी प्रकार मैं स्वयं बन्दिनी होकर भी उस स्वच्छन्द असीम परमेश्वर को बांध रही हूँ। अपने दुःख और क्लेश के होते हुए भी मैंने ईश्वर को अपने हृदय में समा रखा है।

नित.............................रागमय दिन!

नित्य प्रति सुनहरी सन्ध्या के पैर से लिपटा हुआ अंधेरा चला आता है। मेरा मिलन भी पुलक के पंखों को धारण करने वाले विरह पर बैठ कर आ रहा है अर्थात् मुझे अपने विरह के पश्चात् मिलन सुख की उसी तरह निश्चित धारणा है जैसे सन्ध्या के साथ अंधेरा निश्चित रूप से आवद्ध रहता है। अब यह कौन कह सकता है कि मुझे उस पार अंधकारमय दुःख प्राप्त होगा अथवा प्रेममय सुख की प्राप्ति होगी?

विशेष – महादेवी जी ने इस गीत मे अपने रहस्यवादी विचारों को स्पष्ट करते हुए यह व्यक्त किया है कि प्रिय की प्राप्ति होने पर पिछले सब दुःख दूर हो जाते है और असीम आनन्द की प्राप्ति होती है। अपने ऐसे ही भाव कल्पना समुचित विविध उपमानों द्वारा कवयित्री ने व्यक्त किये है।

# गीत ५५

प्रसंग—इस कविता में वसन्त की वायु का सुन्दर वर्णन है। वसन्त की वायु से सर्वत्र माधुर्य छा जाता है। कवयित्री कहती है कि यह वायु मेरे जीवन में भी माधुर्य भर जाये। कवयित्री ने वायु से उसके द्वारा सम्भव तथा वहन किये जाने वाले अनेक उपकरणों की मांग की है।

शब्दार्थ—रंजित=रंगना। शिथिल=थके हुए। राग=लाली। मण्डन =शृंगार। रजनी गंधा=एक पुष्प का नाम। कबरी=चोटी। रशना=जिह्वा। विरज=स्वच्छ, रज रहित। चर्चित=आवेष्ठित, लेप किया हुआ।

जाने किस·························कंबरी संवार।

व्याख्या—कवयित्री कहती हैं कि वसन्त में चलने वाली मधुबयार न जाने किस जीवन की मधुर स्मृति को लेकर आनन्द से लहराती हुई चली आ रही है। वह वायु से कहती है कि हे वायु! तुम मेरे थके हुए चरणों को अशोक वृक्ष की नवीन लाली से रंग दो और मेरा शृंगार करने के लिए तुम रजनी गंवा नामक पुष्प विशेप का मधुर पराग ले आओ। हे अलि! तुम मेरी चोटी को जुही की अवखिली कलियाँ लगा कर सँवार दो।

पाटल के·························नयन सार।

मेरा वस्त्र बर्फ के समान उजला है। उसे तुम केसर के पीले और सुगन्धित रंग से रंग दो। मेरी वाणी में तुम वकुल के उन पुष्पों को गूंथ दो जोकि भ्रमरों की गुंजार से युक्त हैं और पृथ्वी पर झड़ रहे हैं। और हे सजनि! रात्रि से थोड़ा-सा अन्धकार रूपी अंजन लेकर उसे मेरे आलस्य भरे नेत्रों में लगा दो।

तारक-लोचन·························मधु-बयार!

आकाश में ओस गिर रही है और उससे पृथ्वी की उड़ती धूल शान्त हो रही है। कवयित्री कल्पना करती हैं कि आकाश अपने तारागण रूपी नेत्रों से ओस रूपी अश्रुओं की वर्षा करके पृथ्वी को सींच रहा है और इस प्रकार वह धूल वाली पृथ्वी को धूल रहित बना रहा है। हरसिंगार के पुष्प नीचे गिर रहे हैं। कवयित्री कहती हैं कि हरसिंगार अपने पुष्पों को नहीं गिरा रहा वरन् केशर से सुगन्धित हुई खीलों को प्रसन्नता के कारण मार्ग में विकीर्ण कर रहा है। आम्र के वृक्ष-प्रफुल्लित और पुलकित (कण्टकित) हैं। उन पर

की भिन्न-भिन्न प्रकार से उन्होंने अभिव्यक्ति की है। वेदना प्रिय के समान मादक है और प्रिय से मिलाने वाली है अतः उन्हे प्रिय है।

२. महादेवी की अन्तिम पंक्तियों में अहंकार के समाप्त करने पर प्रिय की प्राप्ति होने का भाव कबीर के निम्न भाव से मिलता है—
"आपा मेट जीवत मरै सो पावै करतार।"

## गीत ५७

प्रसंग—महादेवी ने अपने इस गीत में प्रकृति के कुछ पदार्थों का वर्णन किया है। वह प्रकृति की-सी ही अपनी स्थिति का अनुभव करती है और अपनी इस समता को सुन्दर सरस काल्पनिक रीति से व्यक्त करती हैं। यही भाव इस गीत मे अभिव्यक्त है।

शब्दार्थ – सिताञ्चल=सफद वस्त्र। क्षार=खारा जल। सुभग=सुन्दर, श्रेष्ठ। तूल=रूई। मृदुलतर=और अधिक कोमल।

मेरी है..........................जितनी रात!

व्याख्या—महादेवी जी अपने विषय में बतलाती हुई कहती है कि मेरी बात पहेली के समान है। जिस प्रकार पहेली के विषय मे यथार्थ ज्ञान आसानी से प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार मेरे विषय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। मेरी स्थिति रात्रि के समान है। रात्रि के पतले श्वेत वस्त्र से बिखरे हुए मोती ही ओस की बूंदों के रूप में व्याप्त हैं। उसी प्रकार मेरी आंखों में भी प्रिय सम्बन्धी स्वप्न झरकर आंसू बन जाते हैं। इस प्रकार मैं भी उतनी ही सजल (करुणापूर्ण) हूँ जितनी कि रात्रि होती है।

मुस्कराकर..........................जितना प्रातः!

प्रभात काल अन्धकार रूपी विष का पान करके मुस्कराकर अमृत तुल्य अरुणिमा को फैलाता है। मैं भी आंसुओं के खारे जल को पीकर नित्यप्रति स्नेह का रस बांटती हूँ। अर्थात् संसार के दुःख को आत्मसात करके करुणार्द्र होती हूँ। हे सुन्दर सखि! इस प्रकार मैं भी उतनी ही मधुर हूँ जितना कि प्रातः काल होता है।

ताप जर्जर..........................सजल बरसात।

हे सजनि। मैं भी उतनी ही जल से पूर्ण हूँ जितनी कि बरसात

होती है। दुःख के कारण जर्जर हुए विश्व के उर पर रूई के समान बादल छा जाते हैं। वे जल से पूर्ण होते हैं। गर्मी के कारण ही वाष्प उड़कर बादल का रूप धारण करके आकाश में फैलती है। मेरा हृदय भी इसी प्रकार दुःख के ताप से तपकर बहुत अधिक कोमल होकर करुणा जल से भरकर उमड़ पड़ता है (भाव यह है कि कवयित्री का हृदय वेदना के दुख से दुखी होकर तथा संसार के दुख का अनुभव करके बहुत अधिक संवेदनशील हुआ करुणा से द्रवित हो जाता है)।

विशेष—महादेवी की कविता में वेदना भाव प्रधान है। इस कविता में उनकी वेदना केवल आन्तरिक व्यक्तिगत वेदना ही नहीं है अपितु उन्हें सम्पूर्ण विश्व के दुखों को देखकर संसार के प्रति सहानुभूति होती है। उनकी आँखों में आँसू इसी सहानुभूति का फल है।

## गीत ५८

प्रसंग—इस गीत में महादेवी जी अपने प्रभु को अपनी आन्तरिक वेदना से अवगत कराना चाहती हैं और यह स्पष्ट करना चाहती हैं कि वह कितनी दुख और करुणा से पूर्ण हैं। यदि ऐसा प्रिय यह देख समझ ले तो शायद स्थिति कुछ और ही हो जाय। ईश्वर से मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए यही भाव इस गीत मे रखे गये हैं।

शब्दार्थ—सेतु=पुल। विरह-वारीश=विरह रूपी समुद्र। तुला=तराजू। धूमिल=धुंधला। विजड़ित=जड़ हो जाना।

मेरा सजल..................................देश देते ?

व्याख्या— कवयित्री अपने प्रिय से कहती हैं कि एक बार तो मेरे उस मुख को देख लेते जो सर्वदा जल से युक्त रहता है। मैं सदैव रोती रहती हूँ। मेरा यह करुणा करने वाला मुख एक बार तो कम से कम आपके द्वारा देखा जाना चाहिए था। मैंने विरह रूपी समुद्र का जल देखा है। उस विरह समुद्र पर मैंने दुख रूपी पुल बांधा है। मैंने अपनी पलकों को फूल की प्याली के समान मादक और सुकुमार बना दिया है और उसमें दुख का विष भरकर बाँट दिया है। इस संसार में सुख भी दुख से युक्त है और दुख में सुख भरा हुआ

है (अर्थात् प्रत्येक परिस्थिति में दुख की ज्वाला में सबको अवश्य ही दग्ध होना पड़ता है।) इसलिए यदि हे प्रिय, आप पहले से ही संसार की दुखमय स्थिति का ज्ञान करा देते तो फिर शायद यहाँ जन्म लेना कोई भी पसन्द न करता।

नयन की..............................शेष लेते।

मैंने अपने नीलम के समान नील वर्ण वाले नेत्रों की तुला पर अश्रु रूपी मोतियों के प्यार को तोला है (अर्थात् नेत्रों में अश्रु ला ला कर प्यार की व्यंजना की है)। मेरा भोला प्राण न जाने कब से मृत्यु की परवाह नहीं करता। हे प्रिय! यदि आप मुझसे जो कुछ अपने विषय में बाकी बची हुई ममता थी उसे भी माँग लेते तो ये भ्रान्तिमय कण और शान्ति से युक्त क्षण मुझे वरदान के सदृश प्रतीत होते।

पद चले..............................अनेक देते?

मैंने तुम्हें प्राप्त करने के लिए भारी प्रयत्न किया। तुम्हें पाने के लिए मेरे पर चले, मेरा जीवन चला, मेरी पलकें चलीं और मेरे स्पन्दन भी चलते रहे। परन्तु मेरा तुम्हें प्राप्त करने का लक्ष्य और भी धूमिल और अग्राह्य होता चला गया जैसे क्षितिज अग्राह्य होता है और दूर ही दूर चलता चला जाता है। मेरे शरीर के अंग अब अलसा गए हैं। मेरे प्राण भी जड़वत हो गए हैं। मैं तो अपनी इसी में जीत मान लेती यदि आप मुझे हँसकर बार बार हराते भी रहते।

घुल गई..............................रेख लेते?

हे प्रभु! मैं आपके वियोग में अश्रु प्रवाहित करती हूँ। इन आँसुओं में पता नहीं क्या मादक हाला घुल गई है? इसे पीकर सारा विश्व और नक्षत्र मण्डल झूमता है। मेरी यह इच्छा है कि आप घना अन्धकार बनकर आवें और मेरा प्रेम के रग से रंगा (लाल) घूँघट उठा कर इन आँसुओं को गिन लें।

शिथिल चरणों..............................सन्देश देते?

मेरा हृदय सदैव आपकी स्मृति गाथा से परिपूर्ण रहता है। यदि आप मेरे थके चरणो के थके हुए नूपुरों की रुनझुन को सुन लेते तो आप को इनके माध्यम से मेरे विरह के सारे इतिहास का पता चल जाता। और हे सुन्दर! यदि आप उसे सुन पाते तो, आप चाहें कितने ही दृढ़ हृदय वाले हों, शीघ्रता-

पूर्वक चंचल पैर रखते और मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुक्ति को न्यौछावर करते तथा निर्वाण का सन्देश अवश्य दे देते।

वशेष—कवयित्री का यह विरह गीत उनके हृदय के विश्वास का द्योतक है। वह विरह वेदना का सत्य रूप से अनुभव करती हैं। कोई भी निष्ठुर इस सत्यता और तल्लीनता पर मुग्ध हो सकता है। कवयित्री इसीलिए कह रही है कि शायद उस प्रभु को मेरी दशा का पता नही है अन्यथा अपनी निष्ठुरता छोड कर वह तुरन्त ही मुझे अपना लेता। कवयित्री का विश्वास दृष्टव्य है।

## गीत ५९

प्रसग महादेवी जी प्रिय वियोग से सदैव दुखी है। विरह के विषय में उनका अपना गहन अनुभव है। अतः उन्होने विरह के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण भी बदल दिया है। ऐसा उनकी कविता में यत्र तत्र सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है। विरह में ही आनन्द की अनुभूति की कल्पना करना उनकी निजी विशेषता है। इस कविता मे विरह द्वारा ही सुख की प्राप्ति की बात अभिव्यक्त की गई है।

शब्दार्थ—यामिनी=रात्रि। आह्वान=बुलावा। अनुगामिनी=पीछे-पीछे चलने वाली। अकथ=न कहने योग्य। स्मित=मुस्कान। अन्तर्हित=छिपना। तिमिर=अन्धेरा।

विरह की........................अनुगामिनी सी!

व्याख्या—हे अलि! आज मुझे विरह का समय ऐसा मधुर लगता है जैसे कि बसन्त की सुन्दर मधुर रात हो। दूर पर चमकने वाले नक्षत्र मुझे अपने इतने निकट लगते हैं जितनी निकट कि आँख की पुतली है और उतने ही प्रिय भी लगते हैं। आकाश शून्य है परन्तु शून्य आकाश की शान्ति में मुझे बुलावे का स्वर गूँजता हुआ प्रतीत होता है। आज असीम प्रभु अपनी निस्सीमता सहित मेरा (अर्थात् ससीम मानव का अनुगमन करता हुआ सा लगता है) अर्थात् मेरी वेदना से प्रभावित होकर प्रिय मेरा अनुगामी सा हो गया है।

एक स्पन्दन.....................अनुरागिनि सी!

मेरे हृदय में प्रिय प्राप्ति की कल्पना करके स्पन्दन हो रहे हैं। एक-एक

स्पन्दन युगों तक की अकथ कहानी को कह रहा है। मेरे नेत्रों में जो विरह के कारण आया हुआ खारा पानी था वह अब प्रिय की स्मित से मधुर हो गया है अर्थात् प्रिय की हँसी ने सारा दुख दूर कर दिया। मेरा प्रत्येक मूक निश्वास इस समय नए-नए स्वप्नों मे विलीन होता जा रहा है।

सजनि·································पुजारिनी सी !

हे सजनि ! कल तक जो बाते धुँधली और असफल प्रतीत होती थीं वे ही आज वास्तविकता और प्रसन्नता मे बदल गई है। मेरा विरह अब मिलन से मिलकर एकाकार हो गया है अर्थात् अब मुझे विरह वेदना नही हो रही। अब मेरी पिछली राह एक निराश पुजारिनी की तरह मेरी स्मृतियाँ देख रही है। (अतीत काल की व्यथा अब समाप्त हो गई है—यह भाव है।)

फैलते हैं···································स्वामिनी सी !

मेरी प्रसन्नता का प्रसार अब सारी सृष्टि में हो रहा है। सध्या के समय आकाश में जो लाली फैल जाती है वह वास्तव में मेरे ही रगीले प्रेम भरे भावों के कारण है। अन्धकार मे जो नक्षत्रो के रूप मे आकाश मे दीपमालिका दिखलाई देती है वह मेरे प्रेम से गीले शरीर के रोएँ ही तो है। आज मैं प्रियतम की बन्दिनी बन गई हूँ परन्तु अन्य सांसारिक बन्धनों पर मैंने विजय प्राप्त कर ली है।

विशेष—महादेवी जी ने अपने हृदय की वेदना को सहन करके जो शूल सहन किए हैं उनके फलस्वरूप उन्हें अब प्रिय की प्राप्ति हो गई है। अब उन्हें आनन्द की छाया ही सर्वत्र दिखलाई पडती है। सुखी व्यक्ति को सभी सांसारिक वस्तुएँ सुखद लगती हैं। ऐसा ही महादेवी जी को अनुभव होता है।

## गीत ६०

प्रसंग—इस गीत में महादेवी जी ने अपनी आंतरिक वेदना को व्यक्त किया है। अपने को उन्होने दीपक माना है और विश्व को शलभ। विरह के कारण दुखित स्थिति का उन्होंने तरह तरह से उल्लेख किया है और अन्त में अपने प्राणों को समझाते हुए यही स्वीकार किया है कि यह विरह व्यथा ही अच्छी है। अब मिलन का नाम भी मत लो।

शब्दार्थ—शलभ=पतंगा, विश्व। आगार=कोप, खजाना। क्षार=राख धूम=धुआँ। अवसान=अन्त।

शलभ मैं......... ...... .... ......सुन्दर हूँ!

व्याख्या—महादेवी जी विश्व को शलभ के रूप में सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे शलभ! मैं एक वरदान हूँ परन्तु शापमय वरदान हूँ। शापमय वरदान इसलिए कि मैं बन्धनों मे आवद्ध हूँ। मैं एक निष्ठुर दीपक के समान हूँ जो सभी को जला देता है। मेरी जलती शिखा (वेदना) मेरा ताज है। वेदना की चिनगारियाँ मेरे शृंगारिक उपकरण हैं। मेरे पास विरह रूपी ज्वाला का कभी समाप्त न हो सकने वाला खजाना है और मैं विरह-दुख रूपी अंगारों मे क्रीड़ा करती हूँ। यद्यपि क्षण-क्षण में जलने के कारण मेरा नाश हो रहा है परन्तु उसमें किसी की सुन्दर साध वर्तमान है।

नयन में ...................मृत्यु भी मन्दिर हूँ!

विश्व के लिए महादेवी के पास कोई स्थान, उसके लिए कोई ममता नही। इसी बात को व्यक्त करते हुए वह कहती है कि यदि मैं तुझे (विश्व को) अपने नेत्रों में रखूं तो वहां पर मेरी पुतलियाँ जलन का आगार है, यदि प्राणों में स्थान दूं तो वहाँ भी विरह अग्नि की कठिन समाधि लगाये हुए प्राण जल रहे हैं। फिर मैं तुझे कहाँ स्थान दूँ? मैं तो मृत्यु के एक मन्दिर के समान हूँ जहां विश्व शलभ यदि जाएगा तो वही जल जाएगा, मर जाएगा।

हो रहे.........................राख का घर हूँ!

मेरे नेत्रों से गिर (अथवा बरस) कर अग्नि कण (अथवा आग की चिन्गारियाँ) भी धूल के समान रुंठे (अथवा खारी और ठडे जल बिन्दुओं) में परिवर्तित हो रहे है (देखने मे शीतल जान पड़ने वाले अश्रु वास्तव मे अग्नि के समान दाहक वेदना के प्रतीक है)। विरह अग्नि से पिघलते हुए मेरे हृदय से निकल कर मेरी आहें काले धुंए का रूप धारण करती जा रही हैं, (सत्य तो यह है कि प्रत्यक्ष कोई आग न दिखाई देने पर भी मैं राख के एक घर के समान हूं।)

कौन आया..........................का शर हूं।

(मैं एक स्वप्निल संसार में निमग्न थी) न जाने किसने आकर

अपने स्पर्श से मुझे उस स्वप्न मे जगा दिया। मुझे केवल थोड़ा-सा उस जगाने वाले की उंगलियों का अनुभव है उसी की याद में अब मुझे युग (शेष अवधि) विताने है। रात्रि के उर मे जैसे किसी ने दिवस के प्रकाश को प्राप्त करने की चाह पैदा करने वाला बाण मार दिया हो ऐसे ही मेरी स्थिति है। (मैं भी इसी प्रकार अपने प्राणदीप को जलाकर प्रकाश फैलाती हूँ।)

शून्य मेरा..............................चिर हूँ।

(दीपक का जन्म शून्यता से होता है अर्थात् शून्य अन्धकार में ही दीपक जलाया जाता है और सवेरा होने पर उसका अन्त हो जाता है।) मेरा जन्म भी उसी प्रकार शून्य (अज्ञात, असीम) परमेश्वर से हुआ है और जब उसके ज्ञान का सूर्य उदय होगा उसी समय मेरा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। मेरे व्याकुल प्राणों के लिए बस साथ देने वाला अन्धकार ही मिला है। (अर्थात् जिस प्रकार दीपक के साथ अन्धेरे की व्याप्ति रहती है उसी प्रकार मेरे साथ भी विरह व्यथा की व्याप्ति रहती आई है।) कवयित्री अपने प्राण-रूपी दीपक को सम्बोधित करते हुए कहती है कि तुम मिलन रूपी प्रातःकाल का नाम मत लो मैं तो विरह की रात्रि में ही सदैव जलती रहना चाहती हूँ। (कहने का तात्पर्य यह है कि कवयित्री सहानुभूति को ही श्रेष्ठ और आनन्द-प्रद समझती है इसीलिए वह मिलन की कामना न करके विरह को ही चाहती है)।

**विशेष**—इस कविता में कवयित्री ने अपनी साधना की स्थिति और वेदनाप्रियता को व्यक्त किया है। इनके प्राण सदैव विरह-व्यथा में दीपक की भाँति जलते रहते हैं और उसे ही वह सदैव के लिए चाहती है। अन्तिम पक्तियो मे प्रिय से साक्षात्कार की स्थिति को बतलाया गया, है कि जब प्रिय से साक्षात्कार हो जाएगा तो आत्मा का अपना कोई अस्तित्व न रहेगा और वह उसी मे समा जाएगी।

## गीत ६१

**प्रसंग**—महादेवी जी विरहिणी है। उनके नेत्रों में विरह-व्यथा से उद्भूत अश्रुओं का सदैव निवास रहता है। इस कविता मे अपने अश्रुमय जीवन का

साम्य एक बदली के साथ स्थापित करके अपनी दशा का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—बदला=बादल। आहत=दुखी, चोट खाया हुआ। निर्झरिणी =नदी। दुकूल=वस्त्र। अविरल=लगातार।

मैं नीर·····························मचली !

व्याख्या—मैं जल से भरी हुई दुखी बदली हूँ (अर्थात् जिस प्रकार बदली में नीर भरा होता है उसी प्रकार मेरे दुखमय जीवन में भी आँसू भरे हैं)। अपने स्पन्दन से यह बदली सदैव से निस्पन्द विश्वाकाश को व्याप्त कर देती है। इसके क्रन्दन में अर्थात् सहानुभूति और करुणा के प्रसार में सुख-जल के अभाव से दुखी विश्व सरस होकर हँसने लगता है। नेत्रों में सदैव वेदना-व्यथा उसी प्रकार जलती है जैसे वर्षा में जुगनू टिमटिमाते हैं। वर्षा में जैसे नदी बह निकलती है, वैसे ही मेरे नेत्रों से भी आँसुओं की निर्झरिणी बह निकली है।

मेरा पग·····························पली !

प्रत्येक स्थिति में पड़ा हुआ मेरा प्रत्येक पग एक विशिष्ट संगीत से भरा हुआ है। मेरे श्वासों से प्रिय की प्राप्ति के स्वप्नों का पराग झर रहा है। आकाश के रंगों से रंगीन बदली की भाँति मैं भी ईश्वर की छवि से रंगबिरंगे स्वरूप वाली हूँ। मेरी छाया में बादल की छाया में बहने वाली सुगन्धित शीतल वायु के समान सुख दुख की वायु बहती है।

मैं क्षितिज ··· ·························निकली !

वर्षा में क्षितिज पर धूमिल बदली दिखलाई देती हैं। मेरी भौंह रूपी क्षितिज पर चिन्ता रूपी धूमिल बदली दिखलाई देती है और लगातार बड़ा भार रखती है। वर्षा धूल के कणों पर बरस कर उनमें नवीन अंकुरों का उदय कर देती है। मैं भी पृथ्वी के जीवों को अपने करुणा-वारि द्वारा नवजीवन और नवोत्साह से अंकुरित करती हूँ।

पथ को····· ·····················अत खिली।

यह मेरी जीवन बदली ऐसी है जिसका आना किसी पथ को मलिन नही करता और न इसके जाने पर इसके कोई पदचिन्ह ही रह जाते है। मेरी जीवन बदली के आने की स्मृति इसी से होती है कि वह अन्त में सुख की सिहरन दे जाती है। कवयित्री का जीवन भी ऐसा ही है कि वह सबको सुख

की सिहरन प्रदान करता है इसी से जग को उनकी स्मृति है।

विस्तृत नभ ..................... आज चली।

आकाश इतना अधिक विस्तार वाला है। वर्षा की बदली आती है। वह आकाश में किसी एक स्थान पर नहीं रहती। उसका परिचय आकाश के किसी कोने से भी नही है (इस विस्तृत आकाश के कोने मात्र पर भी बदली का स्थायी अधिकार नही हो पाता।) मेरा (बदली, जीवन) का यही परिचय है और यही आद्योपान्त इतिहास है कि कल उमड़ कर आई थी और आज मिट चली। जीवन भी ऐसा ही है आता है और शीघ्र चला जाता है।

विशेष—महादेवी जी ने अपनी विशेष अभिव्यक्ति द्वारा अपने जीवन की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराया है। वर्षाकालीन बादलो से समता दिखला कर रूपक के सहारे उन्होने अपनी बात व्यक्त की है। रूपक योजना के अतिरिक्त इस स्थान पर उनका प्रकृति चित्रण दृष्टव्य है।

## गीत ६२

प्रसंग—महादेवी जी साधनारत है। साधना मार्ग में आने वाली विघ्न बाधाओं की परवाह न करने की बात उन्होने अपने गीतो मे अनेक स्थलों पर व्यक्त की है। इस कविता में साधना मार्ग पर चलते चलते शिथिल हुए प्राण से कवयित्री उत्साहपूर्ण शब्द कहती है। उनकी साधना की लग्न सराहनीय है।

चिर सजग ........................ छोड़ आना!

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। आलोक=उजाला। कारा=कारागार, जेल। वात=वायु। उपधान=तकिया।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवयित्री अपने मन को उद्बोधित करके कहती हैं कि तुम्हें अपने पथ मे बहुत आगे जाना है। तुम्हे किसी भी प्रकार की विघ्न बाधाओं की परवाह न करके अपने साधना कार्य में दत्तचित्त रहना चाहिए। अतः वह कहती है कि सदैव से तुम्हारी आँखें बड़ी सजग रहती थी। आज वे ही निद्रित सी लगती है। तुमने यह व्यर्थ की कैसी व्यस्त स्थिति पैदा करली है। तुम जागो। तुम्हें अपने पथ में अभी बहुत दूर जाना है। आज चाहे हिमालय पर्वत कभी चचल न होने वाला उसके हृदय में

कम्पन पैदा हो जाय (वह चलायमान हो जाय), या मौन और अलसाया हुआ आकाश प्रलय के आँसुओं से रो पड़ (प्रलयकालीन मेघ आ जाएं) अन्धकार सम्पूर्ण प्रकाश को अपने में विलीन करले और आज चाहे बिजली की शिखाओं में निष्ठुर तूफान बोलने लगे (बिजली और तूफान आए) किन्तु तुम्हें इस नश्वर मार्ग पर अपने चरण चिन्ह छोड़कर जाना है। (भाव यह है कि किसी प्रकार की भी भयावह और प्रतिकूल परिस्थिति में भी तुम्हें अपनी साधना से मुख नहीं मोडना है)।

बाँध लेंगे........................कारा बनाना !

महादेवी जी कहती है कि (हे मन !) क्या तुझे मोम के समान कोमल और गलने वाले सांसारिक ममता माया के बंधन बाँध लेंगे ? क्या रंगीन तितलियों के परों की तरह जग का लुभावनापन तुम्हारे मार्ग में बाधा बन जायेगा? क्या मधुप की मधुर गुनगुनाहट के समान मधुर वार्तालाप तुम्हारे हृदय से विश्व के क्रन्दन को भुला देगा ? क्या तुम्हें संसार के प्राणियों के वे नेत्र जो फूल की पखड़ी पर पडी हुई ओस के समान दुख से गीले हैं अपनी आर्द्रता में तुम्हें डुबो देंगे ? तू अपनी छाया के समान सांसारिक बन्धनों को अपने प्रेम में अग्रसर न होने देने वाली कारा मन बनाना।

वज्र का........................उसमें बसाना !

तुमने अपने वज्र जैसे कठोर हृदय को एक छोटे से वेदना के अश्रु-जल में धोकर गला दिया। तुमने अपने जीवन का अमृत देकर दो घूँट मदिरा को ग्रहण किया। विरह की आँधी क्या मलय-समीर के समान शीतल प्रेम की वायु का उपधान लगाकर सो गई ? क्या सारे विश्व का अभिशाप कभी समाप्त न हो सकने वाली निद्रा बनकर तुम्हारे पास आ गया है ? तुम अमर ब्रह्म से उद्भूत जीव हो। तुम्हे अपने हृदय मे मृत्यु को स्थान देने की क्या आवश्यकता है ?

कह न........................कलियाँ बिछाना !

तुम अपनी ठंडी साँसे भरकर अपनी विरह-व्यथा से दग्ध कहानी को मत कहो। नेत्रो मे अश्रु तभी आ सकते हैं जब किसी के हृदय में वेदना की अग्नि हो। तुम्हारी हार भी सम्मानित करने वाली विजय-पताका के समान

बनेगी क्योंकि यदि पतग जलकर राख हो जाता है तो भी उससे यह बात स्पष्टतः व्यक्त होती है कि उसने अपने प्रिय दीपक की प्राप्ति में साधनारत होकर अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया है। हे मन ! (साधना-रतप्राणी) तुम्हे तो अंगारो की शैया पर कोमल कलियां बिछानी है (अर्थात् साधना मार्ग कठिन अंगारे की स्थितिवत ह और तुम्हें अपने प्रेम को इसी अंगारे के ऊपर बिछाना है। विरह ज्वाला में ही प्रेम पलता है—यह भाव है।)

विशेष—कवयित्री ने इस गीत में अपनी साधना पूर्ण निर्वाध स्थिति की बात कही है। विघ्न बाधाओं की अवहेलना करके विरह ज्वाला को धारण करके ही प्रेम की प्राप्ति हो सकतो है। कवयित्री ने इस गीत में साधनावस्था में सतत प्रयत्नशील रहने पर विशेष बल दिया है। गीत उत्साहवर्द्धक और उद्बोधित करने वाले शब्दो और भावों से परिपूर्ण है।

## गीत ६३

प्रसग—यह एक रहस्यात्मक गीत है। महादेवी जी के प्राण प्रिय के सान्निध्य के लिए विकल हैं। अपनी स्थिति वह पिजड़े मे बन्द तोते की तरह बतलाती है। प्रिय से प्रार्थना करती हैं कि वह इस शरीर से इस प्राण रूपा कीर को मुक्ति दे। इसी प्रकार उन्हें अपने प्रियतम के साथ तादात्मय स्थापित करने की स्थिति की प्राप्ति हो सकती है।

शब्दार्थ—कीर=तोता। पिञ्जर=पिजड़ा। हत=दुखी, मरा हुआ। राका=पूर्णमासी। पारद=पारा।

कीर का..............................बोल दो !

व्याख्या—महादेवी जी अपने प्रिय से कहती है कि हे प्रिय ! अब तुम इस मेरे प्राण रूपी कीर का शरीर रूपी पिजर स्वरूप बन्धन खोल दो। इस कीर की चोच को छूकर पिजड़े की तीलियाँ वेणु के समान शब्दायमान हो गई हैं और जो कम्पन करने वाली व्यथा है उसको बन्दिनी बनाकर यह पिंजड़ा मौन होते हुए भी विरह का अनुभव कर रहा है। (अर्थात् शरीरस्थ प्राण का जब स्पर्श ज्योतिर्मान ब्रह्म से हो जाता है तो आनन्द की रागिनी बजने

लगती है और जड़ शरीर भी चेतनवत बोलने लगता है)। कवयित्री कहती हैं कि हे प्रिय ! आज इसी शरीर-पिंजर की जड़ता में चेतना और आनन्द भर दो।

जग पड़ा.............................तोल दो !

मेरा प्राणरूपी कीर प्रिय के कारण प्राप्त हुई अश्रुधारा को छूकर जग पड़ा है और इसके वैभव रूपी क्षीण पंख अब पुनः प्राप्त हो गए हैं (नवजीवन का संचार हो गया है—यह भाव है)। यह प्राण-कीर शरीर-पिंजर में चिरकाल से बन्दी होने के कारण आलस्य से भरा हुआ था। अब नवचेतना की प्राप्ति होने से वह इस शिथिल शरीर पिंजर को लेकर उड़ चलेगा। आप इसके पंखों पर इसके सरस सजीले स्वप्नों को तोल दो (अर्थात् प्राण कीर की इच्छा पूर्ण कर दो।)

क्या तिमिर........ .... ........ घोल दो !

अब इस प्रकार कीर के उड़ने में कैसा अन्धकार और कैसी रात्रि ? आज इसका विपरीत दिशा में उड़ना भी मानो ठीक दिशा में ही उड़ना है। बात यह है कि यह प्राण रूपी पक्षी अब तक दूर था पर अब प्रिय की निकटता में ही है और यह ईश्वर के अमर प्रेम बन्धन में बंध गया है। हे प्रिय ! आप मेरे प्रलयकालीन भयावह और घनघोर घटा के समान विरह और क्लेश आदि से आच्छादित हुए अन्धकार से पूर्ण हृदय मे पूर्णिमा का प्रकाश घोल दो (मेरे जीवन में नवचेतना का प्रकाश भर दो जिससे सारा विरहान्धकार दूर हो जाय – यह भाव है )

चपल.............................मोल दो।

मेरा शरीर चचल पारे के समान व्याकुल है। मेरा मन बादल के जल के समान भरा हुआ है अर्थात् करुणा से सदैव द्रवित होता रहता है। यदि यह अपनी वेड़ियो का मापक पैमाना वनकर नीलाकाश को भी नाप दे तो आप इसको इसके मूल्य के लिए अनन्त दिन की एक किरण दे दो (अर्थात् प्राण के बन्धनो की असीमता देखकर और हृदय की आर्द्रता देखकर इसे अमर प्रकाश प्रदान करो।)

विशेष—इस गीत मे महादेवी जी ने अपने रहस्यवादी विचारों को व्यक्त करते हुए अपने प्राण की विपन्न स्थिति का वर्णन किया है। जब जीव

को ईश्वरानुग्रह से ज्ञान और चेतना की प्राप्ति होती है तो उसके सारे बन्धन दूर हो जाते है और वह सानन्द सुख की प्राप्ति करता है।

२. इस कविता की अन्तिम पंक्तियो मे उपमा अलंकार है।

## गीत ६४

**प्रसंग**—इस कविता मे कवयित्री ने ब्रह्म की और अपनी स्थिति का स्पष्ट उल्लेख किया है। वह वेदना से व्याप्त हैं। प्रिय की प्राप्ति की इच्छा तीव्र है। अपनी इसी दुखात्मक विरह स्थिति में वह चिरमिलन की साध से युक्त है।

**शब्दार्थ** - चिरन्तन=सदैव से चले आने वाला, शाश्वत। यामिनी=रात्रि। आवरण=आच्छादन, ढकना। तप्त=गर्म। सलिल=जल। चिन्मय=चैतन्य ब्रह्म। विरज=रज रहित, स्वच्छ। विधु=चन्द्रमा।

**प्रिय चिरन्तन························दामिनी मैं!**

**व्याख्या**—महादेवी अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे सजनि! मेरा प्रिय शाश्वत ब्रह्म है और मैं क्षण क्षण में बदल कर नवीन सौभाग्य धारण करने वाली हूँ। प्रिय जो असीम है, मुझे अपनी श्वास में छिपाकर, बादल की तरह शून्य आकाश मे छा गया मानो वह उसकी सजीली इच्छाओं की पूर्ति करेगा। उस समय मैं उसमें छिप न सकी और चचल बिजली की तरह कभी जलती और कभी बुझती रही।

**छाँह को························यामिनि मैं!**

कवयित्री अपनी स्थिति को रात्रि के समान बतलाती हैं। हे सजनि! रात्रि मानो प्रिय की छाया को आवरण बना लेती है। वह अपने सूने सूने क्षणो को इसी तरह बिताती है और अपने ओस रूपी अश्रुओं को बो देती है (गिरा देती है)। वह रात्रि प्रातःकाल अपने नेत्रों मे अश्रु की बूदो को छलकाती हुई होती है और फिर हँस कर छिप जाता है। मेरी स्थिति भी उसी प्रकार की है।

**मिलन मन्दिर····················अभिमानिनी मैं!**

हे सजनि! यदि मैं प्रियतम से मिलने के स्थान (मिलन मन्दिर) में अपने मुख से अपना करुणाजल से भरा विरह घूँघट उठा दूँ अर्थात विरह

को दूर कर दूँ तो मैं मिट जाऊँगी। मैं मिटकर प्रिय मे मिलकर उसी प्रकार एक हो जाऊँगी जैसे गर्म बालू मे जल का कण एकमेक हो जाता है। मेरा अपनापन विरह व्यथा की स्थिति मे है। यदि मैं अपनी इस स्थिति वाले अपनेपन को समाप्त कर दूँ तो फिर मैं अभिमानपूर्वक अपने प्रिय से कैसे मिल सकती हूँ ?

दीप सी··· ······················अनुरागिनी मैं !

मैं चाहती हूँ कि मैं दीपक की भाँति युग-युग तक विरह व्यथा में जलती रहूँ किन्तु मेरा प्रियतम यह अवश्य बता दे कि यदि मेरा प्राण-दीप उन की फूँक से बुझ जाये तब भी मेरी राख से मेरे स्वाभाविक विरह का गुण व्यक्त हो सके। मैं चाहती हूँ कि इस तरह सदैव ही मेरा प्रियतम मेरा आराध्य बना रहे और मैं मिट्टी के समान इस नश्वर शरीर वाली होते हुए भी उनके प्रति प्रेम करती रहूँ।

सजल ···· ······················चाँदनी मै !

मेरे नेत्र अश्रु जल से पूर्ण हैं। इनकी पुतलियाँ सीमित आकार की हैं। किन्तु मैंने अपने नेत्रो मे ऐसा चित्र समा रखा है जो अमिट है और असीम है (ब्रह्म से तात्पर्य है)। मेरे प्राण एक सीमा के अन्दर है परन्तु उनमे एक अनन्त इच्छा निवास करती है कि वह प्रिय को प्राप्त कर सके। मैं स्वच्छ रज रहित चन्द्रमा की चाँदनी हूं जो धूल के कणो मे खेल रही है ( भाव यह है कि कवयित्री शुद्ध निर्मल परमेश्वर की शोभा का एक अंश है )।

विशेष—कवयित्री के हृदय मे साधना पथ की ओर अग्रसर होने की तीव्र इच्छा है। उन्होंने अपनी स्थिति को बतलाते हुए दामिनी, यामिनी, दीपक और चादनी आदि प्रकृति के पदार्थो से रूपक बाधा है। उनसे कवयित्री अपना साम्य भी दिखलाती है और प्रेरणा भी लेती है। इस कविता मे यत्र-तत्र उपमा अलकार दृष्टव्य है।

## गीत ६५

प्रसग—कवयित्री अपने प्रभु की प्राप्ति की साधना में लगी हुई है। उन को प्रिय से असीम अनुराग है। इस अनुराग को प्राप्त कर लेने के पश्चात्

अब उन्हे अन्य सांसारिक वस्तुओं की इच्छा नही है। उन्हें सभी सुखद और दुखद वस्तु व्यापार एक से लगते हैं। उन्हें ऐसा आनन्द मिला हुआ है जिसे स्पर्श करते ही सभी क्लेश आनन्दमय हो जाते है। इस गीत मे कवयित्री की संवेदना का विस्तार दृष्टव्य है।

शब्दार्थ—अनुराग=प्रेम। मधुमय=अमृतमय, सुखद। विषमय=विष से युक्त, दुखद। प्रस्तर=पत्थर। गह्वर=गुफा। राका=पूर्णिमा।

सखि मै ························पुलकें लहरीं !

व्याख्या—हे सखि ? मैं अनन्त सौभाग्य से भरी हुई हूँ। मेरे ऊपर प्रिय का अनन्त प्रेम है। उनमें से मैं किसे त्यागूँ और किसे मांगू ? उनमें से एक तो मुझे मधुमय लगता है और दूसरा विषमय। मेरे पैरों को छूते ही कांटे, कली और पत्थर सभी अपनी स्वाभाविक क्लिष्टता और कटुता को त्याग कर सरस बन जाते हैं। मेरा रोम-रोम प्रिय प्राप्ति के आनन्द के कारण पुलकायमान हो रहा है अतः सांसारिक कष्ट और दुख आदि अभिशापों को किस प्रकार और कहाँ धारण कर सकती हूँ ?

जिसको पथ·····················ममता बिखरी !

कवयित्री कहती है कि मैं अपने प्रिय की प्राप्ति के प्रयत्न में आई हुई विघ्न बाधाओ की चिन्ता नहीं करती। मैं इस साधना मार्ग से विमुख हो कर अन्य उपाय भी नहीं सोचना चाहती क्योंकि जिसको अपने पथ में आने वाले शूलो (दुखों) का भय हो वह निर्जन मार्ग और गुफा आदि की खोज करे ताकि वहां शान्तिपूर्वक बैठ सके। परन्तु मैं सुख दु.ख मे नही डरती। मैं तो उन्हे अपनी भुजाओ मे जकड कर उनसे मिलती हूँ क्योंकि वे प्रिय का सदेश देने वाले के समान मुझे प्रतीत होते है। मैं पृथ्वी के कण-कण के प्रति ममता रखती हूँ और उसका प्रत्यक्ष रूप मेरे नेत्रो मे करुणावश छलकते हुए आंसू है।

अरुणा······························छाया गहरी !

प्रकृति के विविध पदार्थों को अपने शृंगारिक उपकरणो के रूप मे स्वीकार करती हुई कवयित्री कहती है कि प्रातःकाल की लाली से मेरी मांग लाल सिन्दूर की तरह भरी गई है। सन्ध्या की लालिमा ने मेरे पैरो में लाला महावर) लगाई है। मेरे अंगों पर चन्दनादि का लेप पूर्णिमा की रात्रि की

उजियाली द्वारा होता है और उससे दीपावली जैसी आभा झलकती रहती है। मेरी छाया जग के प्रति सहानुभूतिका अनुभव करके गहरी होती जाती है।

पद के·····························जीवन गगरी !

महादेवी अपनी करुणा और सहानुभूति की विशदता का वर्णन करते हुए कहती हैं कि मैं जिस समय ससार रूपी मरुस्थल में दुःख से रीती अपनी जीवन गगरी को भरने आती हूं तब मुझे बड़ी करुणा आती है। मेरे पैर से उठी धूल में आकाश का छायापथ ही उतर आता है। मेरे श्वासों से बादल घिर आते है और मेरी करुण दृष्टि दुखित पतझर रूप जीवन में सरस हरियाली ला देती है ( भाव यह है कि मेरे हृदय में सबके लिए करुणा है और उस करुणा से मैं सबको आनन्द, प्रसन्नता और सन्तोष देने में समर्थ हूँ।

विशेष—इस कविता में कवयित्री ने अपनी सुख दुःखात्मक अनुभूति की सम स्थिति का कथन किया है। साधक की अपनी सफलता के लिए यह एक आवश्यक गुण है। कवयित्री को अपनी करुणा के प्रसार से सन्तोष प्रदान करने पर गर्व है।

## गीत ६६

प्रसंग—इस गीत में महादेवी जी ने अपने ईश अनुभव को व्यक्त किया है। वह सदैव सर्वत्र वर्तमान है। कवियित्री का मन सदैव उसकी प्राप्ति के लिए साधना करता रहता है। वह अपने असीम प्रियतम को अपने ससीम हृदय में समा लेना चाहती हैं। इन्ही भावों को इस कविता में व्यक्त किया गया है।

शब्दार्थ—तारकों=तारागण । नियति=भाग्य । कुशली=कुशल, चतुर। कोलाहल=हलचल । पदचाप=पैरों की आवाज। रङ्गमय=रंगों से युक्त। रूँधा=ढका, आच्छादित। अजिर= आंगन। इन्दु=चन्द्रमा। कन्दुक=गेंद। लोल=चंचल।

सो रहा·····························माँगता है !

व्याख्या—सारा ससार सो रहा है परन्तु मेरा प्रिय तारकों के रूप में जाग रहा है। नियति रूपी कुशल चित्रकार ने सुख-दुःख के नाना रंगों के

संयोग से मेरे कोमल जीवन रूपी पात्र की रचना की है अर्थात् मेरे जीवन में सुख और दुःख दोनों का संयोग है। मैने स्नेह रूपी अमृत को अपने जीवन रूपी पात्र में भर रखा है। परन्तु वह प्रिय मेरे स्नेह की अपेक्षा न करके मेरी आँखो से निकले हुए खारी आँसुओं को माँगता है। (भाव यह है कि प्रिय मुझे विरह-व्यथा के कारण अश्रु प्रवाहित करती हुई देखना अधिक पसन्द करता है)।

धूप छाहीं........................उर जागता है।

मेरे विरह का समय कभी सुख और कभी दुख में व्यतीत होता है। यह धूप छांह की तरह विविध है। मैं अपने प्रिय को कहीं अकेले में ढूँढने का प्रयत्न कर रही हू परन्तु वह विश्व भर मे व्याप्त है। इस तरह सम्पूर्ण विश्व का जो कोलाहल है वहीं प्रिय की व्यापकता है। मेरे नेत्र उनकी छाया को देखते ही पहचान लेगे क्योंकि ये उनसे पूरी तरह परिचित है। मेरा हृदय उनके परो की ध्वनि को क्षण मात्र मे पहचान सकता है।

रंगमय............................मानता है!

हे प्रिय! आप मुझ से दूर हैं। इस दूर रहने में भी एक आनन्द आता है। इस प्रकार दूर रहने से मेरी और आपकी क्रीडा अधूरी रहेगी। उसका केवल स्पर्श मात्र ही अनुभव किया जा सकता है। किन्तु अब आप से इतना दूर रहकर प्रेम का खेल खेलने की बात को मेरा मन स्वीकार नहीं करता है (अर्थात् मुझे मिलने की इच्छा बहुत हो रही है)।

वह सुनहला............................ठानता है!

तुम्हारी हँसी बडी सुनहरी है। तुम अपनी स्वर्णिम हँसी को प्रकृति के नाना आनन्दप्रद पदार्थों के रूप मे व्यक्त करते हो। यदि मैं तुम से भेंट करूंगी तो शायद मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जाय, जिस प्रकार कपूर उड़-उड कर समाप्त हो जाता है। इसलिए जब मेरा हृदय तुम से मिलने के लिए हठ करता है तो मैं अपनी पलकों को मूद कर अँधेरा कर लेती हूं। पलकों को मूँद कर ही रात्रि व्यतीत कर देती हूँ।

मेघ रूँधा............................असमानता है!

यह आकाश रूपी आंगन मेघ के जल से सिक्त है। इस आंगन में चन्द्रमा

इस तरह टूट कर गिरता है जैसे गेंद गिरती है। सूर्य इस आकाश-अजिर में झुलसा हुआ-सा लाल-पीला दिखलाई देता है। इस तरह तुम्हारे इस आकाश रूपी आँगन के ये सूर्य और चन्द्रमा रूपी दो खिलौने हैं। मैं इन सब को हृदय में स्थान देना चाहती हूँ। अब कहाँ तो ये असीम वस्तुएँ और कहाँ मेरा ससीम हृदय ? हे प्रिय ! मेरा मन इस असमान परिस्थिति में बड़ा व्यग्र है।

विशेष—ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने से कवयित्री ने अपने रहस्यवादी विचार व्यक्त किए हैं। उन्हें उस परमेश्वर की महानता और व्यापकता का तथा अपनी क्षुद्रता और ससीमता का परिचय है। ईश्वर बिना कवयित्री को कुछ नहीं सुहाता। उनकी वेदना और उसकी अभिव्यक्ति प्रशसनीय है।

## गीत ६७

प्रसंग—प्रस्तुत गीत में महादेवी जी ने हिमालय का वर्णन किया है। हिमालय मे कवयित्री को अद्भुत शोभा और गुण दिखलाई देते है। सभी का वर्णन करके अन्त में वह स्वयं भी हिमालय से प्रेरणा लेकर अपने को उसी की भाँति उन्नत और महान् बनाना चाहती हैं।

हे चिर..............................हिमनिधान ।

शब्दार्थ—स्वर्णरश्मि=सुनहरी किरणें। सेली=योगियों के धारण करने की एक माला। परिमल=सुगन्धि। बतास=वायु। कुलिश=वज्र। विहान=प्रातःकाल।

व्याख्या—हे हिमालय ! तुम सदैव से महान् हो। प्रातःकाल सूर्य की सुनहरी किरणे तुम्हारे हिम के कारण श्वेत हुए मस्तक का स्पर्श करती है। उस समय एक रंगीन वातावरण की सृष्टि का सुखद प्रसार हो जाता है। इन्द्रधनुष तुम्हारे गले में योगियों के गले की उस माला की तरह स्थित होता है जिसे 'सेली' कहते हैं। वायु जो उस समय चलती है वह सभी वस्तुओं में सुगन्धि को व्याप्त कर जाती है क्योंकि वह स्वयं परिमल युक्त होती है। हे हिमनिधान ! तुझे अपने ऊपर गर्व नही है और दूसरों से तुझे राग नही है।

नभ में गर्वित..........................कठिन प्राण !

तुम्हारा शीश सदैव आकाश में ऊँचा उठा रहता है मानो गर्व के कारण

दोनों एक से दिखाई दे रहे हैं। इसीलिए वह कहती हैं कि मुझे आज विरह का युग भी मिलन के एक पल के समान लगने लगा है (अर्थात् जैसे मिलन में एक पल यों ही बीत जाता है) क्योंकि आनन्द का समय यों ही चला जाता है वैसे ही मेरी वियोग की लम्बी अवधि भी यों ही समाप्त हो जाती है (उसमें आनन्द आता है यह भाव है)। दुख और सुख में से कौन सा अप्रिय कड़वा लगने वाला होता है मैं इसे न जान पाई और न मैंने ऐसा जानना सीखा ही है। मुझे दुख और सुख दोनों ही मधुर लगते हैं क्योंकि उनमें प्रियतम की मधुर भावना भरी है।

विशेष—इस गीत में महादेवी जी ने हृदय की सुख और दुख में समान रहने वाली स्थिति का कथन किया है। प्रिय के लिए प्रयत्न करते-करते साधक की एक स्थिति ऐसी आ जाती है जब उसे सुख दुख, हर्ष विषाद, मानापमान जय-पराज्य आदि में अपने लिए विशेष भेद नही मालूम पड़ता। यदि कहें तो यों कह सकते हैं कि उसे स्थितिप्रज्ञ की संज्ञा वाले गुण प्राप्त हो जाते हैं—

दुःखेष्वनुद्विग्न मनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थिति धीमु निरुच्यते ॥

महादेवी जी को दुख और सुख एक समान ही प्रतीत होते हैं। दुख में ही सुख मान लेने का उनका अपना निजी दृष्टिकोण भी है।

## गीत ६९

प्रसंग—महादेवी जी इस गीत मे यह व्यक्त करती हैं कि उन्होंने इस संसार के कण-कण को जान लिया है। ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग ऐसा ही है जिस पर अग्रसर होकर संसार का बहुत बड़ा ज्ञान होना स्वाभाविक है। संसार के दृश्यमान पदार्थ जैसे लगते है वैसे वास्तव में नही हैं। सर्वत्र दुख और वेदना हैं। वेदना में ही अपने को गला कर प्रिय का साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा वह मानती हैं।

शब्दार्थ—क्रन्दन—रोना, चिल्लाना। चितवन=दृष्टि, देखना। मुक्ताहल=मोती। आख्यान=हाल, कहानी। दंशन=काटना। आहत=चोट खाया हुआ। स्वर्ण-रजत=सोने चांदी।

अलि मैं.....................आख्यान चली !

व्याख्या—कवयित्री कहती हैं कि मैंने विश्व के कण-कण को जान लिया है। सबका रोना चिल्लाना मैंने पहचान लिया है। आँसुओं के विषय में वह कहती हैं कि मैंने सब प्रकार के आँसुओ को जान लिया है। कुछ आँसू ऐसे होते है कि नेत्रों में हीरे का पानी भर देते हैं (अर्थात् सुख से भरे हुए होते हैं) कुछ आँसू नेत्रों में इन्द्रधनुष की भाँति चित्रित दीख पडने वाले होते हैं। (हर्षोल्लास में ऐसे आँसू आते हैं), कुछ आँसू ऐसे होते हैं जो टूटे हुए स्वप्नों की माला से दुख के कारण सूखे हुए ओठो पर ढुलक पडते हैं। आकाश के मेघ भी अश्रु रूपी जल से व्याप्त होते है परन्तु उनकी चमक मोतियों जैसी उज्ज्वल होती है। ऐसे आँसु आकाश से पृथ्वी पर वर्षा के रूप में उतर पड़ते है। तारों के पास भी अश्रु जल होता है जो तिनको पर ओस बिन्दुओं के रूप में उतरते हैं। ये आँसू दुःखमय होते है। इस तरह मैंने आकाश के और पृथ्वी के सभी प्रकार के आँसुओं का परिचय प्राप्त कर लिया है। इसमे कुछ रसमय अर्थात् सुख के आँसू होते है और कुछ विषमय (दुख के) आँसू होते हैं। इस तरह सभी प्रकार के आँसुओं को देखकर मैंने दुख को ही सुख करके मान लिया है।

जिसका .............................वरदान चली !

व्याख्या—कवयित्री ने काँटों को भी देखा है। काँटे का प्रभाव लाभ के लिए प्रयोग में किया जाने से मीठा और किसी अ ग में चुभ जाने से कष्ट-प्रद होता है। उसके लगने से शरीर मे एक दुखात्मक कम्पन भर जाता है। काँटा जब पैर में चुभ जाता है तो जर्जर हुए मन को और भी अधिक चोट पहुँचाता है। काँटे दो प्रकार के होते हैं। एक तो ऐसे होते है जो मनुष्यों के स्पन्दन के कारण कोमल होते है। दूसरे ऐसे होते है जो अकेले पड़े रहते है और फलतः वहुत पैने और कष्टप्रद हो जाते हैं। इस प्रकार मैंने उपवन और निर्जन मार्ग में पड़े हुए दोनों प्रकार के काँटों को पहचान लिया है। दोनों प्रकार के कांटों की मृदु और कठोर प्रकृति को मैंने जान लिया है। मैंने अपने जीवन को सदैव गतिशील रहने का वरदान दे दिया है।

जो जल.........................लयवान चली !

इन पंक्तियों में कवयित्री मरु और उपजाऊ भूमि के विषय मे कहती है।

होने और आलोक के फैलने की सन्धि पर है। उसे यह अवश्य ही पता होता है कि वासन्ती आभा वाला दिवस का रथ अब चल कर वहाँ आने ही वाला है ( इसी प्रकार महादेवी जी का प्रिय से मिलन होने ही वाला है—यह भाव है )।

खोलकर·····························ढल चुका है !

प्रिय ने ही मेरे प्राणों को अपनी ओर प्रेरित किया है। उसने प्राण रूपी दीपक के दृग खोलकर यह कहा कि जीवन रूपी अंधकार में आगे पैर बढ़ाते चले जाओ। वही प्रिय अब, उस प्राण दीप को, जो कि निशा रूपी क्लेशों को उज्ज्वल बनाता रहा है, थका हुआ देखकर यह कहने लगा कि अब रात्रि का अन्तिम प्रहर समाप्त हो चुका है। तुम्हारी साधना सफल हुई और तुम्हें मिलन का सुख प्राप्त होगा—ऐसा प्रिय सन्देश देता हुआ प्रतीत होता है।

अन्त हीन·······················विछल चुका है।

विरह की रात्रि अन्तहीन है। साथ में वेदना रूपी नाव है। अन्धकार नदी क्षितिज के किनारों की रेखा को भी डुबा रही है अर्थात् अन्धकार असीम होता जा रहा है। ऐसे ही वातावरण में मेरे थके हुए हाथ से प्रियतम की सुधि रूपी जो पतवार था वह भी गिर पड़ा है। (कहने का तात्पर्य यह है कि दशा बड़ी भयानक बन गई है अब प्रिय की प्राप्ति कैसे हो ?)

अब कहो················· ······मचल चुका है !

हे प्रिय ! अब ऐसी स्थिति में आप वतलाइए कि आप मुझे क्या सदेश देते है ? क्या अभी कोई ऐसी भी विशेष ज्वाला बाकी है जिसे आप मुझे प्रदान करना चाहते है ? क्या इस विरह-व्यथा के अग्निसम दग्धकारी मार्ग को पार करने पर चन्दन और चांदनी के समान शीतलता प्रदान करने वाला कोई देश है ? आपके एक बार के सकेत को पाने के लिए मेरे प्राण सैकड़ों बार मचल-मचल कर रह गये है (कहने का भाव यह है कि कवयित्री प्रिय से पूछना चाहती है कि क्या इतनी विरह-वेदना के पश्चात् अब मिलन सुख का अनुभव हो सकेगा अथवा नहीं ?)

विशेष—यह एक रहस्यवादी भावों से युक्त गीत है। ईश्वर के विरह में आत्मा सदैव दुखी रहती है। कवयित्री ने प्राणों के दीपक की भांति

स्थिति में ही मैं सुख का अनुभव करती हूँ। मैं ऐसी, देवता की विचित्र मोम की मूर्ति हूँ जो ज्वाला (विरह) में घुली हुई है। मैं इस विश्व का सृजन करने वाले परमेश्वर की श्वास हूँ। फिर मैं अपने विनाश की बात क्यों सोचूँ? (ईश्वर का अंश होने से आत्मा भी नाशरहित है—यह भाव है।)

विशेष—१. कवयित्री की अपनी निजी अभिव्यक्ति इस कविता में दृष्टिगोचर होती है। वह पूजा में ही बसी हुई हैं। उनकी स्थिति और वातावरण सभी पूजा के उपकरणों से युक्त हैं। अतः उन्हें वाह्य पूजा की आवश्यकता नहीं है।

२. इस कविता में कवयित्री का रहस्यवादी दृष्टिकोण, आत्म विश्वास प्रदर्शित किया गया है।

## गीत ७३

प्रसग—इस कविता में महादेवी जी ने प्राणों की दीप के रूप में कल्पना की है। दीपक मन्दिर में जलता है, प्राण जीवन में जलते हैं। जीवन-मन्दिर में प्राण-दीप तब तक जलता है जब तक कि विरह रूपी रात्रि का अन्त होकर मिलन रूपी प्रातःकाल नहीं हो जाता। इन्ही भावों को इस गीत में व्यक्त किया गया है।

शब्दार्थ—रजत=चाँदनी। वेला=समय। लय=ध्वनि। कल=सुन्दर। उपल=पत्थर। अजिर=आँगन। अलिन्द=बरामदा। दहली=देहरी। अक्षत=चावल। अन्तर्हित=छिपाना। प्रस्तर=पत्थर। मसि=स्याही, कालिमा। स्पन्दन=कम्पन। झंझा=तेज वायु। दिग्भ्रान्त=दिशाओं के विषय में भ्रम पड़ जाना। प्रहरी=पहरेदार। प्रभाती=प्रातःकाल का गीत।

यह मन्दिर का..................................गलने दो!

व्याख्या—कवयित्री कहती हैं कि मेरे जीवन रूपी मन्दिर में जलने वाला दीपक मेरे प्राण हैं। इनको शान्ति पूर्वक जलने दो। मन्दिर में चाँदी जैसे शंख और घड़ियाल और सुनहरी वंशी तथा वीणा के स्वर आरती के समय सैकड़ों प्रकार की लय से भर जाते हैं। जीवन में भी समयानुसार तरह-तरह के भाव उत्पन्न होते रहते हैं। आरती वेला के समय सुन्दर कण्ठों से मंगल पाठ होता है। उस समय पत्थर से निर्मित मन्दिर भी हँसता हुआ सा लगता

अन्धकार क्रीडा करता हुआ सा जान पड़ता है। जीवन में विविध भावों की उत्पत्ति के समय जड़ शरीर भी हँसने लगता है और विरह का अन्धकार बढ़ने लगता है। किन्तु अब जीवन रूपी मन्दिर मे प्राण रूपी दीपक अकेला ही इष्ट है। इसे आँगन की शून्यना को दूर करने के लिए जलते रहने देना चाहिए। प्राण के साधनारत रहने की अभिलाषा है।

चरणों से··· ·················· ···········पलने दो !

मन्दिर के बरामदे की सुनहरी पृथ्वी, पूजा के लिए आए हुए व्यक्तियों के चरणों के चिह्नों से व्याप्त है। मन्दिर की देहली, प्रणाम करने के लिए झुके हुए व्यक्तियों के मस्तक के चन्दन के, चिह्नों से युक्त है। पुष्प बिखरे हुए हैं। श्वेत चावल बिखरे है। बहुत अधिक धूप, अर्घ्य और नैवेद्य आदि पूजा की सामग्री सर्वत्र व्याप्त है। अन्धकार के कारण अब यह सब दिखलाई नहीं देगी। इसलिए पूजा करने की इस कहानी को दृष्टिगोचर बनाए रखने के लिए दीप की लौ को जलते रहने दो (कहने का तात्पर्य यह है कि किन्हीं सुन्दर और पवित्र भावों का उदय होने से मानव ईश्वर की साधना में लगता है। उसके विरह के कारण वह सब कुछ ही भूलने लगता है। कवयित्री ऐसे ही समय प्राणों को सजग बनाए रखने की बात कहती हैं)।

पल के·································ढलने दो !

जिस प्रकार पुजारी माला के मनके (दाने) फेरता है उसी प्रकार विश्व रूपी पुजारी पल-पल व्यतीत होने वाले समय के दाने फेरता है। ऐसा विश्व रूपी पुजारी जब माला फेर कर सो गया है क्योंकि रात्रि अधिक हो चली है। मन्दिर की आरती के समय जो प्रतिध्वनि पत्थरों से पैदा हो रही थी वह अब उन्हीं पत्थरों में समा गई (अर्थात् मन में नाना भाव सुप्त हो गए हैं)। यह जीवन सांसों की समाधि के समान है और साधना का मार्ग कालिमा के समुद्र के समान हो गया है (अर्थात् साधना में अनेक कष्ट और विघ्नादि संभव है)। इस जीवन मन्दिर में पहले कण-कण में एक कम्पन था अब वह शान्त हो गया है। ऐसी स्थिति में कवयित्री कहती है कि मेरी विरह की ज्वाला में अब मेरे प्राणों को फिर से जलने दो (हतप्रभ और चेतना शून्य को समाप्त करके मेरे प्राण अब फिर तीव्रता से प्रिय की ओर अभिमूख हो हो जायें—यह भाव है)।

झञ्झा.............................तक चलने दो !

इस समय तीव्र वायु चल रही है। दिशाओं के विषय में भी भ्रम पैदा हो रहा है। रात्रि के समय सभी मूर्छित अवस्था मे पड़े हुए हैं। ऐसे समय में इस जीवन-मन्दिर मे और कोई पुजारी पूजा करने के लिए नही आ सकता क्योंकि परिस्थिति विकट और प्रतिकूल है। इसलिए प्रकाश का यह छोटा सा पहरेदार प्राण-दीप उस जीवन मन्दिर में पहरेदार का कार्य करे। जब एक दिन की हलचल रात्रि के समाप्त होने पर लौट कर आएगी तब तक यह एक प्रहरी की भांति जागता ही रहेगा। इसकी रेखाओं में अर्थात् प्राण-दीप के अस्तित्व में कान्ति रूपी जल भरा हुआ है। यह कान्तिमान है। यह सायंकाल का दूत है। इसे अब प्रातः काल होने तक जलने दो। भाव यह है कि विघ्नादि विपरीत परिस्थितियों में और प्रिय के वियोग में साधक को केवल अपने प्राणों पर ही भरोसा रखना चाहिए। विरह के समाप्त होने पर मिलन की स्थिति तक प्राण प्रिय के लिए जलते रहें यही कवयित्री की कामना है।

विशेष—१. इस कविता मे कवयित्री न साधक की स्थिति और उसके साधना मार्ग में आने वाली विघ्न बाधाओ का उल्लेख किया है। यदि साधक साधना रत रहता है, तो उसका प्रिय से मिलन होता है। उस समय सारे क्लेश और विघ्न बाधाएँ विस्मृत हो जाती है।

२. इस कविता में कवयित्री ने मन्दिर मे पूजा करने की विविध सामग्रियों का उल्लेख किया है। पूजा और उसके पश्चात् की मन्दिर की स्थिति का सुन्दर चित्र सा खीच दिया गया है।

## गीत ७४

प्रसग—महादेवी जी ने प्रभु प्राप्ति के प्रयत्न को नाना भांति से व्यक्त किया है। उनके प्राण प्रिय के लिए जलते है। इस गीत मे कवियित्री ने प्राणों को दीपक के रूप मे वर्णित किया है। साथ ही उनकी विरहानुभूति, उनकी आत्मा का परमात्मा से चिरन्तन सम्बन्ध और प्रेम पथ पर अग्रसर होने की दृढ़ता इस कविता मे अभिव्यक्त की गई हैं।

शब्दार्थ—स्निग्ध=चिकनी। अवदात=स्वच्छ। एकाकिनी=अकेली। ज्वालवाही=ज्वाला से युक्त। लौ=दिए की शिखा।

व्याख्या—कवयित्री मानती है कि जैसे दीपक का प्रयोजन जलना मात्र है उसे इस बात से क्या कि रात कितनी है अथवा कितनी नहीं है, इसी तरह प्राणों का कार्य प्रिय के लिए तड़पते और प्रयत्न करते रहना है उसकी प्राप्ति कब होगी, इस ओर उन्हे ध्यान नही देना चाहिए। ऐसा मानते हुए कवयित्री अपने प्राण रूपी दीपक से कहती है कि हे दीप! तू यह क्यों पूछता है कि रात्रि अभी कितनी शेष है ? तू ऐसे सम्पुट मे जल रहा है जो अमर है। अर्थात् आत्मा का जन्म उस परमात्मा से है जो सदैव अमर है। तू उनके नखों की सदैव चमकने वाली कान्ति का स्पर्श करने वाला है। उसी के सकेत पर तू जला है (अर्थात् ईश्वर की ज्योति से ही प्राण देदीप्यमान रहते है)। तू परमेश्वर के प्रेम की, दीप के तेल की भाति स्निग्ध स्मृति लेकर काजल के समान अँधेरे वातावरण मे प्रवेश करने लगा। उन्ही की सदैव रहने वाली उंगलियों ने तुमको घेर रखा है (अर्थात् उन्ही की कृपा तुम्हारे ऊपर सदैव रहती है)।

झर गए………… ………………बरसात !

कवयित्री की आंखों से आँसू बहते रहते है मानो वहां सदैव बरसात आई हुई है। अश्रु की वर्षा में प्राणरूपी दीपक की स्थिति का उल्लेख करते हुए वह कहती हैं कि आँसुओं की वर्षा मे इच्छा रूपी सभी खद्योत समाप्त हो गये हैं। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में घटा के आच्छादन से तारे छिप जाते है उसी प्रकार विरह मे निराशा के अन्धकार के वात्याचक्र में अनमोल तारे रूपी प्रेम के मधुर भाव विलीन हो गये। जैसे वर्षा की घटा में बिजली चमक कर छिप जाती है वैसे ही विरह से व्याप्त वातावरण मे स्मृति आकर विलीन हो गई। इस प्रकार बरसात में सभी प्रकार के प्रकाश समाप्त हो गए है अब बरसात केवल दीपक का ही साथ चाहती है (अब कवयित्री के प्राणों का साथ देने वाली केवल आँसुओं की वर्षा ही रह गई है—यह भाव है)।

व्यंगमय है………………………बढ़ता प्रात !

क्षितिज का घेरा ऐसा लगता है जैसे वह अब समीप आने वाला है। परन्तु वह अब समीप नहीं आता यह उसका व्यगमय प्रदर्शन है। इसी प्रकार प्राणों के दीप को प्रिय के मिलन की स्थिति भी समीप लगते हुए भी अप्राप्य

है । आज सृ
तेरा आश्रय स्य
वाह नहीं है) आ
जिनमें विरह व्यथा
आपको समाप्त कर
तादात्म्य स्थापित होगा तेरे पास आता जा
प्राण साधना में अधिक लगे रह कर अपने
ही उसका प्रिय भी समीप आता जाएगा)

प्रणत लौ......................

(साधना के पथ मे विघ्नों की चिन्ता
कवयित्री कहती है कि) तुम्हे विघ्नों का स्व
नही । अपनी झुकती हुई लौ की आरती
चावलों के रूप में लेकर और नीली वर्तिक
मूक प्राणों मे व्यथा को स्नेहसिक्त वाणी
का स्वागत करो । यदि प्रलय के समान झं
देने वाला होता है, आए तो भी बढ़कर
करो । इसमें डरने की क्या वात है ? (सा
न करके अपने साधना पथ पर अग्रसर रहेग
अवश्य होगी—यह भाव है) ।

विशेष—१ इस कविता में साधक क
किया गया है जिससे उसे अपनी साधना
बाधाओं की चिन्ता न करते हुए, किन्तु अ